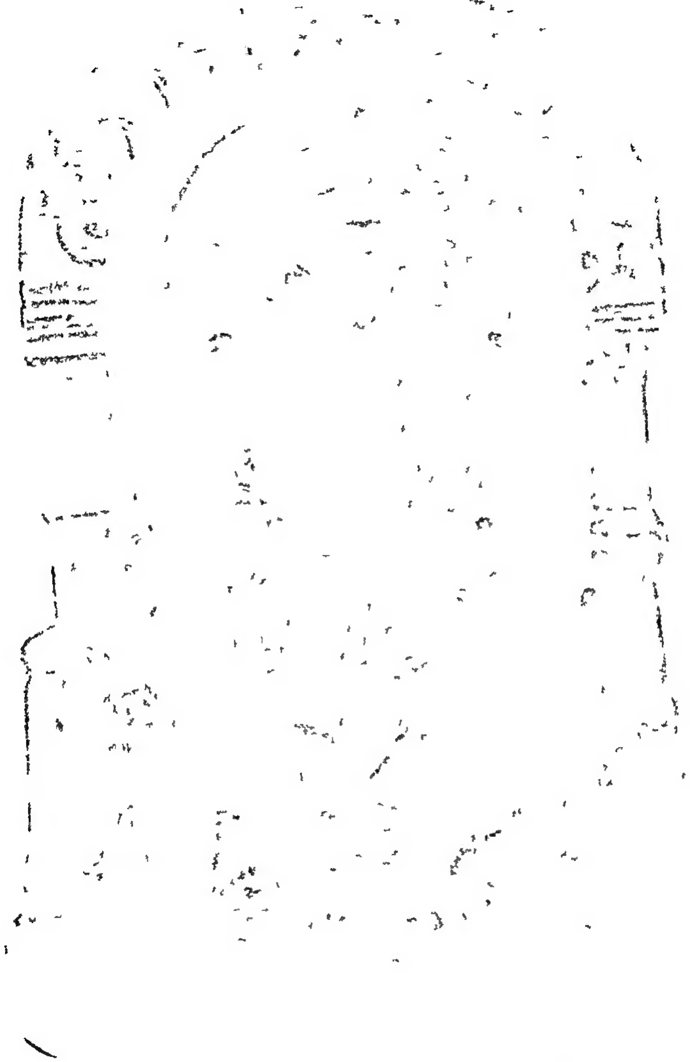


युगप्रधान दादा जिनकुशल सूरिजी (पृष्ठ १४६)

ॐ

•श्रीआत्मानद जैन स्वर्गवास अर्द्धशताब्दि सस्करण न २

श्री हिन्दी जैन कल्पसूत्र

प्रकाशक

श्री आत्मानद जैन महासभा पजाब

जालंधर शहर

प्रथम सस्करण २०००

वीर स २४७४ आत्म स ५३ वि २००५ खिस्ताब्दि १९४८

मूल्य २॥) अढी रुपये

मिलने का पता—

आनन्द पुस्तक भण्डार

आनन्द प्रिंटिंग प्रेस

गोपालजी का रास्ता, जयपुर

पुस्तक प्राप्तिस्थान



१ श्री आत्मानंद जैन सभा मु. भावनगर (काठियावाड)
२ श्री आत्मानंद जैन सभा मु. बम्बइ (१७ धनजी स्ट्रीट)
३ श्री आत्मानंद जैन सभा अंबाला शहर (पंजाब)
४ श्री आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचार मंडल रोशनमुहल्ला मु. आगरा (यू. पी.)

मुद्रक :-शाह गुलाबचंद लल्लुभाइ श्री महोदय प्रीन्टींग प्रेस, दाणापीठ-भावनगर.

ॐ अर्हं नमः

वन्दे श्रीवीरमानदम् श्री वल्लभसद्गुरु सदा

निवेदन

सर्व सज्जनों को विदित होवे कि गुजराती भाषा से अपरिचित देशों के खास कर के पंजाब देश के उपकारार्थ सुप्रसिद्ध न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजी प्रसिद्धनाम श्रीआत्मारामजी महाराज के पट्ट प्रभावक पंजाबकेसरी अज्ञानतिमिरतरणि, कलिकालकल्पतरु, वर्तमान युगवीर जैनाचार्य श्रीमद् विजयवल्लभसूरिजी महाराज की शुभ संमति से आप के ही शिष्यरत्न प्रखरशिक्षाप्रचारक मरुधरोद्धारक आचार्य श्रीमद् विनयललितसूरिजी महाराज तथा आचार्यदेव के प्रशिष्य देवतात्मा परम गुरुभक्त पन्यासजी श्रीसमुद्रविजयजी महाराज की सहायता से श्रीपर्युषणा पर्व में उपयोगी होनेवाला श्रीकल्पसूत्र हिन्दी भाषा में प्रकाशित कराया गया है।

समय विचित्र आजाने से कई प्रकार की त्रुटिया रहने का संभव है, कृपया सज्जन वाचकवर्ग क्षमा करें और जो जो त्रुटियां दृष्टिगोचर होवे वो कृपया अनुग्रह बुद्धि से हमारे दफतर में सूचित करें।

जिससे द्वितीयावृत्ति में सुधारा हो जावे। इत्यलम् सुज्ञेषु।

निवेदक

सेवक परमानंद जैन

सैकेटरी, श्री आत्मानंद महासभा पंजाब (पंजाब श्रीसंघ)

ज [illegible] बिल्डिंग, [illegible]

अम्बाला शहर।

॥ ॐ परमेष्ठिने नम ॥

॥ वन्दे श्रीवीरमानन्दम् वन्दे वल्लभसद्गुरुम् ॥

श्रीकल्पसूत्र का

हिन्दी अनुवाद-



श्री १००८ श्रीमदुपाध्याय विनयविजयजी महाराज विरचित

सुबोधिका टीका का हिन्दी भाषांतर

[श्री कल्पसूत्र जो सर्व शास्त्रों मे शिरोमणि है और जिस के प्रति जैन के बच्चे २ की श्रद्धा और भक्ति है उस पर अनेक पूर्वपुरुषोंने अनेक टीकायें रची हैं जिनमें से उपाध्याय श्री विनयविजयजी म० की सुबोधिका नामकी टीका बहोत ही प्रख्यात और आदरणीय है उसका यह अक्षरशः हिन्दी भाषांतर किया जाता है ।]

प्रथम व्याख्यान–

मंगलाचरण–

परम कल्याण के करनेवाले श्री जगदीश्वर अरिहन्त प्रभु को प्रणाम करके मैं बालबुद्धिवालों को उपकार करनेवाली ऐसी सुबोधिका नामकी कल्पसूत्र की टीका करता हूं १। इस कल्पसूत्र पर निपुण बुद्धिवाले पुरुषों के लिए यद्यपि बहुतसी टीकायें हैं तथापि अल्पबुद्धिवाले मनुष्यों को बोध प्राप्त हो इस हेतु से यह टीका करने में मेरा प्रयत्न सफल है २। यद्यपि सूर्य की किरणें सब मनुष्यों को वस्तु का बोध करनेवाली होती हैं तथापि भोंरे में रहे हुए मनुष्यों को तो तत्काल दीपिका ही उपकार करती है ३। इस टीका में विशेष अर्थ नहीं किया, युक्तियाँ नहीं बतलाई और पद्य पाण्डित्य भी नहीं दिखलाया गया है परन्तु सिर्फ बालबुद्धि अभ्यासियों को बोध करनेवाली अर्थ व्याख्या ही की है ४। यद्यपि मैं अल्प बुद्धिवाला होकर यह टीका रचता हूं तथापि सत्पुरुषों का उपहासपात्र नहीं बनूंगा क्योंकि उन्हीं सत्पुरुषों का यह उपदेश है कि सब मनुष्यों को शुभ कार्य में यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये ५।

पूर्वकाल में नवकल्प विहार करने के क्रम से प्राप्त हुए योग्य क्षेत्र में और आजकल परंपरासे गुरु की आज्ञा-वाले क्षेत्र में चातुर्मास रहे हुए साधु कल्याण के निमित्त आनन्दपुर में सभा समक्ष वांचे बाद संघ के समक्ष

पाँच दिन और नव वाचनाओं से श्रीकल्पसूत्र को बाँचते हैं। इस कल्पसूत्र में (कल्प) शब्द से साधुओं का आचार कहा जाता है। उस आचार के दश भेद हैं, जो इस प्रकार हैं १ आचेलक्य, २ औद्देशिक, ३ शय्यातर, ४ राजपिण्ड, ५ कृतिकर्म, ६ व्रत, ७ ज्येष्ठ, ८ प्रतिक्रमण, ९ मासकल्प, और १० पर्युषणा, इन दश कल्पों की व्याख्या इस प्रकार है:—

१ आचेलक्य—

जिस के पास चेल याने वस्त्र न हो वह अचेलक कहा जाता है, उस अचेलक का भाव सो 'आचेलक्य' अर्थात् वस्त्र का न होना। वह तीर्थंकरों को आश्रित कर के रहा हुआ है। उस में पहले और अन्तिम तीर्थंकर को शक्रेन्द्र द्वारा मिले हुए देवदूष्य वस्त्र के दूर होने पर उन्हें सर्वदा अचेलक अर्थात् वस्त्र रहित होना सिद्ध है और दूसरे बाइस तीर्थंकरों को सदा सचेलक कहा है। साधुओं की अपेक्षा से श्री अजितनाथ आदि बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ के साधु, कि जो सरल और प्राज्ञ कहलाते हैं उन्हें अधिक मूल्यवान विविधरंगी वस्त्रों के उपभोग की आज्ञा होने से सचेलकत्व अर्थात् वस्त्र सहितपणा है और कितने एक श्वेतरंगी बहु परिमाण वाले वस्त्र को धारण करनेवाले होने के कारण उन्हें अचेलकत्व ही है। इस प्रकार उनके लिए यह कल्प अनियमित रूप से है। जो श्री ऋषभ और श्री वीर प्रभु के तीर्थ के साधु हैं व सब श्वेत और परिमाणवाले जीर्ण-पुराने वस्त्र धारण करनेवाले होने के कारण अचेलक ही हैं। यहाँपर शंका होती है कि वस्त्र का सद्भाव होने पर भी

उन्हें अचेलक कैसे कहा जा सकता है ? इस का समाधान यह है कि जो जीर्ण होता है वह कम होने के कारण वस्त्र रहित ही कहा जाता है। यह सब लोगों में प्रसिद्ध ही है। जैसे कोइ मनुष्य एक लंगोटी पहन कर नदी उतरा हो तो वह कहता है कि मैं नग्न होकर नदी उतरा हूँ। ऐसे ही वस्त्र होने पर भी लोग दर्जी और धोबी को कहते हैं कि भाई ! हमें जल्दी वस्त्र दो, हम नग्न फिरते हैं। इसी प्रकार साधुओं को वस्त्र होने पर भी अचेलक समझ लेना योग्य है। यह प्रथम आचार हुआ।

२ औद्देशिक कल्प—

उद्देसिअ=औद्देशिक कल्प अर्थात् आधाकर्मी। साधु के निमित्त अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र और उपाश्रय आदि जो बनाया हो वह प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में एक साधु को, एक साधु के समुदाय को, अथवा एक उपाश्रय को आश्रित कर के बनाया गया हो वह सब साधुओं को नहीं कल्पता। परन्तु बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ में जिस साधु को उद्देश कर के बनाया गया हो उसको ही नहीं कल्पता दूसरों को कल्पता है। यह दूसरा औद्देशिक आचार है।

३ शय्यातर कल्प—

तीसरा कल्प शय्यातर—जो उपाश्रय का स्वामी हो सो शय्यातर, उसका पिण्ड अर्थात् १ अशन, २ पान,

३ खादिम, ४ स्वादिम, ५ वस्त्र, ६ पात्र, ७ कवल, ८ रजोहरण, ९ सुई, १० उस्तरा, ११ नाखून तथा दाँत सुधारने का अस्त्र और १२ कान साफ करने का साधन, यह बारह प्रकार का पिण्ड है। यह सब तीर्थंकरों के तीर्थ में सब साधुओं को नहीं कल्पता। क्योंकि इस से अनेषणीय वस्तु का प्रसग और उपाश्रय मिलना दुर्लभ हो जाय, इत्यादि बहुत दोष लगने का सभव है। यदि साधु सारी रात जागे और प्रात काल का प्रतिक्रमण दूसरे मकान म जा कर कर तो वह मूल उपाश्रय का स्वामी शय्यातर नहीं होता और यदि साधु वहाँ निद्रा लेवे और प्रतिक्रमण दूसरे स्थान पर कर तो उन दोनों स्थानों का स्वामी शय्यातर होता है। एव चारित्र की इच्छावाला उपधिसहित शिष्य तथा तृण, मट्टी क डले, भस (राख,) मल्लक (कूँडी-प्याला) काष्टपट्टक, चौकी, सथारा और लेप आदि वस्तुयें शय्यातर की भी कल्पती है। यह तीसरा शय्यातर आचार है।

४ राजपिण्ड—

राजपिण्ड—सेनापति, पुरोहित, नगरशेठ, मत्री और सार्थवाह-इन पाँचों सहित राज्यपालन करनेवाला और जिसको राज्याभिषेक मूर्धाभिषिक्त हुआ हो अर्थात् जिसक मस्तक पर अभिषक हुआ हुवा हो उसका पिण्ड राजपिण्ड कहलाता है। वह अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कवल और रजोहरण ८ प्रकार का कहलाता है सो पहले और अन्तिम तीर्थंकरों के साधुओं को राजकुल में आने जाने मे सामन्त आदि से स्वाध्याय का विनाश होने का सभव है, तथा साधुओं को दख कर अपशकुन बुद्धि से शरीर को व्याघात

होने का संभव है तथा खाद्यलोभ, लघुता और निन्दा होने का संभव होने के कारण राजपिण्ड का निषेध किया है। बाईस तीर्थंकरों के साधु सदैव सरल और प्राज्ञ होते हैं इस लिए उनको उपरोक्त दोष का अभाव होने से उन्हें राजपिण्ड कल्पता है। यह चौथा राजपिण्ड आचार है।

५. कृतिकर्म—

कृतिकर्म-वन्दना, वह दो प्रकार की है। अभ्युत्थान और द्वादशावर्त्त। वन्दना सब तीर्थंकरों के तीर्थ में साधुओं को परस्पर दीक्षा पर्याय से करनी चाहिये। साध्वी यदि चिरकाल की दीक्षित हो तथापि उसके लिए नवीन दीक्षित साधु वन्दनीय है, क्योंकि धर्म में पुरुष की प्रधानता है। यह पाँचवां कृतिकर्म आचार है।

६. व्रतकल्प—

व्रत-महाव्रत उनमें से बाईस तीर्थंकरों के साधुओं को चार होते हैं, क्योंकि वे यह समझते हैं कि अपरिग्रहीत स्त्री के साथ भोग होना असंभव है, इस लिए स्त्री भी परिग्रह ही है, अर्थात् परिग्रह का परित्याग करने से स्त्री का भी परित्याग हो जाता है। पहले और अन्तिम तीर्थंकरों के साधुओं को तो ऐसा ज्ञान नहीं होता। इसी कारण उनके लिए पाँच महाव्रत हैं। यह छठा व्रत आचार है।

७. ज्येष्ठकल्प—

ज्येष्ठ-बड़ेका कल्प। अर्थात् बड़े छोटे का व्यवहार। उस में पहले और अन्तिम तीर्थंकरों के साधुओं

में उपस्थापना—बड़ी दीक्षा से लेकर दीक्षा—पर्याय गिना जाता है और बाईस तीर्थंकरों के साधुओं में निरतिचार चारित्र होने से प्रथम दीक्षा के दिन से ही दीक्षापर्याय गिना जाता है। अब पिता और पुत्र, माता और पुत्री, राजा तथा मंत्री, सेठ और मुनीम आदि यदि साथ ही दीक्षा लेवें तो उन्हें गुरु लघुत्व का स्थापन कैसा करना चाहिये सो कहते हैं—यदि पिता आदि गुरु जनों और पुत्रादि लघु जनों ने साथ ही दशवैकालिक ग्रंथ का चतुर्थ अध्ययन तक पठन और योगोद्वहन कर लिया हो तो उन्हें अनुक्रमसे ही स्थापित करना उचित है। यदि उसमें कुछ थोड़ा अन्तर हो, तो भी पुत्रादि को विलम्ब कराकर पितादि को ही बड़ा रखना योग्य है। ऐसा न किया जायतो पिता आदि को छोटे होने के कारण पुत्रादि पर अप्रीति होने की सम्भावना है। यदि पुत्रादि बुद्धिमान् हों और पितादि स्थूल बुद्धि हों और उन दोनों में अधिक अन्तर हो तो उनको इस प्रकार समझाना चाहिये—" हे महानुभाव! तुम्हारा पुत्र बुद्धिमान होने पर भी दूसरे पक्ष से साधुओं में छोटा हो जायगा। यदि आपका पुत्र बड़ा गिना जाय तो इसमें आप का ही गौरव है" इस प्रकार समझाने पर यदि वह समझ जाय और अनुज्ञा दे तो पुत्रादि को बड़ा स्थापन करना चाहिए। यदि न स्वीकार करे तो जैसे हैं वैसे ही क्रम से स्थापन करना संगत है। यह सातवां ज्येष्ठ आचार है।

८ प्रतिक्रमण कल्प—

अतिचार लगे या न लगे तथापि श्रीऋषभदेव और श्रीवीर प्रभु के मुनियों को दोनों समय अवश्यमेव

प्रतिक्रमण करना चाहिये । शेष तीर्थंकरों के साधुओं को दोष लगे तो प्रतिक्रमण करना चाहिये, अन्यथा नहीं । उसमें भी मध्यम तीर्थंकरों के साधुओं को कारण होने पर ही दैवसिक और रात्रिक (राई) प्रतिक्रमण करना चाहिये । इसके अतिरिक्त पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने की उन्हें आवश्यकता नहीं । यह आठवाँ प्रतिक्रमण कल्प जानना ।

९. मासकल्प—

पहले तथा अन्तिम तीर्थंकरों के मुनियों को, मासकल्प की मर्यादा नियम से उन्हे दुष्काल, अशक्ति और रोगादि कारणों में शहर के पुरे में, दूसरे महल्ले में और उस वसति के कौने में परावर्तन कर के भी इस मर्यादा को बनाये रखना व पालना शास्त्र का आदेश है । परन्तु शेष काल में एक मास से अधिक एक स्थान पर न रहना चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से प्रतिबन्ध, लघुता आदि बहुतसे दोष प्राप्त हो सकते हैं । परन्तु मध्यम तीर्थंकरों के मुनि सरल और प्राज्ञ होने के कारण उपरोक्त दोषों से वर्जित हैं अतः उनको मासकल्प की मर्यादा नियम से नहीं हैं । वे मुनि एक स्थान पर पूर्वकोटि तक भी रह सकते हैं और दोष लगने की संभावना होने पर महीने के अन्दर भी विहार कर जासकते हैं । यह नवमा मासकल्प जानना ।

१०. पर्यूषणकल्प—

पर्युषणा—एक स्थान पर निवास तथा वार्षिक पर्व ये दोनों का नाम पर्युषणा है । वार्षिक पर्व—भाद्रपद

भागकी शुक्ल पंचमी को और कालकाचार्य के बाद शुक्ल चतुर्थी को ही होता है। समस्ततया निवास रूप जो पर्युषणा कल्प है वह दो प्रकारका है। सालंबन और निरालंबन। उसमें जो निरालंबन कारण के अभाववाला पर्युषणा कल्प है उसके जघन्य और उत्कृष्ट ऐसे दो भेद हैं। उसमें जघन्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमण से लेकर कार्तिक चातुर्मास के प्रतिक्रमण तक सित्तर दिन के परिमाणवाला है। उत्कृष्ट पर्युषणा काल चार मास का माना जाता है। मतलब पहले जमाने में ऐसा रिवाज था कि जहां साधुओं को चातुर्मास करना होता वहां सिर्फ पांच दिन ठहरते और जब पांच दिन पूरे हो जाते तो फिर मकान मालिक से और पांच दिन की आज्ञा लेकर रहते। इस तरह से क्षेत्र की अनुकूलता देखकर अगर पचास दिन वहां पूरे हो जाते तो पिछले सित्तर दिन वहां पर ही रहकर चातुर्मास पूर्ण करते, मगर आज कल यह प्रथा नहीं है। आज कल तो चार मास की ही आज्ञा लेकर रहा जाता है। यह दो प्रकार का निरालंबन-पर्युषणा काल स्थविरकल्पियों का है। जिनकल्पियों के लिए तो एक निरालंबन चातुर्मासिक ही कल्प है, जिस क्षेत्र में मासकल्प किया हो उसी क्षेत्र में चातुर्मास करने से और चातुर्मास किये बाद मासकल्प करने से ६ मास का कल्प होता है यह भी स्थविरकल्पियों के लिए ही उचित है। यह पर्युषणा कल्प प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के तीर्थ में नियत है और शेष बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ में अनियत है, क्योंकि उनके साधु तो दोष के न होने पर एक ही स्थान में देश ऊणा-कुछ कम पूर्वकोटि तक रहते हैं और यदि दोष मालूम दे तो एक मास भी नहीं रहते। इसी प्रकार महाविदेह क्षेत्र में भी

बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के जैसी ही वहाँ के तीर्थंकरों के साधुओं की कल्पव्यवस्था जान लेनी चाहिए। इति दशमः पर्युषणा कल्पः । इस तरह यह दशवां पर्युषणा कल्प समझना ।

ये उपरोक्त दशकल्प श्री ऋषभदेव और श्री महावीर प्रभु के तीर्थ में नियत हैं और अन्य बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ में अचेलक, औद्देशिक, प्रतिक्रमण, राजपिण्ड, मासकल्प और पर्युषणा ये ६ कल्प अनियत हैं और शेष ४ चार शय्यातर, कृतिकर्म, व्रत और ज्येष्ठ कल्प नियत हैं। यहाँ पर यदि कोई शंका करे कि सबके लिए एक समान साध्य मोक्षमार्ग में पहले, अन्तिम और बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के आचार में भेद क्यों ? इस के समाधान में कहते हैं कि इस में जीव विशेष ही कारण है। श्रीऋषभदेव प्रभुके तीर्थ के जीव सरल स्वभाववाले और जड़बुद्धि होते हैं। अतः उन्हें धर्मका बोध होना दुर्लभ है, क्योंकि उन में जड़त्व है। श्रीवीर प्रभु के तीर्थ के जीव वक्र और जड़ हैं इस लिए उन्हे धर्मका पालन दुष्कर है। श्रीअजितनाथ आदि बाईस तीर्थंकरों के साधुओं को धर्मका बोध और पालन–ये दोनों ही सुकर हैं, क्योंकि वे सरलस्वभावी और प्राज्ञ होते हैं। इसी कारण उनके आचार में भेद पड़ा है। यहाँ पर उन के दृष्टान्त बतलाते हैं—

ऋजु–जड पर दृष्टांत (पहिला)

प्रथम तीर्थंकर के कई–एक साधु शौच आदि से निवृत्त होकर कुछ देरमें आये। उनसे गुरुने पूछा कि आज इतनी देर कहां हुई ? साधु बोले–स्वामिन् ! मार्ग में एक नट नाच रहा था उसे देखने में देर हो गई। गुरुने

कहा कि-हे महानुभावो ! नट का नाच देखना साधु को नहीं कल्पता । साधुओंने सादर गुरु का वचन अंगीकार कर लिया। एक दिन फिर वेही साधु बाहर से कुछ देर कर के आये, पूर्ववत् गुरु के पूछने पर वे बोले-स्वामिन्! आज हम रास्ते में नाच करती हुई एक नटनी को देखने खडे हो गए थे। गुरु बोले-हे महानुभावो ! उस दिन हमने तुम्हें नट का नाच देखना मना किया था। जब नट का नाच देखना मना है तब नटनी के नाच का तो स्वयं ही निषेध हो गया क्योंकि वह अधिक राग का कारण है। वे हाथ जोड कर बोले-महाराज ! हमें यह मालूम नहीं था। अब से हम ऐसा न करेंगे। यहाँ पर वे प्रथम तीर्थंकर के साधु जडबुद्धि होने से नट का नाच निषेध करने पर नटनी का नाच निषेध नहीं समझ सके, परन्तु ऋजु स्वभाववाले होने के कारण गुरु को सरल उत्तर दे दिया।

(दूसरा दृष्टांत)

इसी प्रकार का एक दूसरा भी दृष्टान्त दिया है—कुकण देश के किसी एक वणिकने वृद्धावस्था में दीक्षा ली थी। एक दिन उस नये मुनिने ईर्यावही के कायोत्सर्ग में अधिक देर लगा दी। जब उसने कुछ देर के बाद कायोत्सर्ग पारा तब गुरु महाराजने पूछा कि-इतनी देर ध्यान कर के तुमने क्या चिन्तवन किया? वह बोला-स्वामिन्! जीवदयाका चिन्तवन किया। गुरुने पूछा-जीवदया का चिन्तवन किस प्रकार का? वह बोला-भगवन्! पहले गृहस्थावस्थामें खेतमें उगे हुए वृक्ष झाडी आदि को उखेड कर मैं खेत बोता था तब

अच्छे धान्य पैदा होते थे। अब यदि मेरे लड़के निश्चिन्त रह कर खेतमेंसे घास, तृण आदि न उखाड़ेंगे तो धान्य पैदा न होनेसे उन बिचारों का क्या हाल होगा ? इस प्रकार सरलतासे अपना यथार्थ अभिप्राय गुरु के समक्ष कह दिया। गुरुने कहा कि-हे महानुभाव! तुमने यह दुर्ध्यान किया है, मुनियों को ऐसा ध्यान चिन्तवन नहीं करना चाहिये। गुरुके निषेध करने पर उसने तहत्ति कह कर मिच्छामिदुक्कडं दिया। ये दो दृष्टान्त प्रथम तीर्थंकर के समय के प्राणियों की जड़ता और सरलता को बतलाते हैं। अब श्रीवीर प्रभु के शासन के साधुओं के लिए भी दो दृष्टान्त देते हैं—

वक्र-जड़ पर दृष्टांत (पहिला)

(१) एक दिन श्रीवीर प्रभु के शासन के साधु मार्ग में एक नट का नाच देख बाहर से देर में आये। मालूम होने से गुरुने नटके नाच देखने का निषेध किया। फिर एक दिन वे रास्ते में नाचती हुई नटनी को देख कर आये। गुरुने देरी का कारण पूछा तब सत्य छिपा कर और ही उत्तर देने लगे। जब गुरुने तर्जना कर पूछा, तब उन्हों ने यथार्थ बात बतला दी। गुरुने धमकाया और कहा कि-उस दिन निषेध किया था फिर भी तुम नटनी का नाच देखने क्यों खड़े रहे ? ऐसी शिक्षा देने पर उल्टा गुरु को ही वे उलहना देने लगे कि जब आपने नट का नाच निषेध किया था तभी नटनी के नाच का भी निषेध करना चाहिए था। इसमें हमारा क्या दोष है ? यह तो आपका ही दोष है जो उस वक्त आपने नटी का नाच देखना भी निषेध न किया।

(२) एक व्यापारी अपने पुत्र को हमेशा यह शिक्षा दिया करता था कि बेटा ! पिता आदि अपने गुरुजनों के सामने बोलना न चाहिये। पिता की इस प्रशस्त शिक्षा को पुत्रने वक्रतया मन में धारण कर रक्खा। एक दिन घर के सब मनुष्य बाहर गये थे। उसने अवसर देख कर विचारा कि सदैव शिक्षा देनेवाले पिता को आज मैं भी शिक्षा दूं ! यह सोच कर वह मकान के भीतर की साकल लगा कर घर में बैठ गया। पितादि के घर आने पर बहुतसी आवाजें देने से भी उसने अन्दर से साकल न खोली। तंग हो कर दीवार पर से कूद कर पिताने अन्दर झांक देखा तो लड़का खिड़ खिड़ा कर हँस रहा है। धमकाने पर वह पिता से बोला–आपने ही तो मुझे शिक्षा दी हुई है कि बड़ों के सामने न बोलना ! फिर मैं कैसे आपकी आज्ञा भंग करता ! इन दोनों दृष्टान्तों से श्रीवीर प्रभु के तीर्थवर्ती प्राणियों की वक्रता और जड़ता झलक आती है। अब श्री अजितनाथादि बाईस तीर्थंकरों के ऋजु प्राज्ञ मुनियों के दृष्टान्त देते हैं —

ऋजु–प्राज्ञ पर दृष्टात

एक दिन कितनेक श्री अजितनाथ प्रभु के साधु मार्ग में नट का नाच देखकर देर से आये। देरी का कारण पूछने पर उन्होंने गुरु के सामने यथार्थ बात कहदी। गुरुने नट नाच देखना निषेध किया। एक दिन वे दिशा जाकर वापिस उपाश्रय को लौट रहे थे। रास्ते में एक नटनी नाच रही थी। उसे देख कर प्राज्ञ होने के कारण वे विचार करने लगे कि उस दिन गुरुजीने राग पैदा होने में कारणभूत होने से नट का नाच

देखना मना किया था तो नटनी का नाच तो विशेष रागजनक होने से वह तो स्वतः ही निषिद्ध है । इस तरह विचार कर नटी का नृत्य देखे विना ही उपाश्रय चले आये। यहाँ पर शिष्य की ओर से कहा जाता है कि तब तो बाईस तीर्थंकरों के ऋजु और प्राज्ञ मुनियों को ही धर्म हो सकता है, परन्तु ऋजुजड़ प्रथम तीर्थंकर के मुनियों को कैसे धर्म हो सकता है ? क्योंकि उन में बोध नहीं होता। तथा श्रीवीर प्रभु के वक्र और जड़ मुनियों को तो सर्वथा धर्म का अभाव ही होना चाहिये। गुरु कहते हैं कि–ऐसी शंका न करना, क्योंकि यद्यपि प्रथम तीर्थंकर के मुनियों को जड़ता के कारण स्खलना पाने का संभव है तथापि उनका भाव शुद्ध होने से उनमें धर्म होता है। एवं वीरप्रभु के मुनि वक्र और जड़ होने से उनका मनोभाव ऋजु प्राज्ञ की अपेक्षा शुद्ध न होवे तथापि सर्वथा धर्म ही उनमें नहीं है ऐसा नहीं कहा जासकता। ऐसा कहने में महान दोष लगता है। इस विषय में कहा है कि–जो यह कहे कि आज धर्म नहीं है, सामायिक नहीं है और व्रत नहीं है उसे समस्त संघ को मिलकर संघ से बाहर कर देना उचित है।

कारणवश विहार और क्षेत्रगुण

जो पर्युषणाकल्प सत्तर दिनमान नियततया कथन किया है सो भी कारण के अभाव में ही समझना योग्य है। यदि कुछ कारण हो तो चातुर्मास में विहार करना कल्पता है; जैसे कि " उपद्रव हो, आहार न मिलता हो और राजादि से अपमान होता हो या रोगादि कारण हो तो चातुर्मास में भी अन्यत्र विहार करना

कल्पता है। शौच जाने की जगह अच्छी न हो, उपाश्रय में जीवोत्पत्ति हो, कुथुवे हुए हों, अथवा आग लग गयी हो, सर्पादि का भय हो तो वहा से अन्यत्र विहार कर सकते हैं। यदि निम्न कारण हों तो चातुर्मास के बाद भी रहना कल्पता है। वृष्टि बन्ध न होती हो, और मार्ग कीचडवाला हो तो कार्तिक पूर्णिमा के बीतने पर भी उत्तम मुनि वहां रह सकते हैं। ऊपर कथन किये उपद्रवादि दोष न हों तथापि सयम निर्वाह के लिए क्षेत्र के गुणों की गवेषणा करना युक्ति सगत है। क्षेत्र जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम एव तीन प्रकार का कहा है। उसमें जो चार गुणयुक्त हो वह जघन्य कहा जाता है। वे चार गुण इस प्रकार हैं–जहां पर जिनमंदिर हो, जहां पर स्थडिल–शौच जाने की शुद्ध और निर्जीव एव परदेवाली जगह हो, जहा स्वाध्याय करने की भूमि सुलभ हो और जहां पर मुनियों को आहार पानी सुलभता से मिल सकता हो। जो तेरह गुणों से युक्त हो वह क्षेत्र उत्कृष्ट कहा जाता है। वे तेरह गुण ये हैं–(१) जहां पर विशेष कीचड न होता हो, (२) जहां पर अधिक समूर्च्छिम जीव उत्पन्न न होते हों, (३) शौच जानेका स्थान निर्दोष हो, (४) रहने का उपाश्रय स्त्रीससर्गादि से रहित हो, (५) गोरस अधिक मिल सकता हो, (६) लोकसमूह विशाल और भद्रिक हो, (७) वैद्य भद्रिक हो, (८) औषधी सुलभ हो, (९) गृहस्थों के घर सकुटुम्ब और धन धान्यादि से पूर्ण हों, (१०) राजा भद्रिक हो, (११) ब्राह्मणादिकों से मुनियों का अपमान न होता हो, (१२) भिक्षा सुलभ हो और (१३) जहा पर स्वाध्याय शुद्ध होता हो। इन तेरह गुणों युक्त उत्कृष्ट क्षेत्र जानना चाहिये। पहले कथन किये चार गुणों से अधिक अर्थात्

पांचवें गुण से लेकर बाहरवें गुण पर्यन्त मध्यम क्षेत्र समझना चाहिये । प्रथम उत्कृष्ट क्षेत्र की गवेषणा करना। वैसा न मिलने पर मध्यम क्षेत्र खोजना और यदि वह भी न मिले तो जघन्य क्षेत्र में चातुर्मास करना; परन्तु वर्तमानकाल में तो गुरु महाराजने आज्ञा की हो उस क्षेत्र में मुनियों को चातुर्मास करना चाहिये।

दश प्रकार के कल्प (आचार) पर वैद्य की कथा

ऊपर बतलाया हुआ यह दश प्रकार का कल्प यदि दोष के अभाव में किया हो तो तीसरे वैद्य की औषधी के समान गुणकारी होता है । किसी एक राजाने अपने पुत्र को भविष्य में रोग न हो ऐसी चिकित्सा करने के लिए तीन वैद्य बुलवाये । उनमें से प्रथम वैद्य बोला कि मेरी औषधि यदि रोग हो तो उसका नाश करती है और रोग न होतो दोष प्रकट करती है । राजा बोला-सोते हुए सर्प के जगाने के समान ऐसी औषधि से मुझे प्रयोजन नहीं । दूसरा वैद्य बोला कि मेरी औषधि यदि रोग हो तो उसे नष्ट करती है और रोग न होतो न गुण न दोष करती है-राजाने कहा यह भी राख में घी डालने के समान है, ऐसी औषधि की कोई जरूरत नहीं। तीसरे वैद्यने कहा कि मेरी औषधि यदि शरीर में रोग होतो उसे नष्ट करती है और रोग न हो तो बल, वीर्य, सौन्दर्य आदि की पुष्टि करती है । राजाने कहा कि-यह औषधि सर्वश्रेष्ठ है । वैसे ही यह कल्प भी दोष हो तो उसका नाश करता है, दोष न हो तो धर्म का पोषण करता है । इस लिए प्राप्त हुए पर्युषणा पर्व में मंगल के निमित्त पांच दिन में नव वाचनाओं द्वारा कल्पसूत्र का वांचना श्रेयस्कर है ।

पर्युषण पर्व और कल्पसूत्र की महिमा तथा कल्पसूत्रश्रवण से अपूर्व लाभ

जैसे देवों में इंद्र, तारों में चंद्र, न्याय प्रवीण पुरुषों में राम, रूपवानों में काम, रूपवती स्त्रियों में रंभा, वाद्यों में भंभा, हाथियों में ऐरावण, साहसिकों में रावण, बुद्धिमानों में अभयकुमार, तीर्थों में शत्रुंजय, गुणों में विनय, धनुषधारियों में अर्जुन, मंत्रों में नवकार और वृक्षों में सहकार(आम्र) उत्तम हैं वैसे ही सर्व शास्त्रों में यह कल्पसूत्र सिरमौर माना जाता है, कहा भी है कि जैसे मंत्रों में परमेष्ठि मंत्र की महिमा है, तीर्थों में शत्रुंजय की महिमा, दानों में दयादान की महिमा, गुणों में विनयगुण की, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत की, नियमों में संतोष, तप में समता और तत्त्वों में सम्यग्दर्शन की महिमा है वैसे ही श्री सर्वज्ञ प्रभु कथित सर्व पर्वों में श्री वार्षिक पर्व–पर्युषणा उत्कृष्ट है। जैसे कि अरिहन्त से बढ़कर देव नहीं, मुक्ति से बढ़कर पद नहीं, शत्रुंजय से बढ़कर तीर्थ नहीं, वैसे ही कल्पसूत्र से बढ़कर अन्य कोई शास्त्र नहीं है। यह कल्पसूत्र साक्षात् कल्पवृक्ष ही है। यह पश्चानुपूर्वीसे कथन किया होने के कारण श्री वीरचरित्र बीजरूप है, श्रीपार्श्वनाथ चरित्र अंकुर है, श्रीनेमिनाथ चरित्र स्कंध है, श्रीऋषभदेव चरित्र शाखासमूह है, स्थविरावलीरूप पुष्प हैं, समाचारी ज्ञानरूप परिमल–सुगन्ध है और मोक्षप्राप्ति यह इस कल्पसूत्ररूप कल्पवृक्ष का फल है। इसके वाचने से, वाचक को सहाय करने से और इसके सर्वाक्षर श्रवण करने से विधिपूर्वक आराधन किया हुआ यह कल्पसूत्र आठ भवों के अंदर मोक्षदायक होता है। जो मनुष्य जिनशासन की पूजा और प्रभावना में तत्पर होकर

एकाग्र चित्त से इस कल्पसूत्र को इक्कीस दफा सुनता है हे गौतम ! वह इस संसारसागर से तर जाता है, इस प्रकार श्रीकल्पसूत्र की महिमा सुनकर कष्ट और धन व्यय करने से साध्य तप, पूजा और प्रभावना आदि धर्मकृत्यों में आलस्य न करना चाहिये। क्योंकि उपरोक्त तपस्यादि सर्व सामग्री सहित ही कल्पसूत्र का सुनना वांछित फलदायक होता है। जैसे बोया हुआ बीज वृष्टि, वायु आदि सामग्री मिलने पर ही फल देने में समर्थ होता है वैसे ही यह कल्पसूत्र भी देव गुरु की पूजा प्रभावना और साधर्मिक की भक्ति आदि सर्व सामग्री के साथ सुनने से ही यथार्थ फल देनेवाला होता है। अन्यथा सर्व जिनवरों में श्रेष्ठ श्रीवर्धमान-स्वामी को किया हुआ एक भी नमस्कार पुरुष या स्त्री को इस संसारसागर से पार उतार देता है, ऐसा वचन सुनकर प्रयाससे साध्य इस कल्पसूत्र के सुनने में भी आलस्य आजायगा।

यह एक नियम है कि पुरुष के विश्वास से ही उसके वचन पर विश्वास जमता है इस लिए यहाँ पर कल्पसूत्र के कर्ता को बतलाते हैं। इसकी रचना करनेवाले चौदह पूर्वधारी युगप्रधान श्रीभद्रबाहुस्वामी हैं। उन्होंने प्रत्याख्यानप्रवाद नामक नवमे पूर्व में से उध्धृत कर के जो दशाश्रुतस्कंध शास्त्र बनाया उसका यह आठवां अध्ययन है। इस लिए महापुरुष प्रणीत होने से यह प्रमाणभूत है।

पूर्वों का प्रमाण

पहला पूर्व एक हाथी प्रमाण स्याही के पुंज से लिखा जा सकता है, दूसरा पूर्व दो हाथी प्रमाण स्याही,

तीसरा पूर्व चार हाथी प्रमाण स्याही, चौथा पूर्व आठ हाथी प्रमाण स्याही, पाँचवाँ पूर्व सोलह हाथी प्रमाण, छट्ठा पूर्व पचीस हाथी प्रमाण, सातवाँ पूर्व चौंसठ हाथी प्रमाण, आठवा पूर्व एकसौ अट्ठाईस हाथी प्रमाण, नवमा पूर्व दोसौ छप्पन हाथी प्रमाण, दशवां पूर्व पांचसौ बारह हाथी प्रमाण, ग्यारहवा एक हजार चौबीस हाथी प्रमाण, बारहवां दो हजार अड़तालीस हाथी प्रमाण, तेरहवा चार हजार और छानवें हाथी प्रमाण और चौदहवां आठ हजार एकसौ और बाणवें हाथी प्रमाण स्याही पुंज से तथा सब मिला कर चौदह पूर्व सोलह हजार तीन सौ तिरासी हाथी प्रमाण स्याही पुंज से लिखे जासकते हैं। अत महापुरुष का रचा हुआ होने से मान्य है और इसमें गंभीर अर्थ भरा है।

कहा है कि 'यदि सर्व नदियों की रेती एकत्रित करें और सब समुद्रों का पानी एकत्रित करें तथापि उससे अनन्तगुणा एक २ सूत्रका अर्थ होता है। मुख में हजार जीभ हों और हृदय में केवलज्ञान हो तो भी कल्पसूत्र की महिमा मनुष्यों से नहीं कही जा सकती। इस कल्पसूत्र को पढ़ने में और सुनने में मुख्यतया तो साधु साध्वी ही अधिकारी हैं। उसमें भी काल से रात्रि के समय कालग्रहणादि विधि को करनेवाले साधु ही बांच सकते हैं और साध्वियों को निशीथचूर्णि में कथन किये विधि के अनुसार साधुओं के उपाश्रय दिन में आकर सुनने का अधिकार है। श्रीवीरप्रभु के निर्वाण बाद नवसौ अस्सी वर्ष बीतने पर और मतान्तर से नवसौ तिराणवें वर्ष जाने पर आनन्दपुर नगर में पुत्र की मृत्यु से दु खित हुए ध्रुवसेन राजा के मन को धैर्य देने के

लिए यह कल्पसूत्र बड़े समारोह पूर्वक सभा के समक्ष वांचना प्रारंभ किया था, तबसे चतुर्विध संघ भी इसे सुनने का अधिकारी हुआ है। परन्तु वांचने का अधिकारी तो योगोद्वहन किया हुआ साधु ही है।

पर्वाधिराज में करने योग्य धर्मकार्य

इस वार्षिक पर्व में कल्पसूत्र सुनने के समान ही यह पांच कार्य भी अवश्य करने योग्य हैं–१. चैत्य परिपाटी–हरएक जैनमंदिर में दर्शनार्थ जाना, २. समस्त साधुओं को वन्दन करना, ३. सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना, ४. परस्पर खमाना और ५. अट्ठम तप करना। ये पाच कार्य भी कल्पसूत्र के श्रवण समान इच्छित पदार्थ को देनेवाले हैं एवं अवश्य करने योग्य हैं। जिनप्रभुने उक्त विधियों की आज्ञा की है। उनमें जो अट्ठम तप है वह तीन उपवास करने से होता है। यह तप महाफल का कारण, ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप तीन रत्नों को देनेवाला, तीन शल्य को उखेड़ फेंकनेवाला, तीन जन्म को पवित्र बनानेवाला, मन वचन, शारीरिक दोषों को शोषण करनेवाला और तीन जगत में श्रेष्ठ पद देनेवाला है। इसलिए मोक्षपद के अभिलाषी भवि प्राणियों को यह अट्ठमतप अवश्य करने योग्य है। उस पर नागकेतु का दृष्टान्त कहते हैं।

अट्ठम तप पर नागकेतु की कथा

चंद्रकान्ता नगरी में विजयसेन नामक राजा रहता था, उसी नगरी में श्रीकान्त नामक एक व्यापारी रहता था। उसके श्रीसखीनामा स्त्री थी। उसको बहुतसी मानतायें मानने पर एक पुत्र पैदा हुआ, वह

पुत्र अभी बालक ही था इतने में पर्यूषण पर्व आया। उस वक्त उसके कुटुंब में अट्ठम तप की बात चल रही थी। यह सुनकर जातिस्मरण होने से स्तनपान त्याग कर उस बालकने भी अट्ठम तप किया। स्तनपान न करता देख और अट्ठम तप करने के कारण मालती के वासी पुष्प समान कुमलाया देखकर माता पिताने अनेक उपाय किये, परन्तु सचेत न होकर वह बालक मुर्च्छित होगया। उसे मरा समझ कर उसके पिता भी उसके दुःख से मृत्यु को प्राप्त होगये। उस वक्त विजयसेन राजाने उस पुत्र और उसके बाप को मरा जानकर उसका धन ग्रहण करने के लिए सुभटों को भेजा। इधर उस बालक के अट्ठम तप के प्रभाव से धरणेंद्र का आसन कंपित हुआ। अवधिज्ञान से सर्व वृत्तान्त जानकर तत्काल ही भूमि पर पड़े हुए उस बालक को अमृत के सिंचन से सावधान कर ब्राह्मण का रूप धारण कर उसका धन ग्रहण करते हुए उसने राजा के सुभटों को रोका। यह सुनकर राजा भी वहाँ आकर कहने लगा कि हे ब्राह्मण! जिसका वारस न रहे उस धन को हम ग्रहण करते हैं यह हमारा परंपरागत नियम है, अतः तुम क्यों रोकते हो? धरणेंद्र बोला-राजन्! इस धन का वारस जिन्दा है। यह सुन राजादि कहने लगे कि कैसे जीवित है? बतलाइये कहां है? फिर धरणेंद्रने भूमि से साक्षात् निधि के समान बालक को जीवित दिखलाया। इससे सबके सब आश्चर्य में पड़कर पूछने लगे महाराज! आप कौन हैं? और यह क्या घटना बनी? धरणेंद्र बोला-मैं धरणेंद्र नामक नागराज हूँ। इस बालकने अट्ठम तप किया था इसी कारण मैं इसको सहाय करने आया हूँ। लोग बोले-हे स्वामिन्! पैदा होते ही

ऐसे छोटे बालकने अट्ठमतप किस तरह किया ? धरणेंद्र बोला–राजन् ! पूर्वभव में यह बालक एक बनिये का पुत्र था बालकपन में ही इसकी माता की मृत्यु हो गई थी, इससे इसकी सौतेली माता इसे अत्यंत सताया करती थी । इसने दुःखित हो अपनी सौतेली माता का दुःख अपने मित्र के सामने कहा । मित्र बोला कि भाई ! तुमने पूर्वभव में कुछ तप नहीं किया इसी कारण तुम्हारा पराभव होता है । उस दिन से वह कुछ तप करने लगा । अबके मैं आगामी पर्युषणा में अट्ठम तप करूंगा ऐसा निश्चय करके वह एक दिन घास की कुटिया में सो गया । अवसर देख कर उसकी सौतेली माताने उस कुटिया में एक अग्नि की चिनगारी डाल दी, जरासी देर में कुटिया जल कर राख हो गई; वह भी जल मरा और उस अट्ठम तप के ध्यान से वह इस श्रीकान्त शेठ का पुत्र हुआ है । इस कारण इसने पूर्वभव में चिन्तन किया अट्ठम तप अभी बाल्यावस्था में पूर्ण किया है । यह महापुरुष लघुकर्मी होने से इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा इसे यत्नपूर्वक पालन करने योग्य है । इससे तुम्हें भी बड़ा लाभ होगा । यों कह कर धरणेन्द्र उसके गले में हार डाल कर स्वस्थान पर चला गया ।

फिर उसके स्वजनोंने श्रीकान्त सेठ का मृतकार्य किया और उसके पुत्र का नाम 'नागकेतु' रक्खा । अनुक्रम से वह बाल्यावस्था से ही जितेंद्रिय परम श्रावक बना । एक दिन विजयसेन राजाने किसीएक मनुष्य को चोर न होने पर भी चोरी के कलंक से मार डाला था । वह मर कर व्यन्तर देव हुआ और पूर्व वैर से उसने सारे नगर को नष्ट कर डालने के लिए आकाश में एक बड़ी विशाल शिला रची । राजा को लात मार

कर रुधिर का वमन कराकर सिंहासन से नीचे गिरा दिया। यह देख नागकेतुने विचारा कि मै जीते हुए सघ का और इन गगनस्पर्शी जिनमंदिरों का विनाश कैसे देख सकता हू ? यों विचार कर के उसने एक ऊचे मंदिर के शिखर पर चढ कर उस शिला को धारण करने के लिए हाथ ऊँचा कर लिया। इससे उसके तपतेज की शक्ति को सहन न करने के कारण शिला को सहरित कर वह व्यन्तर उसके चरणों में नमा, और उसके वचन से उसने राजा को भी निरुपद्रव किया। एक दिन नागकेतु जिनेन्द्र पूजा कर रहा था उस वक्त पुष्प में रहे हुए एक तदुलिक सर्पने उसको डक मारा, तथापि वह व्याकुल न होकर भावना में आरूढ हो गया। शुद्ध भावना में तल्लीन होने से उसने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। फिर शासन देवताने उसे मुनिवेश अर्पण किया। इस प्रकार नागकेतु की कथा सुन कर दूसरों को भी अट्ठम तप करने में उद्यम करना चाहिये।

इस कल्पसूत्र में मुख्यतया तीन बातें वाचने की हैं, उसके विषय में पुरिमचरिमाण कप्पो०' यह गाथा है। इसकी व्याख्या यह है कि श्रीऋषभदेव और श्रीवीरप्रभु के साधुओं का यह कल्प-आचार है कि वृष्टि हो या न हो तथापि पर्युषणा पर्व अवश्य करना। साथ ही यह भी समझ लेना कि पर्युषणा पर्व में कल्पसूत्र भी वाचना। एक तो यह आचार है और दूसरा यह वीरप्रभु के शासन में मगलरूप है। यदि कोई शका करे कि श्री वीरप्रभु के शासन में क्यों कहा ? इसके लिए कहते हैं कि इसमें श्री जिनेश्वरों के चरित्र कथन किये हैं एव

(१) पुरिमचरिमाण कप्पो मगल वद्धमाणतित्थमि । इह परिकहिआ जिणगण-हराइथेरावली चरित "

गणधरादि स्थविरावली के चरित्र भी कथन किये हैं । तथा सामाचारी भी कही है । उसमें भी प्रथम अधिकार में सर्व जिनचरित्रों में निकट उपकारी होनेके कारण पहले श्रीवीरप्रभु का चरित्र वर्णन करते हुए श्री भद्रबाहुस्वामी जघन्य तथा मध्यम वांचनारूप प्रथम सूत्र रचते हैं ।

श्री महावीर प्रभु के पांच कल्याणक

उस समय और उस काल में श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु, श्रमण अर्थात् तपस्या करने में तत्पर और भगवान अर्थात् सूर्य और योनि अर्थ सिवाय शेष बारह अर्थवाले । भग शब्द के निम्न लिखे चौदह अर्थ होते हैं– " सूर्य, ज्ञान, महात्म्य, यश, वैराग्य, मुक्ति, रूप, वीर्य, प्रयत्न, इच्छा, लक्ष्मी, धर्म, ऐश्वर्य और योनि ।" इनमें से प्रथम सूर्य और अन्तिम योनि अर्थ वर्ज कर बाकी के तमाम अर्थवाले । महावीर, अर्थात् कर्मरूप वैरी को पराजित करने में समर्थ–ऐसे श्री श्रमण भगवान् महावीर प्रभु के पांच स्थानों में हस्तोत्तरा नक्षत्र अर्थात् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र आया है । सो इस प्रकार है–मध्यम वाचना से दर्शाते हैं कि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में प्रभु प्राणत नामक दशवे देवलोक से च्यव कर माता के गर्भ में आये, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में ही देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला रानी के गर्भ में आये, उत्तराफाल्गुनी में ही जन्मे, उत्तराफाल्गुनी में ही दीक्षित हुए और उत्तराफाल्गुनी में ही प्रभुने अनन्त वस्तु विषयक अनुपम केवलज्ञानदर्शन प्राप्त किया है । और स्वाति नक्षत्र में प्रभु निर्वाण हुए । अब विस्तारवाली वाचना से श्री वीरप्रभु का चरित्र कहते हैं ।

ग्रीष्मऋतु का चौथा माम था, आठवां पक्ष था, अर्थात् आपाढ माम का शुक्लपक्ष। उम आपाढ मास की शुक्ला छठ के दिन अर्धरात्रि के समय बीस मागरोपम की लम्बी स्थितिवाले, महान् विजयवाले पुष्पोत्तर नामक पुडरीक अर्थात् श्वेत कमल के ममान श्रेष्ठ महाविमान से देव सम्बन्धी आयु, भव, गतिनाम कर्म, स्थिति को पूर्ण कर के अन्तर रहित च्यव कर इसी जम्बूद्वीप में, जिममें रूप, रस, गधादि ममस्त पदार्थों की हानि होती है ऐसे अवसर्पिणी काल में, सुषमसुषमा नामक चार कोटाकोटी मागरोपम प्रमाणवाला पहला आरा बीत जाने पर, सुषमा नामक तीन सागरोपम प्रमाणवाला दूमरा आरा बीत जाने पर, सुषमादु षमा नामक दो कोटाकोटी सागरोपम प्रमाणवाला तीसरा आरा बीत जाने पर और दु षमसुषमा नामक चौथा आरा बहुतसा व्यतीत होजाने पर अर्थात् कुछ शेष रहने पर, तात्पर्य कि बैतालीम हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण चौथे आरे की स्थिति है, उसमें चौथे आरे के ७५-वर्ष और साढे आठ महिने शेष रहने पर श्री वीरप्रभु का अवतार हुआ है। बहत्तर वर्ष की श्री वीरप्रभु की आयु थी अत' श्री वीरप्रभु के निर्वाण बाद तीन वर्ष और साढे आठ महीने व्यतीत होने पर चौथे आरे की समाप्ति होती है। इस से प्रथम जो ४२००० हजार वर्ष कहे हैं वे इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष प्रमाणवाले पाँचवें और छठवें आरे सम्बन्धी ममझना चाहिये।

प्रभु का देवानदा ब्राह्मणी की कुक्षी में आना और चौदह स्वप्नों का देखना।

काश्यप गोत्रीय इक्कीस तीर्थंकर इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए तथा गौतम गोत्रीय बीसवें श्री मुनिसुव्रत और बावीसवें श्री नेमिनाथ ये दो तीर्थंकर हरिवंश कुल में उत्पन्न हुए। इस प्रकार तेईस तीर्थंकरों के हो जाने के पश्चात् श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु हुए हैं। पूर्व के तीर्थंकरों द्वारा कथन किये हुए अन्तिम तीर्थंकर श्री वीरप्रभुने ब्राह्मणकुंड नामा ग्राम में कोड़ाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा नाम की जालंधर गोत्रीया स्त्री की कुक्षि में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र को चंद्र योग प्राप्त होने पर गर्भरूप से अवतरे। जिस समय भगवन्त गर्भ में अवतरे उस वक्त वे तीन ज्ञानयुक्त थे। स्वर्ग से अपने चवने का समय जानते थे, परन्तु च्यवमान अर्थात् च्यवनकाल को नहीं जानते थे, क्यों कि वह एक समय मात्र सूक्ष्म काल होता है। 'आँख मीच कर खोलने में असंख्य समय काल बीत जाता है' उन में से वह एक समय काल समझना चाहिए। मैं च्यव कर यहां आ गया हूँ यह प्रभु जानते हैं।

जिस रात्रि को श्रमण भगवान् महावीर प्रभु जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भतया उत्पन्न हुए उस रात्रि में वह देवानन्दा ब्राह्मणी अपनी शय्या में अति निद्रा और अति जागरण अवस्था में नहीं थी अर्थात् वह अल्प निद्रावाली अवस्था में (जिन का आगे चल कर वर्णन करेंगे) ऐसे श्रेष्ठ कल्याणकारी, उपद्रव को हरनेवाले, धन धान्य को करनेवाले, मंगलमय शोभायुक्त चौदह स्वप्नों को देखकर जाग उठी। उन स्वप्नों का 'गय वसह' इत्यादि गाथा से आगे विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा। यहाँ पर इतना

विशेष समझ लेना चाहिये कि जिस तीर्थंकर का जीव स्वर्ग से आता है उसकी माता उसके गर्भ में आने पर विमान देखती है और जो जीव नरक में से निकल कर तीर्थंकर होता है उसकी माता उसके गर्भ में आने पर स्वप्न में भवन–सुन्दर मकान देखती हैं।

चौदह स्वप्न देख कर देवानन्दा को बड़ा संतोष हुआ। वह चित्त में आनन्द को धारण करती हुई हृदय में प्रीतिवाली, मन में तुष्टिवाली, हर्ष से विस्तृत हृदयवाली, मेघ की जलधारा से सिंचित कदंब पुष्प के समान विकसित रोमराईवाली हो कर उन प्रशस्त स्वप्नों का अच्छी तरह स्मरण करने लगी। स्मरण कर अपनी शय्यामें से उठ कर मानसिक उत्कंठा सहित और चापल्य रहित गति से, स्खलना अर्थात् विलम्ब को छोड़ कर और राजहंस के समान गति से जहाँ पर ऋषभदत्त ब्राह्मण सो रहा था, वहाँ आ कर ऋषभदत्त ब्राह्मण को जय विजय कर मीठी वाणी से जगाती है और स्वयं एक भद्रासन पर बैठ जाती है। फिर वह देवानन्दा ब्राह्मणी स्वस्थ होकर मस्तक पर अंजलि कर अर्थात् हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक कहने लगी कि 'हे देवानुप्रिय–देवताओं के प्यारे! आज जब मैं अल्प निद्रा में थी तब गज, वृषभ आदि उत्तम चौदह स्वप्नों को देख कर जाग उठी। इन कल्याणकारी स्वप्नों का मुझे क्या वृत्तिविशेष फल होगा? (यहाँ पर फल से पुत्रादि और वृत्ति से जीवनोपाय समझना)। देवानन्दा के मुख से उक्त वचन को सुन कर मन में अवधारण करता हुआ ऋषभदत्त ब्राह्मण हर्षित हो कर मेघ की जलधारा से सिंचित हुए कदंब पुष्प के समान विकसित रोमराईवाला हो कर

उन स्वप्नों के अर्थ का विचार करता है। विचार कर अपने स्वाभाविक मतिज्ञान बुद्धि विज्ञान से अर्थ-निश्चय करता है।

फिर वह स्वप्नों के अर्थ का निश्चय कर के देवानन्दा ब्राह्मणी से बोला कि हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार, कल्याणकारी, धनदायक, मांगल्यरूप और शोभायुक्त स्वप्न देखे हैं। वे आरोग्य, दीर्घायु, संतोष, कल्याण–उपद्रव का न होना और मनोवांछित फलप्राप्ति करानेवाले हैं। हे देवानुप्रिये ! इस से तुम्हें अर्थ का लाभ, भोग का लाभ, पुत्र का लाभ और यावत् सुख का लाभ प्राप्त होगा। तुम्हें नव मास और साढ़े सात दिन वीतने पर एक उत्तम पुत्र पैदा होगा।

लक्षण, व्यंजन और हस्तरेखा आदि का स्वरूप वर्णन।

वह पुत्र कोमल हाथ पैरों वाला, पंचेंद्रिय परिपूर्ण सुंदर शरीरवाला और व्यंजन लक्षणादि शारीरिक प्रशस्त लक्षणों से युक्त होगा। छत्र चामरादि शारीरिक प्रशस्त लक्षण चक्रवर्ती और तीर्थंकरों के एक हजार और आठ होते हैं। बलदेव और वासुदेव के एक सौ आठ होते हैं और दूसरे भाग्यवान् मनुष्यों के बत्तीस लक्षण होते हैं। वे बत्तीस लक्षण निम्न प्रकार से होते हैं—

छत्र, कमल, रथ, वज्र, कछुवा, अंकुश, वापिका, धनुष्य, स्वस्तिक, बंदरवाल, सरोवर, केशरीसिंह, रुद्र, शंख, चक्र, हस्ती, समुद्र, कलश, महल–मकान, मत्स्य, यव, यज्ञस्तंभ, स्तूप, कमंडल, पर्वत, चामर,

दर्पण, बैल, पताका, लक्ष्मी का अभिषेक, उत्तम माला और मयूर-मोर—ये बत्तीस चिह्न जिस पुण्यवान के शरीर में होते हैं वह बत्तीस लक्षणा पुरुष कहलाता है। इन लक्षणवाले मनुष्य के सात लक्षण लाल हों तो श्रेष्ठ होते हैं,—नाखून, हाथ, पैर, जीभ, होठ, तालुआ, और नेत्रों के कोण, ये लाल अच्छे होते हैं। कक्षा, हृदय, गर्दन, नासिका, नाखून और मुख-उन्नत अच्छे होते हैं। दाँत, चमड़ी, केश, अंगुलियों के पर्व और नाखून-ये पाँच सूक्ष्म अर्थात् बारीक अच्छे होते हैं। नेत्र, हृदय, नासिका, हनु-ठोडी और भुजा, ये पाँच लंबे श्रेष्ठ होते हैं। ललाट, छाती और मुख ये तीन विशाल अच्छे होते हैं। गरदन, जंघा और पुरुषचिह्न ये तीन लघु अच्छे होते हैं। सत्व, स्वर और नाभि ये तीन गंभीर अच्छे होते हैं। ये भी बत्तीस लक्षण कहलाते हैं। शरीर का अर्ध भाग मुख है या शरीर का सर्वस्व मुख गिना जाता है, उससे भी नासिका श्रेष्ठ है नासिका से नेत्र श्रेष्ठ हैं। जैसे नेत्र होते हैं वैसा ही उस मनुष्य का शील होता है। जैसी नासिका होती है वैसी ही उसके हृदय की सरलता होती है। जैसी रूपाकृति होती है वैसा ही उसके पास द्रव्य समझना और जैसा शील होता है वैसे ही गुण समझना। जो मनुष्य अति ठिंगना होता है, अति लंबा होता है, अति मोटा होता है, अति कृश-अति पतला होता है अति काला होता है और बहुत गोरा होता है, इन [illegible] प्रकार के मनुष्यों में सत्व होता है। सद्धर्मी, रूपवान्, निरोगी श्रेष्ठ स्वप्न देखनेवाला, श्रेष्ठ नीतिवान् और कविता रचनेवाला मनुष्य स्वर्ग से आया है और स्वर्ग में ही जायगा—यह सूचित करता है। दंभरहित, दयालु, दानी, इंद्रियों को दमन करनेवाला,

दक्ष और सदैव सरलता से वर्तनेवाला मनुष्य मानव योनि में से आया है और फिर भी वह मनुष्य योनि में ही जायगा–यह समजना योग्य है। कपट, लोभ, अति भूख, आलस बहुत आहार करना–इत्यादि चेष्टाओं से मनुष्य सूचित करता है कि वह पशु योनि से आया है और पशु योनि में ही जायगा। जो मनुष्य अति कामी, स्वजनो का द्वेषी, सदैव दुर्वचन बोलनेवाला और मूर्खजनों की संगत करनेवाला होता है वह अपने नरक के आगमन को और नरक में ही जाने को सूचित करता है। पुरुषों के शरीर में यदि दक्षिण भाग में आवर्त हो तो वह श्रेष्ठ फलदायक होता है, बॉये हो तो निन्दनीय समझना चाहिए और यदि अन्य किसी भाग में हो तो वह मध्यम फल देता हैं। जिस मनुष्य के हाथ में बिलकुल कम रेखा हों या एकदम अधिक रेखायें हों तो वह निःसंदेह दुःखी होता है। जिस पुरुष की अनामिका अर्थात् अन्तिम अंगुली से पहली अंगुली की अन्तिम रेखा से कनिष्ठा अंगुली यदि कुछ अधिक हो तो उस पुरुष को धन की वृद्धि होती है और मोसाल पक्ष अधिक होता है। मणिबन्ध से जो रेखा चलती है वह पिता की रेखा कहलाती है और करभ से कनिष्ठा अंगुली के मूल की ओर से जो दो रेखाएं चलती हैं वे वैभव और आयु की होती हैं। ये तीनों ही रेखायें तर्जनी अंगुली और अंगूठे के बीच जा मिलती हैं। जिसके ये तीनों रेखायें संपूर्ण और दोषवर्जित हों वह मनुष्य गोत्र, कुल, धन, धान्य और आयुष्य का संपूर्ण सुख भोगता है। आयु की रेखा जितनी अंगुलीओं को उलंघन कर आगे चली जाय, उतने ही पचीस पचीस वर्ष की आयु अधिक समझना चाहिये। यदि दाहिने हाथ के अंगूठे में यव का चिह्न हो तो विद्या, वैभव और ख्याति

प्राप्त होती है। एवं उस मनुष्य का जन्म शुक्लपक्ष में हुआ समझना। जिस पुरुष की आँखो में लाली होती है उसे स्त्री बहुत चाहती है। जिसकी आँखें सुवर्ण के समान पीली होती हैं उसके पास द्रव्य रहता है। जिसके हाथ लंबे होते हैं उसे ऐश्वर्य नहीं छोड़ता। जिस का शरीर मोटा ताजा होता है उसे सुख नहीं छोड़ता। यदि नत्रों में विकास हो तो वह सौभाग्यशाली होता है। यदि दाँतों में विकास हो तो उसे श्रेष्ठ भोजन मिलता है। यदि शरीर विकस्ना हो तो सुख मिलता है। यदि पैर विकस्ने हो तो वाहन मिलता है। जिस की छाती विशाल होती है वह धन धान्य का भोगी होता है। जिस का मस्तक विशाल हो वह राजादि महान् पुरुष बने। जिस का कटिभाग विशाल हो वह बहुत स्त्रीपुत्रोंवाला होता है और जिसका पेर विशाल हो वह भी सुखी होता है। इस प्रकार लक्षणों को जानना चाहिए।

शरीर पर जो मस्से–तिल आदि होते हैं उन्हें व्यंजन कहते हैं। उपरोक्त लक्षण और व्यजनों से युक्त, वह कुमार होगा। तथा वह मान और उन्मान के प्रमाण से युक्त होगा। एक जल से भरे कुंड में पुरुष को प्रवेश कराया जाय उस वक्त जो पानी बाहर निकल जाय वह पानी द्रोण प्रमाण हो तब वह पुरुष मान प्राप्त कहा जाता है। यदि तराजू पर अर्ध भार मानवाला हो तो वह उन्मान प्राप्त होता है। भारका प्रमाण नीचे की विधि से समझना चाहिए– ६ सरसव के दानों का एक यव (जौं), तीन यव की एक रत्ती (चनोटी), तीन रत्ती का एक वाल, सोलह वाल का गद्याणा दस गद्याणों का एक पल और डेढ़सौ गद्याणों का एक मण होता

है और दश मण की एक घटिका होती है ऐसा विद्वानो का मत है। अपने अंगुल से एकसौ आठ अंगुल की उँचाईवाला उत्तम पुरुष होता है। मध्यम और जघन्य पुरुष छाणवें तथा चोरासी अंगुल उचा होता है। यहां उत्तम पुरुष भी अन्य ही समझना क्यों कि तीर्थंकर भगवंत तो बारह अंगुल की शिखा की उँचाई होने से एकसौ वीस अंगुल उँचे होते हैं। पूर्वोक्त प्रकार से मान, उन्मान प्रमाण से परिपूर्ण मस्तकादि सर्वांग सुन्दर शरीरवाले और चंद्रमा के समान रमणीय, मनोहर, प्रियदर्शन एवं मनोज्ञ रूपवान् बालक को हे देवानुप्रिये ! तुम जन्म दोगी।

जब वह बालक बाल्यवस्था को त्याग कर आठ वर्ष का होगा तब उसमें सर्व प्रकार का विज्ञान परिणत होगा। क्रमसे जब वह युवावस्था को प्राप्त होगा तब वह ऋग्वेदादि का परिज्ञाता होगा। अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम वेद, अथर्ववेद, पुराण, निघंटु तथा वेदों के अंग उपांग सहित उन्हें जाननेवाला होगा। उसमें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष और निरुक्त ये ६ अंग कहलाते हैं तथा अंगों के अर्थ को विस्तारसे कथन करनेवाले ग्रंथ उपांग कहलाते हैं। इन अंग उपांग सहित वेदोंको विस्मरण करनेवालों को स्मरण करानेवाला, अशुद्ध पढ़नेवालों को रोकनेवाला, स्वयं वेदों को धारण करनेवाला वह बालक होगा। हे देवानुप्रिये ! वह बालक छः ही अंगो का विस्तार करनेवाला, कपिल प्रणीत शास्त्र में एवं गणितशास्त्र मे निपुण होगा। गणित शिक्षा में वह ऐसा निपुण होगा जैसा कि " एक स्तंभ है जो आधा पानी में है, उसका बारहवाँ भाग कीचड़ में है, छठाँ भाग

देश में रखा रहता है और सिर्फ एक हाथ बाहर निकला है। विचार कर कहो कि उस स्तम्भ की कितनी लम्बाई हो गई थी? यह गणित के हिसाब से ६ हाथ लम्बा स्तम्भ था। गणित के ऐसे हिसाबों को जैन व्याख्याता होता। किन्तु जैन धर्म आचार विचार के ग्रंथ, व्याकरण तथा गणितादि आदि के लिए व्याकरण हर प्रकार है- जैसे व्याकरण, जैनेन्द्र व्याकरण, सिद्धहेमचन्द्र व्याकरण, और देवनन्दन, पाणिनीय व्याकरण, कातंत्र, शाकटायन, वामन, विश्रान्त, बुद्धिसागर, सरस्वतीकण्ठाभरण, विद्यानन्द, जैनेन्द्र, भीमसेन, शैव, गौड़, नैन्दी, यशो और इन्द्र और अर्हद व्याकरण। इन तीन व्याकरणों में, छन्दशास्त्र में, लिङ्ग में, ज्योतिषशास्त्र में तथा अन्य भी शास्त्रों को विश्वासी एवं परीक्षक मान अप्रमाण समझा। व्यापार शास्त्रों में यह बहुत ही निपुण होता था जिस से स्वानुभव। पुनः कहे गेय स्पष्ट होते हैं।

इत्यादि कह कर कमलश्री माता उन शास्त्रों की बारंबार अनुमोदना करती है। फिर इसके उत्तर में अपनी मस्तक पर अंजलि कर के कहता है कि-हे मातुश्री! जैसा आप कहती हैं ऐसा ही है। यह बिलकुल यथार्थ और निःसंदेह है जो अर्थ आप कह रही हैं। मैं भी इसी अर्थ को चाहता हूँ, बारबार चाहता हूँ। सो यह कर इसलिए इन शास्त्रों को अच्छी तरह मान रखी है। फिर कमलश्री माता के साथ मानवीय सुख भोगता हुआ अपना आनन्द समय बिताती है।

कार्तिक सेठ की कथा।

उस समय शक्र नामक सिंहासन का अधिष्ठाता, देवताओं का स्वामी, कान्ति आदि गुणों से युक्त हाथ में वज्र धारण करनेवाला, पुरंदर अर्थात् दैत्यों के नगरों को विदारण करनेवाला, शतक्रतु-कार्तिक सेठ के भव में श्रावक की पाँचवी प्रतिमा (अभिग्रह विशेप तप) सौ दफा धारण करने से इंद्र का शतक्रतु नाम पड़ा है। कार्तिक सेठ का वृत्तान्त इस प्रकार है-पृथ्वीभूषण नगर में प्रजापाल नामक राजा था और कार्तिक नामक सेठ था। उस सेठने श्रावक की सौ प्रतिमा धारण की थी इस से वह शतक्रतु नाम से विख्यात हो गया था। एक दिन महिने महिने पारना करनेवाला वहाँ पर एक गैरिक नामक संन्यासी आ गया। कार्तिक सेठ को वर्ज कर सब नगर निवासी उस के भक्त बन गये। यह जान कर गैरिक को कार्तिक पर रोष आया। एक दिन गैरिक को राजाने भोजन के लिए निमंत्रण दिया। गैरिक बोला-यदि कार्तिक सेठ भोजन परोसे तो मैं आप के वहाँ भोजन करूँगा। राजा बोला-ऐसा ही होगा। राजाने सेठ को बुला कर कहा कि-तुम हमारे घर पर गैरिक को भोजन करा देना। कार्तिक बोला-राजन् ! आप की आज्ञा से कराऊँगा। भोजन के समय कार्तिकने गैरिक तापस को भोजन परोसा। उस वक्त उसे लज्जित करनेके लिए गैरिकने अपनी नाक पर अंगुली रख कर घिसी। उस समय कार्तिकने विचारा कि यदि मैंने प्रथम से दीक्षा ले ली होती तो मेरा यह अपमान क्यों होता? इस प्रकार वैराग्य प्राप्त कर कार्तिक सेठने एक हजार और आठ वणिक पुत्रों के साथ श्री मुनिसुव्रतस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर द्वादशांगी पढ़ कर बारह वर्ष तक चारित्र की आराधना

कर वह सौधर्म इन्द्र बन गया। इधर गैरिक भी अपने धर्म मे तत्पर रह कर मर क उसी देवलोक में इद्र का ऐरावण नामक हाथी-वाहन हुआ। वह ऐरावण कार्तिक सेठ को इद्र के रूप म देख कर भागने लगा। शक्रेंद्र उसे पकड़ कर उसके मस्तक पर बैठ गया। ऐरावणने इद्र को डराने के लिए दो रूप कर लिये। इद्र ने भी दो रूप कर लिये। फिर उसने चार किये, इन्द्रने भी चार रूप किये। फिर इद्रने अवधिज्ञान से उस का स्वरूप विचार कर उसका तिरस्कार किया तब वह अपने स्वाभाविक रूप म आ गया। इस प्रकार से कार्तिक सेठ की कथा है।

इद्र द्वारा किया हुआ शक्रस्तव।

सहस्राक्ष इद्र के जो पाच सौ देव मत्री हैं उन के नेत्र इद्र का कार्य करने के कारण वे नेत्र भी इद्र के ही कहे जाते हैं, इसी कारण से इद्र को हजार आँखोंवाला कहते हैं। मघवा-महामेघों को वश में रखनेवाला, पाकशासन-पाक नामक दैत्य को शिक्षा करनेवाला, दक्षिणार्द्ध लोकपति-मेरु से दक्षिण ओर क लोकार्ध का अधिपति, ऐरावण वाहनवाला, बत्तीस लाख विमानों का स्वामी, रज रहित और स्वच्छता से आकाश के समान निर्मल वस्त्रों को धारण करनेवाला, माला और मुकुटादि आभूषणधारी, गालों पर सुवर्ण क मनोहर और लटकते हुए सुन्दर कुडल से शोभायमान, छत्र चामरादि राजचिह्नों से विराजित, पैरों तक लटकती हुई पचवर्णीय पुष्पमाला से विभूषित शक्रेंद्र सुधर्म नामा सभा म शक्र नामा सिंहासन पर बैठ कर बत्तीस लाख

विमानों एवं चौरासी हजार सामानिक देवों–जिन की ऋद्धि इंद्र के समान है–का अधिपति, कर्म पालन करनेवाले, जो पूज्य स्थानीय अथवा मंत्री तुल्य देव हैं तथा सोम, यम, वरुण और कुवेर जो चार लोकपाल हैं, एवं पद्मा, शिवा, शची, अंजू, अमला, अप्सरा, नमिका और रोहिणी नामवाली अपनी अग्रमहीषी–रानियाँ–जिनका प्रत्येक का सोलह २ हजार परिवार है उन सब के अधिपतिपन को पालन करता हुआ, तथा बाह्य, मध्यम और अभ्यन्तर पर्षदा के आधिपत्य, तथा सात सैन्य का आधिपत्य, चारों दिशाओं में चौरासी हजार आत्मरक्षक देवों के आधिपत्य कर्म को करता हुआ और अनेक प्रकार के दिव्य नाटकों को देखता हुआ इंद्र अपनी सभा में विराजमान है। उस समय वह अपने विशाल अवधिज्ञान से संपूर्ण जंबूद्वीप को देख रहा था। भगवन्त महावीर प्रभु को गर्भ में अवतरे देख इंद्र को अत्यन्त हर्ष हुआ। अति हर्ष के आवेश से मेघधाराहत विकसित कदंब पुष्प के समान रोमराई जिसकी विकस्वर हो गई हैं, ऐसा हो कर सिंहासन से उठ कर पादपीठ पर पैर रख कर नीचे उतरता है, नीचे उतर कर पादुका छोड़ कर प्रभु के सन्मुख उस दिशा में सात–आठ कदम चल कर एक उत्तरासन कर हाथ जोड़ कर बाँये गोड़े को ऊपर रख कर और दाहिने को पृथ्वी पर टेक कर तीन दफा मस्तक झुका कर अंजलि करके नाथ को नमस्कार करता है याने शक्रस्तव पढ़ता है।

नमुत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सय सबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं. पुरिसवरपुंडरीआणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगणाहाणं, लोगहिआण, लोगपईवाणं, लोगपज्जोअगराण,

अभयदयाण, चक्खुदयाण, मग्गदयाण, सरणदयाण जीवदयाण, धम्मदयाण, धम्मदेसयाण, धम्मणायगाण, धम्म सारहीण, धम्मवरचाउरतचक्कवट्टीण, दीवोत्ताण, सरणगईपइट्ठा अप्पडिहयवरणाण दसणधराण, वियट्टछउमाण, जिणाण, जावयाण, तिण्णाण, तारयाण बुद्धाण बोहयाण, मुत्ताण, मोअगाण, सव्वण्णूण सव्वदरिसीण, सिवमयलमरुअमणतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइणामधेय ठाण सपत्ताणं, नमो जिणाण, जिअभयाण ॥

तीन भुवन में पूजने योग्य या कर्मरूप शत्रु को नाश करनेवाले अथवा कर्मरूप बीज का अभाव करनेवाले श्री अरिहन्त प्रभु को नमस्कार हो। ज्ञानादि गुण युक्त अपने अपने तीर्थ की अपेक्षा आदि क करनेवाले, तीर्थ अर्थात् श्री चतुर्विध सघ या आद्य गणधर उसे करनेवाले, स्वय बोध पानेवाले, अनन्त गुणसमूह के धारक होने से सर्व पुरुषों में उत्तमता धारण करनेवाले, कर्मरूप शत्रुओं को नष्ट करने में सिंह के समान, पुरुषों में पुडरीककमल के समान प्रधान अर्थात् जैसे कमल कीचड मे ऊगता है, जल में बढ़ता है और कीचड एव जल को छोड कर ऊपर रहता है वैसे ही भगवान् भी कर्मरूप कीचड से पैदा हुए, भोगरूप जल से बढ़े और कर्म एव भोग का त्याग कर पृथक् रहते हैं। पुरुषों में गंधहस्ती के समान–जैसे गध हाथी की सुगध से अन्य हाथी भाग जाते हैं वैसे ही जहाँ भगवन्त विचरते हैं वहाँ से दुर्भिक्षादिरूप हाथी भाग जाते हैं। अर्थात् प्रभु के प्रभाव से उस देश में उपद्रव नहीं होते। 'भव्य प्राणियों के समूह में चौतीस अतिशयों से युक्त होने के कारण उत्तम' लोक के नाथ–योग क्षेम करनेवाले अर्थात् अप्राप्त ज्ञानादि गुण प्राप्त करानेवाले। लोगहियाण सर्व प्राणियों के हितकारी। लोक में रहे अज्ञानान्धकार या मिथ्यात्वांधकार को नाश करने में दीपक के समान। सूर्य

के समान सर्व वस्तुसमूह के प्रकाशक होने से लोक में उद्योत करनेवाले । भय से रहित-निडर करनेवाले । वे भय सात प्रकार के हैं यथा—

१-मनुष्य को मनुष्य से भय वह इस लोक संबन्धी भय । २-मनुष्य को देवादिक का भय सो परलोक भय । ३-धनादि के हर लेने का भय सो आदान भय। ४-किसी निमित्त विना ही जो बाह्य भय सो अकस्माद् भय । ५-आजीविका का भय । ६-मरण भय और ७-अपयश भय। उक्त सात प्रकार के भय से विमुक्त करनेवाले । नेत्रों के समान श्रुतज्ञान के देनेवाले, सम्यग् दर्शनादि मोक्षमार्ग के देनेवाले । जैसे कि कईएक मनुष्य कहीं मुसाफरी में जा रहे थे, रास्ते में चोरोंने उनका धन लूट कर आँखों पर पट्टी बांध कर उन्हें उलटे रास्ते चढ़ा दिया, इतने में किसी बलवान हितकारी मनुष्यने वहाँ आकर चोरों से उनका धन वापिस दिला कर और आँखो से पट्टी खोल कर उनहें सीधे रास्ते पर चढ़ा दिया । वैसे ही प्रभु भी काम-क्रोधादिरूप चोरों से धर्मधन लुटे हुए और मिथ्यात्व पट्टी से आच्छादित विवेकरूप नेत्रोंवाले मनुष्यों को श्रुतज्ञान, धर्मधन दे मुक्तिमार्ग पर चढ़ा कर उपकारी होते हैं। संसार में भयभीत मनुष्यों को शरण देनेवाले । मृत्यु का अभावरूप जीवन देनेवाले, बोधि अर्थात् सम्यक्त्व का प्रकाश करनेवाले, चारित्ररूप धर्म की ज्योति दिखानेवाले। धर्म का उपदेश देनेवाले। धर्मके नायक स्वामी, धर्मके सारथी। जैसे-सारथी उन्मार्ग में जाते हुए रथ को सन्मार्ग में लाता है वैसे ही प्रभु भी उन्मार्ग में गये मनुष्य को धर्ममार्ग में लाकर स्थिर करते हैं। अब इस पर मेघकुमार का दृष्टान्त कहते हैं।

मेघकुमार का दृष्टांत

एक समय प्रभु राजगृह नगर में पधारे थे। उनकी देशना सुनकर श्रेणिक राजा और धारणी रानी का पुत्र मेघकुमार प्रतिबोध को प्राप्त हुआ। उसने बड़ी कठिनाई से मातापिता की आज्ञा प्राप्त कर अपनी स्त्रीयों को त्याग कर दीक्षा ग्रहण की। शिक्षा देने के लिए प्रभुने उसे स्थविर मुनियों को सौंपा। एक दिन उपाश्रय में क्रम से मुनियों का सथारा करने पर मेघकुमार का सथारा सबके बाद, द्वार के निकट आया। रात को मात्रा–लघुनीति के लिए आते–जाते मुनियों की चरणरज से उसका सथारा भर गया। अत' उसे सारी रात निंद नहीं आई। उस वक्त उसने विचारा कि ' कहाँ वह सुखशय्या और कहाँ यह धूल से भरा सथारा। इस तरह जमीन पर लेटने का दु ख मुझ से कबतक सहन होगा ? मैं तो सुबह भगवान को पूछकर अपने घर चला जाऊँगा।' ऐसा विचार कर प्रात'काल प्रभु के पास आया। प्रभुने उसे मीठे वचनों से बुलाया और कहा वत्स! तूने रातको ऐसा दुर्ध्यान किया है। वह उचित नहीं है। नरकादि के दु खों के सामने यह दु'ख क्या शक्ति रखता है ? वैसा दुःख भी प्राणियोंने अनेक सागरोपम तक बहुत दफा सहन किया है। कहा भी है कि–अग्नि में प्रवेश कर मर जाना अच्छा हैं, शुद्ध कर्मसे मृत्यु पाना श्रेष्ठ है पर ग्रहण किया व्रत और शील भग करना अच्छा नहीं है। इस चारित्रादि कष्ट का आचरण तो महान् फल के देनेवाला होता है। तूने स्वय ही धर्मभाव से पूर्वभव म कष्ट सहन किया था उसी से तुझे अवसर मिला है। तू अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त सुन ?–इस स तीसरे भव पहले

तूं वैताढ्य पर्वतपर सुमेरुप्रभ नामक हाथी था। वह ६ दांतवाला श्वेतवर्णीय और एक हजार हथनियों का स्वामी था। एक बार दावानल से भयभीत हो भागते हुए को प्यास लगने से बहुत कीचड़वाला सरोवर देखने में आया। मार्ग न जानने से पानी पीने जाते हुए वह वहाँ दलदल में फँस गया। अब जल और थल दोनों से लाचार हो गया। फिर उसके पूर्वशत्रु हाथियोंने वहां आकर उस पर दाँतों के प्रहार किये। उनकी वेदना सात दिन तक सहकर एक सो वीस वर्ष का आयु पूर्ण कर विन्ध्याचल पर फिर तूं लाल रंग का चार दाँतवाला और सातसौ हाथनियों का स्वामी हाथी हुआ। वहाँ पर भी एक वार दावानल लगा, उसे देख तुझे जातिसरण ज्ञान पैदा हुआ। पूर्वभव का स्मरण होने से दावानल से बचने के लिए तूंने एक योजन प्रमाणवाला एक मंडल बनाया। वर्षाकाल से पहले, मध्य में और वर्षा के अन्त में उस मंडल में जमे हुए घास तृण आदिको तूं उखाड कर फेंक देता था। एक दिन दावानल लगने पर भयभीत हो उस जंगल के तमाम प्राणी अपनी जान बचाने के लिए उस मंडल में आ बैठे। तूं भी बाहर से शीघ्र ही आ गया। शरीर में खुजली करने की इच्छा से तूंने अपना पैर उठाया। उस वक्त दूसरी जगह पर भीड के कारण अत्यन्त तंग हुआ एक खरगोश उस जगह आराम से आ बैठा। खुजली कर पैर नीचे रखते समय तेरी नजर उस खरगोश पर पड गई। उस पर दया आने से तूं दो दिन तक पैर अधर किये खड़ा रहा। जब दावानल शांत हो गया और सब प्राणी अपने स्थान पर चले गये तब पैर नीचे रखते समय खून जमजाने के कारण तूं जमीन पर गिर पड़ा। फिर तीन दिन तक भूख प्यास की पीडा

दूसरा व्याख्यान

तीन समुद्र और चौथा हिमालय इन चारों के अन्ततक स्वामिभाव से धर्म के श्रेष्ठ चक्रवर्ती, अर्थात् धर्म के स्थापक। समुद्र में डूबते हुए प्राणियों को द्वीप के समान आधाररूप। अनर्थ का नाश करनेवाले। कर्मों के उपद्रव से भयभीत प्राणियों को शरणरूप। दु खित मनुष्यों को आश्रयरूप, ससाररूप कुवे में पडते हुए प्राणियों को अव लवनरूप। अप्रतिहत–जिसको ससार की कोइ भी वस्तु रूकावट न कर सके ऐसे अस्खलित उत्तम प्रधान ज्ञान दर्शन को धारण करनेवाले। घाति कर्मों को नष्ट करनेवाले। राग द्वेष के विजेता। उपदेशादि का दान दे कर भव्य प्राणियों को जीवनदानद्वारा जिलानेवाले। ससाररूप समुद्र को तैर कर सेवकों को तैरानेवाले। स्वय तत्व को जानकर और दूसरों को तत्वबोध करनेवाले। स्वय कर्मपिंजरे से मुक्त हुए और दूसरों को मुक्ति दाता, स्वय सर्व पदार्थों को जानने और देखनेवाले, तथा कल्याणकारी, अचल, रोग रहित, अनन्त वस्तु विषयक ज्ञानस्व रूप, आदि अन्त के अभाव से क्षय रहित, बाधा तथा पुनरागमन से रहित, सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए, भयको जीतनेवाले ऐसे श्री जिन भगवन्त को नमस्कार हो। [redacted] प्रकार सर्व जिनेश्वरों को नमस्कार कर शक्रेंद्र श्री वीरप्रभु को नमस्कार करता है।

श्रमण भगवन्त श्री महावीर जो पूर्व क तीर्थंकरोंद्वारा कथन किये हुए और जो सिद्धिगति नामक स्थान

सहकर दयाभाव के कारण सौ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर मर कर तूं यहाँ श्रेणिक राजा और धारणी रानी का पुत्र हुआ है। हे मेघकुमार! उस समय पशु के भव में भी तूंने धर्म के लिए वैसा कष्ट सहन किया था तो अब जगत के वन्दनीय मुनियों की चरणरज से तूं क्यों दुखित होता है? ऐसा उपदेश दे कर प्रभुने उसे धर्म में स्थिर किया। अपना पूर्वभव का वृत्तान्त सुनते समय मेघकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हो जाने से उसने केवल नेत्र वर्ज कर अपना सारा शरीर मुनियों की सेवा में समर्पण कर दिया। क्रम से निरतिचार चारित्र पालन कर मेघकुमार अन्त में महीने की संलेखना कर विजय नामक विमान में देव हुआ। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म कर वह मोक्ष पद को प्राप्त करेगा।

महामहोपाध्याय श्रीकीर्तिविजयगणि के शिष्य उपाध्यायश्रीविनयविजय गणि की रची हुई कल्पसूत्र की सुबोधिका नामा टीका का यह हिन्दी भाषा में प्रथम व्याख्यान समाप्त हुआ।

को प्राप्त करने की इच्छावाले हैं उन्हें नमस्कार हो ! इद्र कहता है कि उस देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में रहे हुए उन वीर प्रभु को मैं वन्दन करता हुं। मैं यहाँ हूं और प्रभु वहाँ हैं। वे मुझे यहाँ पर ही देखें यह समक्ष इद्र प्रभु को वन्दन नमस्कार करता है।

इद्र के मन में सकल्प

प्रभु को नमस्कार कर इद्र अपने सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख कर के बैठ जाता है। उस वक्त देवराज इद्र को इस प्रकार का सकल्प उत्पन्न हुआ। अर्थात् इद्र को अभिलापरूप मनोगत विचार पैदा हुआ। वह क्या सकल्प था सो नीचे बतलाते हैं—

आज तक कभी भूतकाल में ऐसा बनाव नहीं बना, वर्तमानकाल म ऐसा नहीं बनता और भविष्यकाल में ऐसा न बनेगा कि जो अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव या वासुदेव शूद्र, अधम, तुच्छ, अल्प, निर्धन, कृपण, भिक्षुक या ब्राह्मणकुल म आये हों या आते हों अथवा भविष्य मे आवें। वे निश्चय से उग्रकुल–श्री ऋषभदेव प्रभुद्वारा स्थापित रक्षक पुरुषों क कुल म, भोगकुल–गुरुतया स्थापित किये पुरुषों के कुल में, राजन्यकुल–आदिनाथ प्रभुद्वारा स्थापित मित्र स्थानिय पुरुषों के कुल मे, इक्ष्वाकु कुल–श्री ऋषभदेव प्रभु क वश में पैदा हुए मनुष्यों के कुल में, क्षत्रियकुल–श्री आदिनाथ प्रभुद्वारा स्थापित प्रधान प्रकृतिवाले मनुष्यों के कुल में, हरिवशकुल–पूर्वभव वैर क कारण हरिवर्ष क्षेत्र से देवताद्वारा भरत में लाये हुए युगलिक क वशजों के कुल में,

इसके अतिरिक्त अन्य विशुद्ध जाति कुल में आये हैं, आते हैं और आयेंगे । परन्तु वे पहले कथन किये नीचादि कुल मे अवतार नहीं लेते । फिर यह बनाव क्यों बना सो बतलाते हैं-संसार मे एक भवितव्यता नामक आश्चर्य-कारी भाव-बनाव है जो अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के व्यतीत होने पर बनता है । जिसमें इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में ऐसे दश बनाव-आश्चर्य उत्पन्न हुए हैं । वे दश इस प्रकार हैं—

दस आश्चर्य

उपसर्ग १, गर्भहरण २, स्त्री तीर्थंकर ३, अभावित पर्षदा ४, कृष्ण का अपरकंका गमन ५, मूल विमान से सूर्य चंद्र का अवतरण ६, हरिवंश कुल की उत्पत्ति ७, चमरेंद्र का ऊर्ध्वगमन ८, एक समय मे एक सौ आठ का सिद्धिगमन ९, तथा असंयतिपूजा १० इन दश आश्चर्यों की व्याख्या क्रम से निम्न प्रकार है—

(१) उपसर्ग-उपद्रव, वे श्री वीरप्रभु को छद्मस्थ अवस्था में बहुत हैं, जिन का आगे चल कर वर्णन करेंगे परन्तु जिस अवस्था के प्रभाव से समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं उस केवल ज्ञानावस्था में भी जो इन्ही प्रभु को अपने ही शिष्य गोशालक से उपद्रव हुआ वह आश्चर्य इस प्रकार है—एक समय श्रीवीरप्रभु विचरते हुए श्रावस्ती नगरी में समवसरे । तब गोशालक भी उस नगरी में आ निकला और अपने आप को जिनेश्वर प्रकट करने लगा । आज श्रावस्ती नगरी में दो जिनेश्वर पधारे हैं, यह बात जनता में फैल गई । यह सुनकर गौतमस्वामीने प्रभु महावीर से पूछा कि भगवन् ! अपने आपको जिनेश्वर प्रसिद्ध करनेवाला यह दूसरा कौन मानव (मनुष्य)

है ? भगवानने कहा—यह जिन नहीं है, परन्तु शरवण ग्रामनिवासी मखली और सुभद्रा से अधिक गायोंवाली एक ब्राह्मणी की गोशाल में पैदा होने के कारण 'गोशाल' नामधारी एक हमारा ही शिष्य है। वह हमारे ही पास कुछ ज्ञान प्राप्त कर के मिथ्या मान बडाई के लिए व्यर्थ ही अपने आप को जिनेश्वर प्रसिद्ध करता है। सर्वज्ञ देव का यह वचन सर्वत्र फैल गया। गोशाला इस बात को सुन कर बड़ा कुपित हुआ। उस समय गोचरी के लिये शहर में गये हुए आनन्द नामक भगवान के शिष्य को देख कर गोशाला बोला कि हे—आनन्द! एक दृष्टान्त सुनता जा। कितनेएक व्यापारी अनेक प्रकार के क्रयाणे गाड़ियों में भर कर धन कमाने के लिए परदेश जाने को घर से निकले। मार्ग में उन्होंने एक अटवी में प्रवेश किया। वहाँ उन्हें प्यास लगी, परन्तु खोज करने पर भी उन्हें वहाँ पर कहीं जलाशय न मिला। पानी की खोज करते हुए उन्होंने चार बाँबी देखीं। एक बाँबी को फोडने पर उसमें से खूब पानी निकला। उन सबने अपनी प्यास बुझाई और मार्ग के लिए जलपात्र भर लिए। उनमें से एक वृद्ध वणिक बोला कि—भाईयो! हमारा काम हो गया चलो, अब दूसरी बाँबी (शिखर) फोड़ने की आवश्यकता नहीं है। निषेध करने पर भी उन्होंने दूसरी बाँबी (शिखर) फोड़ डाली। उसमें से उन्हें बहुतसा सुवर्ण प्राप्त हुआ। वृद्ध के निवारण करने पर फिर उन्होंने तीसरा शिखर फोड़ा, उसमें से बहुत रत्न निकले। उस वृद्ध वणिक के रोकने पर ध्यान न दे कर उन्होंने चौथे शिखर को भी फोड़ डाला। उसमें से एक दृष्टिविष सर्प निकला। उसने अपनी क्रूर दृष्टिद्वारा सब को मौत के घाट उतार दिया। जो उनमें हितोपदेशक वृद्ध था

वह न्यायवान होने से किसी समीपवर्ति देवताने उसे उसके स्थान पर रख दिया । अतः हे आनन्द । तेरा धर्माचार्य ऋद्धि प्राप्त होने पर भी संतोष न पाकर ज्यों त्यों बोल कर मुझे कुपित करता है, मैं अपने तप तेज से उसे भस्म कर डालूँगा, इस लिए तूं शिघ्र ही जा कर उसे यह बात कह दे । उस वृद्ध वणिक के समान हितोपदेशक समझ कर मैं तेरी रक्षा करूँगा । यह बात सुन कर आनन्दने सर्व वृत्तान्त प्रभु से आ कहा । भगवान बोले-हे आनन्द ! तूं शीघ्र ही गौतमादि मुनियों से जा कर कह कि-यह गोशाला यहाँ रहा है अतः उसके साथ किसीको भी संभाषण न करना चाहिये और तुम सब यहां से इधर उधर चले जाओ । उसने वैसा ही किया । इतने में गोशाला वहां पर पहुंचा और भगवान से बोला कि-हे काश्यप ! तूं ऐसा क्यों बोलता है ? कि यह मंखली का पुत्र गोशाला है । वह तेरा शिष्य मंखलीपुत्र तो मर गया, मैं तो और ही हूं । उसका शरीर परीषहों को सहन करने में समर्थ समझ कर मैंने उसमें प्रवेश किया हुआ है । इस प्रकार गोशालाद्वारा प्रभु का तिरस्कार न सहते हुए वहाँ पर रहे हुए सुनक्षत्र और सर्वानुभूति नामक दो मुनियों को बीच में उत्तर देते हुए गोशालाने तेजोलेश्या से भस्म कर दिया । वे मर कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये । भगवान बोले-हे गोशालक ! तूं वही गोशाला है, अन्य नहीं । किस लिए वृथा ही अपने आपको छिपाता है ? इस प्रकार तूं अपने आपको छिपा नहीं सकता । जिस प्रकार कोई चोर कोतवाल की नजर में आजाने पर भी अपने आपको एक तिनके या अंगुली के पीछे छिपाने का प्रयत्न करे तो क्या वह छिप सकता है ? भगवान के सत्य वचन

सुन कर उस दुरात्मा ने प्रभु पर तेजोलेश्या छोड़ी। वह लेश्या भगवान को तीन प्रदक्षिणा दे कर वापिस गोशाले के ही शरीर में आ घुसी। उससे उसका शरीर दग्ध हो गया और अनेकविध वेदनायें भोग कर सातवीं रात को मर गया। उस तेजोलेश्या के ताप से भगवान को ६ मास तक खून में खून पड़ने की पीड़ा सहन करनी पड़ी। इस प्रकार जिनका नाम स्मरण करने मात्र से सर्व दुःख उपशान्त हो जाते हैं ऐसे सर्वज्ञ श्रीप्रभु को यह उपसर्ग हुआ यह प्रथम आश्चर्य हुआ।

(२) गर्भहरण-एक उदर से दूसरे उदर में रखना, यह आज तक किसी भी तीर्थंकर का न हुआ था, किन्तु श्री वीरप्रभु का हुआ यह दूसरा आश्चर्य हुआ।

(३) स्त्री तीर्थंकर-सदैव पुरुष ही तीर्थंकर होते हैं परन्तु इस अवसर्पिणी काल में मिथिला नगरी के स्वामी राजा कुम्भ की पुत्री मल्लि नामक उन्नीसवें तीर्थंकर हो कर तीर्थ की प्रवृत्ति कराई। यह तीसरा आश्चर्य हुआ।

(४) अभावित पर्षदा-सर्व देव की देशना कदापि ऐसी नहीं होती कि जिससे किसी भी प्राणी को बोध न हो, परन्तु श्री वीरप्रभु को केवलज्ञान होने पर जो प्रथम पर्षदा में उन्होंने देशना दी उससे किसी को भी मन में दृढ़ व्रत धारण करने का भाव पैदा न हुआ। यह चौथा आश्चर्य हुआ।

(५) अपरकंकागमन-एक समय पाण्डव पत्नी द्रौपदी ने वहाँ आये हुए नारद को असंयत समझ कर सन्मुख उठने का सन्मान न दिया। इससे नारद कुपित हो द्रौपदी को कष्ट में डालने के लिए धातकी खण्ड के

भरतक्षेत्र में अपरकंका नामक राजधानी के स्वामी राजा पद्मोत्तर के सामने जा कर, जो स्त्रीलंपट था, द्रौपदी के रूप की प्रशंसा की। उसने अपने किसी मित्र देव के द्वारा द्रौपदी को अपने अन्तःपुर में मंगवा लिया। द्रौपदी के गुम होने पर पांडव माता कुन्तीने कृष्ण से यह समाचार कहा। कृष्ण द्रौपदी की खोज में व्यग्र थे। उस समय वहां पर आये हुए उसी नारद से द्रौपदी का समाचार सुन कृष्णने सुस्थित देव की आराधना की। उस देव की सहाय से दो लाख योजन प्रमाणवाले लवणसमुद्र को उलंघन कर कृष्ण पाण्डवों सहित धातकी खण्ड की अपरकंका नगरी में पहुँचा। वहाँ पर पाण्डवों का तिरस्कार करनेवाले पद्मोत्तर राजा को नरसिंहरूप से जीत कर और द्रौपदी के वचन से उसे जिन्दा छोड़ कर द्रौपदी को साथ ले कृष्ण वापिस लौटे। लौटते समय कृष्णने अपने पांचजन्य शंख को बजाया। शंख-शब्द सुन कर वहाँ विचरते हुए मुनिसुव्रतस्वामी तीर्थपति के वचन से कृष्ण का वहाँ आगमन जान कर मिलने की उत्सुकता से वहाँ के कपिल नामक वासुदेवने समुद्रतट पर शंखनाद किया। परस्पर दोनों के शंखनाद मिल गये। इस प्रकार कृष्ण का अपरकंका नगरी में जाना इस अवसर्पिणी में पाँचवाँ आश्चर्य हुआ है।

(६) मूल विमान से सूर्य चंद्र का अवतरण–कोशांबी नगरी में भगवान श्री वीरप्रभु को वन्दनार्थ सूर्य और चंद्रमा अपने मूल विमान से आये थे, यह छठा आश्चर्य हुआ।

(७) हरिवंश कुल की उत्पत्ति–कोशांबी नगरी में सुमुख नामक राजा राज्य करता था। उसने शाला-

पति वीरक की वनमाला नाम की स्त्री को विशेष रूपवती होने से अपने अन्त पुर में रखली। वह शालापति उसके वियोग से पागल हो गया। जिसको देखता है उसे ही वनमाला वनमाला कह कर पुकारता है। इस दशामें अनेक तमाशबीनों सहित वह नगरमें भटकता फिर रहा था। उस समय राना और वनमाला राज महलमें एक बारी में बेठे हुए क्रीडा कर रहे थे। अचानक ही उन दोनों की नजर उस वीरक शालापति पर पड़ी। उसकी दशा देख दोनों के मनमें अपने अनुचित कर्म के लिए पश्चात्ताप पैदा हुआ। उस वक्त आकाशमें बादलों का जोर था, अकस्मात् उपर से बिजली पड़ी और उस से उन दोनों की मृत्यु हो गई। शुभ परिणाम से मर कर दोनों ही हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिकतया पैदा हुए। शालापति को उनकी मृत्यु का समाचार मालूम होने पर होश आ गया। उन पापियों को उनके पाप का दण्ड मिल गया, इस भावना से उसकी विकलता दूर हो गई। वह फिर वैराग्य प्राप्त कर तपस्या करने लगा। उस तप के प्रभाव से मर कर सौधर्म कल्प में किल्बिषिक देव हुआ। विभंग ज्ञान से उन दोनों को देख कर विचारने लगा कि—अहो! ये मेरे शत्रु युगलिक सुख भोग कर देव बनेंगे, इन्हें तो दुर्गति में धकेलना चाहिये। ऐसे विचार से अपनी शक्ति से उनके शरीर संक्षिप्त कर के वह देव उन्हें यहा भरत क्षेत्र में ले आया। यहा पर राज्य देकर उन्हें सातों व्यसन सिखलाये। वे व्यसनों में आसक्त हो मर कर नरक में गये। उनका जो वंश चला वह हरिवंश कहलाता है। यहाँ पर युगलिकों को शरीर और आयु संक्षिप्त कर भरतक्षेत्र में लाना और उनका मर कर नरक में जाना यह सब कुछ आश्चर्य में समझना चाहिये। यह सातवाँ

आश्चर्य हुआ ।

(८) चमरेन्द्र का ऊर्ध्वगमन–कोई एक पूर्ण नामक तपस्वी काल करके चमर नाम का असुरकुमार देवों का इंद्र बना, वह नवीन ही पैदा हुवा था अतः सौधर्मेंद्र को अपने ऊपर बैठा देख क्रोधित हो अपना परिघ नामा शस्त्र ले और श्रीवीरप्रभु का शरण स्वीकार कर सौधर्म के अंगरक्षक देवों को त्रासित करते हुए सौधर्म विमान की वेदिका में पैर रख कर उसने शक्रेंद्र पर आक्रोस किया । अकस्मात् क्रोधित हो शक्रेंद्रने उस पर अपना जाज्वल्यमान वज्र छोड़ा । विजली समान देदीप्यमान वज्र से भयभीत हो वह भगवन्त के चरणों में जा छिपा । ज्ञान से व्यतिकर जान कर इंद्रने शीघ्र आ कर प्रभु से सिर्फ चार अंगुल दूर रहे हुए अपने वज्र को पकड़ लिया । भगवान की कृपा से तुझे छोड़ता हूँ, यों कह कर शक्रेंद्र अपने स्थान पर चला गया । यह चमरेंद्र का जो सौधर्म देवलोक का ऊर्ध्वगमन है सो आठवाँ आश्चर्य हुआ ।

(९) एक समय में एकसौ आठ का सिद्धिगमन–एक समय में उत्कृष्ट अवगाहनावाले एकसौ आठ प्राणी मुक्ति को नहीं जाते, ऐसा कुदरती नियम होने पर भी इस अवसर्पिणी काल में श्री ऋषभदेव प्रभु, भरत के सिवा उनके निन्यानवें पुत्र और आठ भरत के पुत्र, एवं एकसौ आठ ये एक समय में ही सिद्धिगति को प्राप्त हुए हैं । यह नवमा आश्चर्य हुआ ।

(१०) असंयति पूजा–संसार में सदैव संयतों–संयमधारियों का ही पूजा सत्कार होता है, परन्तु इस

समय वह जङ्गल में काष्ठ लेने को गया था। मध्याह्न समय होने पर भोजन के वक्त उसके लिए भोजन आया। ठीक उसी समय दैवयोग से कितनेएक साधु रास्ता भूल कर उस जङ्गल में भटक रहे थे। जब वे साधु उसके दृष्टिगोचर हुए तो उन्हें देख कर उसके मनमें बड़ी खुशी हुई और मन ही मन विचार करने लगा कि मेरे अहो भाग्य हैं जो इस समय यहाँ महात्मा पधारे हैं। बड़े हर्ष और आदर सत्कार से नयसारने उन मुनियों को आहार पानी का दान दिया। भोजन किये बाद वह मुनियों को नमस्कार कर बोला-चलो महाभाग! आपको मार्ग बतलाऊं। मार्ग चलते समय मुनियोंने उसे योग्य समझ कर धर्मोपदेश द्वारा समकित प्राप्त करा दिया। अन्त समय नवकार मंत्र स्मरण करने पूर्वक मृत्यु पाकर वह दूसरे भवमें सौधर्म देवलोक में पल्योपम की आयुवाला देव पैदा हुआ। वहाँ से चल कर तीसरे भव में मरीचि नामक भरतचक्रवर्तीका पुत्र हुआ। वैराग्य प्राप्त कर उसने श्रीऋषभदेव प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की और स्थविरों के पास एकादशांगी का अध्ययन किया। एक दिन ग्रीष्मकाल के ताप से पीड़ित हो विचारने लगा कि चिरकाल तक इस तरह संयम धारण करना अति दुष्कर है। इस प्रकार कष्टमय जीवन बिताना मुझ से न बन सकेगा, परन्तु सर्वथा वेष परित्याग कर घर जाना भी अनुचित है। यह विचार कर उसने एक नूतन वेष निर्माण किया। यह समझ कर कि साधु तो मन, वचन और काया के तीन दण्ड से रहित हैं किन्तु मैं वैसा नहीं हूँ इस लिए मेरे पास त्रिदंडका चिह्न चाहिये, एक त्रिदंडक रख लिया। साधु द्रव्यभाव से मुण्डित हैं मैं वैसा नहीं हूँ, यह समझ कर सिर पर चोटी

अवसर्पिणी में नवमे और दसमे तीर्थंकर के बीच के समय में गृहस्थ ब्राह्मणादि की जो पूजा प्रवृत्ति हुई वह दसवाँ आश्चर्य हुआ। ये दश आश्चर्य अनन्त कालातिक्रमण के बाद इस अवसर्पिणी में हुए हैं। इसी प्रकार काल की समानता से शेष चार भरत और पाँच ऐरवतोंमें भी प्रकारान्तर से दश दश आश्चर्य समझ लेना चाहिये। इन दश आश्चर्यों में से एकसौ आठ का एक समय सिद्धिगमन श्रीऋषभदेव प्रभु के तीर्थ में हुआ। हरिवंश की उत्पत्ति का आश्चर्य श्रीशीतलनाथ प्रभु के तीर्थमें हुआ। अपरकंका गमन श्रीनेमिनाथ प्रभु के तीर्थ में, स्त्री तीर्थंकर श्रीमल्लिनाथ के तीर्थ में और असंयतिपूजा का आश्चर्य श्रीसुविधिनाथ प्रभु के तीर्थ में हुआ है। शेष पाँच— उपसर्ग, गर्भहरण, अभावित परपदा, चमरेन्द्र का ऊर्ध्वगमन और सूर्य चंद्र का मूलविमान से अवतरण ये श्री वीरप्रभु के तीर्थमें हुए हैं।

यह भी एक आश्चर्य ही है कि जो अक्षीण हुए नाम गोत्र कर्म के उदयसे अर्थात् पूर्व में बाँधे हुए नीच गोत्र कर्म के शेष रहने के कारण और अब उसके उदय भावमें आने से भगवान श्रीमहावीर ब्राह्मणी की कुक्षिमें अवतरे। यह नीच गोत्र प्रभुने अपने सत्ताईस स्थूल भवों की अपेक्षा तीसरे भव में बाँधा था। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है—

प्रभु के सत्ताईस भव

पहले भव में पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में प्रभु का जीव नयसार नामक एक ग्रामाधीश का नौकर था। एक

और क्षुर मुंडन स्वीकार किया। उसने निश्चय किया कि साधु सर्व प्राणातिपात की विरति रखते हैं परन्तु मैं स्थूल प्राणातिपात की विरति रक्खूंगा। साधु शील सुगंधित हैं, मैं वैसा न होने से चन्दनादिका विलेपन रक्खूंगा। मुनिराज तो मोह रहित हैं, पर मैं वैसा न होने से एक छत्री भी रक्खूँगा। मुनि नंगे पैर रहते हैं, परन्तु मैं पैरों में जूते भी रक्खूँगा। मुनि कषाय रहित हैं, मैं वैसा नहीं इस लिए मैं अपने पास काषाय[1] वस्त्र रक्खूँगा। मुनि स्नान से रहित हैं, परन्तु मैं तो परिमित जल से स्नान भी किया करूँगा। इस प्रकार अपनी बुद्धि से मरीचिने परिव्राजक का वेष कल्पित कर लिया। उसे नया वेषधारी देख कर अनेक मनुष्य उसके पास जाकर उससे धर्म पूछने लगे। मरीचि लोगों के समक्ष साधु धर्म की व्याख्या करता है। उपदेशशक्ति बलवती होने के कारण अनेक राजपुत्रों को प्रतिबोधित कर भगवान को शिष्यतया प्रदान करता है और प्रभु आदिनाथ स्वामी के साथ ही विचरता है। एक समय प्रभु अयोध्याम समवसरे, तब वंदन करने के लिए आये हुए भरतने प्रभु से पूछा कि-स्वामिन्! इस सभा में कोई ऐसा मनुष्य है जो भरत क्षेत्र में इस चौबीसी में तीर्थंकर होनेवाला हो? भगवान बोले-हे भरत! तेरा पुत्र मरीचि इस वर्तमान अवसर्पिणी में वीर नामक चौबीसवाँ तीर्थंकर, विदेह क्षेत्र की मूका राजधानी मे प्रियमित्र नामा चक्रवर्ती और इस भरतक्षेत्र में प्रथम वासुदेव होगा। यह सुन कर हर्षित हुआ भरत मरीचि के पास जाकर उसे तीन प्रदक्षिणा और नमस्कार कर बोला-हे मरीचे! संसार में जितने श्रेष्ठ

1 गेरु से रंगा हुआ वस्त्र।

पद हैं वे सब तूने ही प्राप्त किये हैं, क्योंकि तू अन्तिम तीर्थंकर, प्रथम वासुदेव और चक्रवर्ती होगा। मैं तेरे इस परिव्राजक वेप को वन्दन नहीं करता, किन्तु तू भावीकाल में अन्तिम तीर्थंकर होनेवाला है इस अपेक्षासे मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। इस तरह मरीचि की स्तुति करता हुआ भरत अपने स्थान पर चला गया। इधर मरीचि अपने भावी उत्कर्ष की बातें सुन कर हर्ष के आवेश में आकर त्रिपदी पछाड़ कर नृत्य करते हुए इस प्रकार गाने लगा—

प्रथमो वासुदेवोऽहं, मूकायां चक्रवर्त्यहं। चरमस्तीर्थराजोऽहं, ममाहो! उत्तमं कुलम् ॥ १ ॥
आद्योऽहं वासुदेवानां, पिता मे चक्रवर्त्तिनाम्। पितामहो जिनेंद्राणां ममाहो! उत्तमं कुलम् ॥२॥

अर्थ—मैं पहला वासुदेव बनूँगा, मूका नगरी में चक्रवर्ती बनूँगा और अन्तिम तीर्थंकर बनूँगा इस लिए मेरा कुल सर्वोत्तम है। वासुदेवों में पहला मैं हूं, चक्रवर्त्तियों में मेरे पिता पहले हैं और तीर्थंकरों में मेरे दादा पहले हैं; इस लिए मेरा कुल सर्वोत्तम है। इस प्रकार कुल का मद करने से मरीचिने नीच गोत्र कर्म बांध लिया। जो मनुष्य जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप, तप और विद्या इनका अभिमान करता है उसे भवान्तरमें ये वस्तु हीन प्राप्त होती हैं। अब भगवान के निर्वाण होने पर भी मरीचि साधुओं के साथ ही विचरता है और उपदेश से अनेक मनुष्यों को प्रतिबोध कर मुनियों को शिष्यतया समर्पण करता है। अर्थात् वैराग्य प्राप्त कर जो दीक्षा ग्रहण करना चाहता है उसे साधुओं के पास भेज देता है।

एक दिन मरीचि बीमार पड़ गया, उस समय कोई भी उसे पानी तक देने को न आया, तब उसने सोचा कि-देखो इतना परिचित होने पर भी ये साधु मेरे बेपरवाह हैं। यदि अब के मैं निरोगी हो जाऊँ तो मेरे प्रसंग पर सेवा करनेवाला एक शिष्य अवश्य बनाऊँगा। कुछ दिन बाद मरीचि निरोगी होगया। एक दिन एक कपिल नामक राजकुमार मरीचि की देशना सुन कर वैराग्य को प्राप्त हुआ। मरीचि ने कहा-कपिल! जाओ, साधुओं के पास जाकर दीक्षा धारण करो। कपिल बोला-स्वामिन्! मैं तो आपके दर्शन में व्रत ग्रहण करूँगा। मरीचि बोला-कपिल! साधु-मन, वचन, काया के दण्ड से रहित हैं, मैं वैसा नहीं हूं, इत्यादि मरीचि ने अपनी समस्त त्रुटियाँ बतलादीं, तथापि वह भारी कर्मी कपिल चारित्र से पराङ्मुख होकर बोला-क्या आपके दर्शन में सर्वथा धर्म नहीं है? यह सुनकर मरीचि ने विचारा कि-यह मेरे योग्य ही शिष्य है जो मेरी बात कहने पर भी नहीं मानता। उसके प्रश्न के उत्तर में मरीचि ने कहा कि-कपिल! जैन दर्शन में भी धर्म है और मेरे दर्शन में भी। कपिल ने मरीचि के पास दीक्षा ले ली। मरीचि ने जो यह कहा कि जैन दर्शन में भी धर्म है और मेरे दर्शन में भी, इस उत्सूत्र प्ररूपणा से उसने कोटाकोटी सागर प्रमाण संसार उपार्जन कर लिया। इस दुष्कृत की आलोचना किये बिना ही चौरासी लाख पूर्व की आयु पूर्ण कर वह मर कर चौथे भव में ब्रह्मलोक नामा स्वर्ग में दश सागरोपम की स्थितिवाला देव बना। वहाँ से च्यव कर पाँचवें भव में कोल्लाक नामक ग्राम में अस्सी लाख पूर्व की आयुवाला ब्राह्मण हुआ। और विषयासक्त हुआ, अन्त में त्रिदण्डी होकर मरा। बाद में बहुत काल

वह अनेक भवोंद्वारा संसार परिभ्रमण करता रहा, वे भव इन स्थूल सत्ताईस भवों में नहीं गिने हैं। वहाँ से छठे भव में स्थूणा नगरी में बहत्तर लाख पूर्व की आयुवाला पुष्प नामक ब्राह्मण हुआ और त्रिदंडी होकर मरा। सातवें भवमें सौधर्म देवलोक में मध्यम स्थिति का देव हुआ। वहाँ से आठवें भव में चैत्य ग्राम में साठ लाख पूर्व की आयुवाला अग्निद्योत नामा ब्राह्मण हुआ और अन्त में त्रिदंडी होकर मरा। वहाँ से नवमें भव में ईशान देवलोक में मध्यम स्थितिवाला देव हुआ। वहाँ से च्यवन कर दशवें भवमें मंदर ग्राममें छप्पन लाख पूर्व की आयुवाला अग्निभूति नामक ब्राह्मण हुआ और अन्त में त्रिदंडी होकर मरा। ग्यारहवें भव में तीसरे कल्प में मध्यम स्थितिवाला देव हुआ। बारहवें भवमें श्वेतांबी नगरी में चवालिस लाख पूर्व की आयुवाला भारद्वाज नामक ब्राह्मण हुआ और अन्तमें त्रिदंडी होकर मरा। तेरहवें भव में महेंद्र कल्प में मध्यम स्थितिवाला देव हुआ। वहाँ से फिर कितनेएक काल तक संसार में परिभ्रमण कर चौदहवें भवमें राजगृह नगरमें चौंतीस लाख पूर्व की आयुवाला स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ। अन्तमें त्रिदंडी होकर पंद्रहवें भवमें ब्रह्मलोक नामा स्वर्ग में मध्यम स्थितिवाला देव हुआ। सोलहवें भव में कोटी वर्ष आयुवाला विश्वभूति युवराज पुत्र हुआ। संभूति मुनि के पास चारित्र ले कर एक हजार वर्ष तक घोर तप किया। एक समय मासोपवास के पारणे के लिए मथुरानगरी में गोचरी जा रहा था, मार्ग में एक गाय का सींग लगने से तपस्यासे कृश होने के कारण जमीन पर गिर पड़ा। यह देख कर वहाँ पर शादी करने के लिए आये हुए विशाखानन्दी नामक उसके चचा के पुत्रने उसका उपहास्य

धारिणी देवी की कुक्षिमें चौरासी लाख पूर्व की आयुवाला प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती हुआ। पोट्टिलाचार्य के
पास दीक्षा लेकर एक करोड वर्ष तक दीक्षापर्याय पाल चौवीसवें भव में महाशुक्र देवलोक में देव हुआ।
वहाँ से पचीसवें भव में इस भरत क्षेत्र की छत्रिका नगरी में जितशत्रु राजा की भद्रा नामा रानी की कुक्षि से
पचीस लाख वर्ष की आयुवाला नन्दन नामक पुत्र हुआ। पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर जीवन पर्यन्त
मासक्षमण की तपस्या कर के वीस स्थानक की आराधना द्वारा तीर्थंकर नामकर्म निकाचित कर और एक लाख
वर्ष तक चारित्र पर्याय पाल कर मासिक सलेखना से मृत्यु पाकर छब्बीसवें भव में प्राणत कल्प में पुष्पोत्तराव
तंसक नामा विमान में वीस सागरोपम की स्थितिवाला देव हुआ। वहाँ से चलकर पूर्व में मरीचि के भव में
उपार्जन किये और भोगने में कुछ शेष रहे हुए नीच गोत्र कर्म के प्रभाव से सताइसवें भव में ब्राह्मणकुण्ड ग्राम
नगरमें ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में प्रभु अवतरे हैं। इसी कारण इंद्र यह विचार करता
है कि इस प्रकार नीच गोत्र कर्म के उदय से अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेवादि का अवतरण तो तुच्छादि
नीच गोत्र में हुआ है, होता है और होगा अर्थात् उन हल्के कुलों में पूर्वोक्त उत्तम पुरुष भूत, वर्तमान और
भविष्य काल में माता के गर्भ में आये और आवेंगे परन्तु उन कुलों में योनि द्वारा उनका जन्म न हुआ, न
होता है और न कभी होगा। अब श्रमण भगवान् महावीर प्रभु जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र में, ब्राह्मण कुण्ड ग्राम
नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की स्त्री देवानन्दा की कुक्षि में गर्भतया अवतरे हैं। इस लिए देवताओं के राजा शक्रेन्द्र

किया। इससे कुपित हो उस गाय को दोनों सींग पकड कर आकाश में घुमाई और यह निदान कर लिया कि मेरे इस तप के प्रभाव से मैं भवान्तर में सबसे अधिक बलवान बनूं। वहाँ से मृत्यु पाकर सत्तरवें भव में महाशुक्र विमान में उत्कृष्ट स्थितिवाला देव हुआ। अठारहवें भव में पोतनपुर के राजा प्रजापति कि जो अपनी पुत्री का ही कामी बना था उसकी पत्नीरूप मृगावती पुत्री की कुक्षि से चौरासी लाख वर्ष की आयुवाला त्रिपृष्ट नामक वासुदेव हुआ। वहाँ बालवय में ही प्रतिवासुदेव के चावलों के खेतोंमें उपद्रव करनेवाले सिंह को शस्त्र छोड़ कर चीर डाला। क्रमसे वासुदेव का पद पाया। एक समय उस वासुदेव ने अपने शय्यापालक को आज्ञा दी कि जब मुझे निद्रा आजावे तब इन गाना गानेवालों को बन्द कर देना। यह आज्ञा होते हुए भी संगीत रस मे आसक्त होने से वासुदेव को निद्रा आजाने पर शय्यापालकने गवैयों को गाने से न रोका। क्षणान्तर में निद्रा-भंग होजाने से कुपित हो वासुदेव बोला—अरे दुष्ट! हमारी आज्ञासे भी तुझे संगीत अधिक प्रिय लगा! ले इसका फल चखाऊँ। यों कह कर उसके दोनों कानों में सीसा गरम कर के डलवा दिया। इस कृत्य से उसने अपने कानों में सलाखायें डलवाने का कर्म उपार्जन कर लिया। इस प्रकार अनेक दुष्ट कर्म कर के वहाँ से मृत्यु पाकर उन्नीसवें भवमे सातवीं नरक में नारक तया उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर बीसवें भव में सिंह हुआ। वहाँ से मर कर इक्कीसवें भव में चौथी नरक में नारक हुआ। वहाँ से निकल कर फिर संसार में बहुत से सूक्ष्म भव भ्रमण कर बाईसवें भव में मनुष्य गति में आकर कुछ शुभ कर्म उपार्जन किया। तेईसवें भव में मूका राजधानी में धनंजय राजा की

का यह आचार है, अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य इन्द्रों का यह कर्तव्य है कि उस प्रकार के स्वरूपवाले अन्त्य, तुच्छादि कुलों से अरिहन्तादि महान् पुरुषों को उस प्रकार के उग्र, भोग, राजन्य उत्तम कुल जातियों में लाकर रक्खें । इस लिए अपने कर्तव्य के अनुसार मुझे भी श्रीऋषभदेव स्वामी के वंशके क्षत्रियों में विख्यात काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वाशिष्ट गोत्रीया पत्नी त्रिशला की कुक्षि में प्रभु महावीर को रखना चाहिये और जो त्रिशला क्षत्रियाणी का पुत्रीरूप गर्भ है उसे वहां से लेकर जालधर गोत्रीया देवानन्दा की कुक्षि में रखना चाहिये ।

गर्भपरावर्तन

इस प्रकार का विचार कर इन्द्र अपने सेनापति हरिणैगमेषी देव को बुलवाता है और अपने मन में पैदा हुआ सकल्प आद्योपान्त उसके सामने कह सुनाता है। फिर कहता है कि हे देवानुप्रिय! यह देवेन्द्रों का कर्तव्य है इस लिए तू जा और देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से लेकर भगवन्त को त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में रख दे और जो त्रिशला का गर्भ है उसे देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में रख दे । इस प्रकार कार्य कर के शीघ्र ही मेरी आज्ञा को पालन करनेका समाचार मुझे वापिस दे । पैदल सेना के स्वामि हरिणैगमेषी देवने इन्द्र की आज्ञा बड़ी उत्सुकता और विनयपूर्वक सुनी । आज्ञा सुनकर हृदयमें हर्ष धारण कर हरिणैगमेषी हाथ जोड़ कर बोला–जैसी दवाज्ञा, यों कहकर इन्द्र के वचन को स्वीकार करता है। फिर ईशान कोन में जाकर वैक्रिय शरीर

बनाने के लिए प्रयत्न करता है। दिव्य प्रयत्नसे असंख्य योजन प्रमाण दंण्डाकार में ऊपर और नीचे विशाल जीव प्रदेश के पुद्गल समूह को बाहर निकालता है और वैक्रिय शरीर बनाने के लिए हीरा, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसार, गल्ल, हंसगर्भ, स्फटिकादि जो सोलह रत्नों की जातियॉ हैं उनके समान सार और उत्तम सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करता है। दूमरी वार भी इसी प्रकार वैक्रिय समुद्घात-प्रयत्न विशेष कर के, अर्थात् मनुष्य लोक में आनेके लिए वैक्रिय शरीर बना कर अन्य गतियों से उत्कृष्ट मनोहर, चित्त की उत्सुकता से काय-चापल्यवाली, प्रचंड, तीव्र, शीघ्र एवं दिव्यगति से अब वह हरिणैगमेषी देव तिरछे लोक के असंख्यात द्वीप समुद्रों के मध्य से जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में जहॉ पर ब्राह्मणकुंड ग्राम नगर है वहाँ आता है। वहॉ पर ऋषभदत्त ब्राह्मण के घरजाकर देवानन्दा ब्राह्मणी के पास जाता है। दर्शन होते ही प्रभु महावीर को नमस्कार करता है। फिर परिवार सहित देवानन्दा ब्राह्मणी को अवस्वापिनी निद्रा देता है। सारे परिवार को निद्रित कर वहॉ से अशुभ पुद्गलों को हरन करता है और शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपन करता है। फिर प्रभो! मुझे आज्ञा दें, यों कह कर हरिणैगमेषी पीडा रहित अपने दिव्य प्रभाव से भगवन्त को करतल के संपुटमें ग्रहण करता है। ग्रहण करते समय गर्भ या माता को जरा भी तकलीफ मालूम नहीं होती। भगवन्त को संपुट में धारण कर वह देव क्षत्रियकुंडग्राम नगर में आकर सिद्धार्थ राजभवन में जाता है और त्रिशला क्षत्रियाणी के पास जाकर उसे सपरिवार को अवस्वापिनी निद्रा दे देता है। फिर वहॉ से भी अशुभ पुद्गलों को दूर कर शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप

दर भगवन्त महावीर प्रभु को बाधा पीडा रहित त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में रखता है और जो त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भ था उसे देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में जा रखता है। यह कार्य कर जिस दिशा से आया था उसी दिशा से असंख्य द्वीप समुद्रों के मध्य में होकर लाख योजन प्रमाण दिव्यगति से उड़ता हुआ जहाँ पर सौधर्मकल्प में सौधर्मावतंसक नामक विमान में शक्रनामा सिंहासन पर शक्रेंद्र बैठा है वहाँ आता है, वहाँ आकर देवेंद्र को उनकी आज्ञा पालन का समाचार सुनाता है।

जब उस काल और उस समय अर्थात् वर्षाकाल के तीसरे मास पाँचवें पक्ष में आश्विन मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन अर्धरात्रि के समय ब्यासी अहोरात्र-रातदिन बीतने पर तिरासीवाँ अहोरात्र काल वर्तते हुए अपने और इन्द्र के हितकारी हरिणैगमेषी देवने देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से श्रमण भगवन्त महावीर प्रभु को भक्ति और देवेंद्र की आज्ञा से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में रक्खा। यहां पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि प्रभु जो ब्यासी रात्रिदिन तक देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में रहे वे सिद्धार्थ राजा के आम्रकुल में प्रवेश करने का शुभ मुहूर्त देख रहे थे, ऐसे तीर्थंकर प्रभु तुम्हें पावन करो। भगवान जब से गर्भ में आये तभी से तीन ज्ञानयुक्त थे, अत वे अपने गर्भ परिवर्तन काल को जानते थे परन्तु अपने आपको स्थान परिवर्तन होते समय उन्होंने नहीं जाना। इस वाक्य से हरिणैगमेषी देव की कार्यकुशलता बतलाई है। रहस्य यह है कि उस देवने प्रभु का ऐसी दिव्य कुशलता से गर्भ परिवर्तन किया कि जिससे प्रभु को मालूम तक भी न हुआ। दूसरे मनुष्य की खूबी बतलाने

के लिए जैसे कोई कहे कि आपने मेरे पैर में से ऐसे काँटा निकाला कि मुझे मालूम भी न हुआ । अब जिस रात्रि को श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला की कुक्षि में आये उसी रात्रि को देवानन्दाने यह स्वप्न देखा कि मेरे वे चौदह स्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणीने हर लिए। जिस रात्रि में भगवन्त को त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भतया रक्खा गया उस रात को त्रिशला क्षत्रियाणी ऐसे सुन्दर वासगृह में थी कि जिसका वर्णन करना कठिन है । वह शयन घर भाग्यवान के योग्य था । वह अनेक प्रकार के चित्रों से सुशोभित था, बाहरी भाग कली चूने आदि से धवलित किया हुआ था । उसका तल भाग सुन्दर फर्स के कारण अतिरमणीय था, अतः सुकोमल और दीप्तिमान था । जिस में जड़े हुए पंचवर्णीय मणि रत्नों के प्रकाश से अन्धकार का सर्वथा प्रवेश न था । उसका समतल भूमिभाग विविध स्वस्तिकादि की रचनासे अतीव मनोज्ञ था । उस शयनगृह में पंचवर्ण के पुष्प बिखरे हुए थे । दशांग धूप आदि अनेक प्रकार के सुगंधी द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न हुए सुवास से वह शयन घर अतिसुगन्धित हो रहा था, अर्थात् उसमें पुष्पों और सुगंधवाले द्रव्यों की सुगंध चारों ओर प्रसर रही थी। इस प्रकार के अति मनोहर शयनगृह में लंबाई के प्रमाण में दोनों तरफ लगे हुए तकियों वाले, शरीर के प्रमाण में बिछी हुई तलाईवाले, दोनों ओर से ऊंचाई और मध्यमें नमे हुए, जिस तरह गंगा की रेती में पैर रखने से वह नीचे को जाता है वैसे कोमल पलंग पर कि जो अपरिभोगावस्था में सुन्दर रजस्त्राण से आच्छादित रहता है और जिस पर मच्छरदानी लगी हुई है, कपास की रुंवाटी और

अर्कतूल के समान अति सुकोमल स्पर्शवाले पलग पर अर्धनिद्रित अवस्था में आधी रात के समय त्रिशला क्षत्रियाणी गज, वृषभ आदि चौदह महास्वप्न देखकर जाग उठती है। यद्यपि वीरप्रभु की माताने पहले स्वप्न में सिंह देखा है और ऋषभदेव की माताने प्रथम बैल देखा है तथापि बहुत से जिनेश्वरों की माता जिस क्रम से स्वप्न देखती हैं वही क्रम रक्खा है।

॥ चौदह स्वप्नों का वर्णन॥

अब प्रथम स्वप्न में त्रिशला माताने गज देखा। वह चार दांतवाला, तेजस्वी, बलवान, वृष्टि के बाद सफेद हुए बादल, मुक्ताहार, क्षीर समुद्र, चंद्र किरणों, जल बिन्दुओ, चाँदी के पर्वत वैताढ्य के समान उज्वल एवं जिसके गंडस्थल से मद झरने के कारण सुगंध के वश होकर जहाँ भ्रमर गुनगुनाहट कर रहे थे तथा इंद्र के हाथी समान शास्त्रोक्त देह प्रमाण और जलपूर्ण मेघ के समान गर्जना करते हुए सर्व लक्षण समूह से वह अति मनोहर हाथी था। १।

इसके बाद त्रिशला माता उज्वल कमल पत्र के समूह से भी अधिक रूपकान्तिवाले, जो अपने विस्तृत कान्तिसमूह से दश ही दिशाओं को सुशोभित करता था, फूले हुए स्कंध भाग से स्वयं उल्लसित कान्तिद्वारा अति सुन्दर, सूक्ष्म, शुद्ध और सुकोमल रोमवाले, सुगठित अंग, मांसल शरीर, प्रधान, पुष्ट अवयव, वर्तुलाकार सुन्दर चिकने और तीक्ष्ण सींग, समान प्रमाणवाले, सौम्याकृति, मंगल मुख, सुशोभित श्वेतवर्णीय बैल को

देखती है ॥ २ ॥

पूर्वोक्त बैल को देखे बाद आकाश से उतरते और अपने मुखमें प्रवेश करते हुए त्रिशला माता एक सिंह को देखती है । वह सिंह–हारसमूह, क्षीरसागर, चंद्रकिरणों, रजत पर्वत और जलबिन्दुओं के समान उज्वल था। मनोहर होने से दर्शनीय, दृढ़ एवं प्रधान पंजोंयुक्त, पुष्ट, तीक्ष्ण दाढाओं से अलंकृत मुखवाला, सुसंस्कारित जातिमान कमल के तुल्य कोमल और प्रमाणोपेत प्रधान होठों से युक्त, लाल कमल पत्र के समान कोमल एवं प्रधान जिह्वा तथा तालु से सुशोभित मुखवाला वह सिंह था। सुनार की कुठालीमें तपे हुए आवर्तवान उत्तम सुवर्ण के समान गोल और निर्मल बिजली के तुल्य नेत्रवान्, विशाल, परिपुष्ट और प्रधान जंघायें धारण करनेवाले, परिपूर्ण एवं निर्मल कंधे युक्त, कोमल, सूक्ष्म, उज्वल, श्रेष्ठ लक्षणवाली और दीर्घ केशराओं के धारण करनेवाले, उन्नत, कुण्डलाकार एवं शोभायमान पुच्छवाले, तीक्ष्ण नाखून युक्त और सौम्याकृतिवान्, सुन्दर तथा विलासवाली गति से उतरते हुए सिंह को माता देखती है ॥ ३ ॥

अब चौथे स्वप्न में पूर्ण चंद्रमा के समान मुखवाली त्रिशलादेवी ने कमल युक्त ह्रद के कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मीदेवी को देखा। लक्ष्मीदेवी के निवासस्थान का वर्णन निम्न प्रकार है–एकसो योजन ऊँचा, बारह कला अधिक एक हजार और बावन योजन लम्बा सुवर्णमय एक हिमालय पर्वत स्थित है। उस पर दश योजन की गहराईवाला, पाँचसो योजन विशाल और एक हजार योजन लंबा वज्रमय तलभागवाला पद्मह्रद नामक एक

विशाल जलाशय है। उसके मध्यम एक कमल है जो जल से दो कोश ऊँचा, एक योजन चौड़ा और एक योजन लम्बा है। उसकी नील रत्नमय दश योजन की नाल, वज्रमय मूल, रिष्ट रत्नमय कंद, लाल कनकमय बाह्य पत्ते, सुवर्णमय बीच के पत्ते, दो कोश चौड़ी, दो कोश लम्बी और एक कोश ऊँची सुवर्णमय उसकी कर्णिका है। रक्त सुवर्णमय उसकी केशरा है। उसके मध्यमें आध कोश चौड़ा, एक कोश लम्बा और कुछ कम एक योजन ऊँचा लक्ष्मीदवी का भवन है। उसके पाँचसो धनुष्य ऊँचाई और ढाइसो धनुष्य चौड़ाइ वाले पूर्व, दक्षिण एवं उत्तर दिशामें तीन द्वार हैं। उस भवन के मध्यमें ढाईसो धनुष्य के प्रमाणवाली रत्नमय वेदिका है जिस पर श्रीदवी के योग्य सुन्दर शय्या है।

पूर्वोक्त मुख्य कमल के चारों ओर श्रीदवी के आभूषणरूप वलयाकारमें मूल कमल से आधे २ प्रमाणवाले एकसौ आठ कमल हैं। सर्व वलयों में इसी प्रकार क्रमसे अर्ध २ प्रमाण समझना चाहिये। यह प्रथम वलय पूर्ण हुआ। दूसरे वलय में वायव्य, ईशान और उत्तर दिशा में चार हजार सामानिक दवों के चार हजार कमल हैं। पूर्व दिशा में चार महत्तराओं के चार कमल हैं। अग्नि दिशा में गुरु स्थानीय अभ्यन्तर पर्षदा के देवों के आठ हजार कमल हैं। दक्षिण दिशा में मित्र स्थानीय मध्यम पर्षदा के दवों के दश हजार कमल हैं। नैऋत दिशा में किंकर स्थानीय बाह्य पर्षदा के दवों के बारह हजार कमल हैं। पश्चिम दिशा में हाथी, अश्व, रथ, पैदल, भैंसे, गन्धर्व और नाट्यरूप सात सेनापतियों के सात कमल हैं। इस प्रकार यह दूसरा वलय पूर्ण हुआ।

तीसरे वलय में उतने ही अंगरक्षक देवों के सोलह हजार कमल हैं। यह तीसरा वलय। चौथे वलय में अभ्यन्तर आभियोगिक देवों के बत्तीस लाख कमल हैं। पाँचवें वलय में मध्यम आभियोगिक देवों के चालीस लाख कमल हैं। यह पंचम वलय ॥ छठे वलय में बाह्य आभियोगिक देवताओं के अड़तालीस लाख कमल हैं। छट्ठा वलय। मूल कमल के साथ सर्व कमलों की संख्या एक कोटी, बीस लाख, पचास हजार, एक सौ बीस होती है। इस प्रकार के कमल स्थान में रही हुई लक्ष्मीदेवी का दिग्गजेंद्रोंद्वारा अभिषेक होता देखती है। यहाँ पर कुछ श्रीदेवी के रूप का वर्णन लिखते हैं।

अच्छे प्रकार से रक्खे हुए सुवर्ण कछुवे के समान बीचसे कुछ उन्नत और इर्दगिर्द नीचे उसके चरण हैं। नख उन्नत, सुकुमार, स्निग्ध तथा लाल हैं। हाथ पैरों की अंगुलियाँ कमल पत्र के समान कोमल हैं। पैरों की पिंडलियाँ केले के सदृश गोल अनुक्रम से नीचे पतली और ऊपर स्थूल होकर शोभायमान हैं। गोड़े गुप्त और हाथी की सूँढके समान जंघाये हैं। कमर में सुवर्ण का कंदोरा है। नाभि से लेकर स्तनों तक सूक्ष्म रोमराजी शोभायमान है। उसका कटिप्रदेश मुष्टिग्राह्य और मध्य विभाग तीन वलियों सहित है। उसके अंगोपांग चंद्रकान्तादि मणिमाणिक्यादि रत्नों से जडित सुवर्णमय सर्व आभूषणों से भूषित हैं। स्वर्ण कलश सदृश हृदयस्थल पर उसके स्तनयुगल हारों तथा सुन्दर पुष्पों की मालाओं से शोभित हैं। हृदय में मोतीयों की माला, कंठमें मणिमय सूत्र और कानों में दो कुंडल हैं। इस प्रकार आभूषणों की शोभासमूह से श्रीदेवी का मुखमंडल अत्यधिक सुन्दर

मालूम होता है। उसके दोनों नेत्र निर्मल कमल पत्र के सदृश दीर्घ तथा विशाल हैं। उसने शोभा के लिए हाथमें कमल का पत्ता लिया हुआ है उस से हिलते समय मकरंद झरता है। उसका केशपाश स्वच्छ, सघन, काला तथा कमर तक लम्बायमान है। ४।

। दूसरा व्याख्यान समाप्त हुआ।

॥ तीसरा व्याख्यान ॥

अब पंचम स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणी आकाश से उतरती हुई दो पुष्पमालायें देखती है। उस माला युग्म में कल्पवृक्ष के पुष्प, चंपा, नाग, पुन्नाग, प्रियंगु, सिरीष, मोगरा, मालती, जाई, जूई, अंकोल, कुटज, कोरंट, दमनक, बकुल, पाटल, तिलक, वासंतिक, नवमल्लिका, कुन्द, मुचकुन्द, सूर्य और चंद्रविकाशी कमल, उत्पल, पुण्डरीक आदि के पुष्प लगे हुए हैं। उन मालाओं में आम की मंजरियाँ भी लगी हुई हैं। छही ऋतुओं में पैदा होनेवाले पंचवर्णीय पुष्पों से वे मालायें गूँथी हुई हैं, श्वेत वर्ण के पुष्प उनमें अधिक हैं, अन्य विविध रंगवाले पुष्प भी उनमें यथायोग्य स्थान पर गूँथे हुये हैं जिस से वह मालायुग्म अत्यन्त शोभनीक मनोहर देख पड़ता है। उसके अनेक वर्णीय पुष्पों की सुगन्ध से आकर्षित हो अनेक भ्रमर गुनगुनाहट शब्द कर रहे हैं। ५।

अब छठे स्वप्न में त्रिशला माता पूर्णचंद्र को देखती है। वह चंद्र गोदुग्ध के सदृश, झाग, जलकण, चाँदी के कलश समान सफेद है। तथा हृदय और नेत्रों को आनन्द देनेवाला, सर्व कला युक्त, अन्धकार नाशक, शुक्लपक्ष में वृद्धि पानेवाला, कुमुद वन को विकसित करनेवाला, रात्रि शोभाकारक, समुद्र जलवर्धक, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष द्वारा मासादि का प्रमाणकारक, सूर्य के प्रसरते हुए ताप से मूर्च्छित हुए चंद्रविकाशि कमलों को अपनी अमृतमय किरणों से सत्वर विकस्वर करनेवाला, शीशे के समान उज्वल, ज्योतिष मुखमंडन, कामदेव के शरों को पूर्ण करनेवाला-अर्थात् जिस प्रकार कोई एक शिकारी इच्छित शर प्राप्त कर निःशंक होकर मृगादि पर प्रहार करता है वैसे ही कामदेव भी चंद्रोदय को प्राप्त कर विरही जनोंको अधिक पीड़ित करता है। इसी कारण कविने चंद्र को निशाचर-राक्षस कह कर उपालंभ-उलहना दिया है-रजनिनाथ! निशाचर! दुर्मते! विरहिणां रुधिरं पिबसि ध्रुवम्। उदयतोऽरुणता कथमन्यथा तव कथं च तके तनुताभृतः ॥ १ ॥ अर्थ—हे निशाचर दुर्मते रजनिनाथ-चन्द्र! निश्चय ही तू विरही जनों का खून पीता है, यदि ऐसा न हो तो उदय के समय तेरा लाल मुख और उनके शरीर में कृशता क्यों होती है? तथा विशालाकाश का मानो चलत स्वभाववाला वह तिलक ही न हो एवं रोहिणी* के हृदय को वल्लभ वह चंद्र है। इस प्रकार छठे स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणीने सौम्य पूर्ण चंद्र को देखा। ६।

* रोहिणी एक नक्षत्र है और चंद्र के साथ उसका स्वामी सेवक भाव है तथापि लौकिक कहावत ऐसी है कि रोहिणी चंद्र की स्त्री है।

सातवें स्वप्न में त्रिशलादेवी सूर्यमंडल को देखती है-वह सूर्य अंधकार समूह का विनाशक, जाज्वल्यमान तेजवान्, लाल अशोक, प्रफुल्लित केसुपुष्प, तोते की चोंच, तथा चणोठी के अर्ध भाग सदृश रक्त वर्णवाला और कमलों को विकसित कर-कमल वनों की शोभा बढानेवाला है। ज्योतिष-शास्त्र संबन्धी लक्षणों को व्यक्त लानेवाला, ज्योतिष चक्रग्रहों का राजा एवं आकाश में साक्षात दीपक के समान है। वह हिमपटल को गलानेवाला, रात्रिविनाशक, उदय और अस्त समय में ही दो २ घड़ी सुखपूर्वक और शेष समय दु:ख से देखने योग्य है, उदय एवं अस्त समय ही जो एकसा लाल तथा संसार का नेत्ररूप है। तथा वह अंधकार में स्वेच्छापूर्वक विचरनेवाले अन्यायकारी मनुष्यों को रोकनेवाला, शीतवेग का विनाशक, मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करनेवाला विशाल मंडल युक्त और अपनी हजारों किरणों द्वारा चंद्रादि समस्त ग्रहों के तेज को निस्तेज करनेवाला है। सूर्य किरणें ऋतुभेद के कारण सदैव एक समान नहीं रहतीं। निम्न प्रकार होती हैं।

सूर्य किरण	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन	कार्तिक	मार्गशीर्ष	पोष	माघ	फाल्गुन
संख्या	१२०	११ ०	१४०	१५००	१४ ०	१४०	१६००	११००	१०५०	१ ०	११००	१ ५०

अब आठवें स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणी उत्तम सुवर्ण के दंडवाला और हजार योजन ऊँचा ध्वज देखती

है उसमें लाल, पीले, नीले, श्याम और श्वेत रंगवाले वस्त्रों की पताकायें लगी हुई हैं। उसके सिर पर अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र रंगोंवाले मयूर पिच्छ लगे हुए हैं इस से वह ध्वज अत्यधिक शोभायमान है। उस ध्वजा में स्फटिक रत्न, शंख, कुन्द के पुष्प, जलबिन्दु और चाँदी के कलश समान श्वेत सिंह का रूप चित्रा हुआ है, जो सिंह पवनसे ध्वजा के हिलने पर मानो आकाश को भेदन करता हो ऐसा मालूम होता है, अतः मंद २ सुहावने वायु से कंपायमान वह ध्वज अतीव शोभनीक देख पड़ती है। ८।

नव में स्वप्न में त्रिशला देवीने उत्तम सुवर्ण का अत्यंत सुन्दर सूर्यमंडल के समान प्रकाशवान् तथा सुगन्धी जलसे भरा हुआ एक पूर्ण कलश देखा। वह कलश कमलों से घिरा हुआ, सर्व मंगलकारी रत्नों के कमल पर रक्खा हुआ, नेत्रों को आनन्ददायक, प्रभायुक्त, सर्व दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ साक्षात् लक्ष्मी के घर समान, पाप रहित, शुभ तथा भास्वर है और कंठ में सर्व ऋतुओं सम्बन्धी सरस सुगंधित पुष्पों की मालायें पहने हुए है। ९।

दशवें स्वप्न में पद्मसरोवर देखती है–जिसमें सूर्योदय से सहस्रदल कमल खिल रहे हैं, जिसका निर्मल जल विकशित कमलों के मकरंद से सुगन्धमय है तथा कमलों के पुष्प, पत्तों से पीले वर्ण का मालूम हो रहा है और जिसमें अनेक जलचर प्राणी सुखपूर्वक रहते हैं। कमलनी के पत्रों पर पड़े हुए जलबिन्दु ऐसे मालूम होते हैं मानो निलमणि–जड़ित आँगन में मोती जड़े हैं। उस विशाल पद्मसरोवर में पैदा हुए सूर्य विकाशी कमल, चंद्र

कुवलय, पद्म, उत्पल, तामरस, पुंडरीक, रक्तोत्पल–लाल कमल और पीत कमल, इत्यादि कमलों में प्रमत्त भ्रमरगण सुगंध से आकर्षित हो गुंजारव कर रहे हैं और उस सरोवर में कदंबक, कलहंस, चक्रवाक, बालहंस, सारस आदि पक्षी उत्तम जलाशय प्राप्त होने के कारण गर्व से निवास कर रहे हैं। १०।

ग्यारहवें स्वप्न में चन्द्रकिरणों के समान शोभावाले क्षीरसमुद्र को देखा–जिसका जल चारों दिशाओं में बढ़ रहा है, तथा जिसमें चपल से भी अतिचपल और अत्यन्त ऊँची उठनेवाली तरंगें तटप्रदेश से टकरा २ कर उसे क्षोभित करती हुई जोर का शब्द कर रही हैं। वे तरंगें प्रारम्भ में छोटी फिर बड़ी इस प्रकार निर्मल उत्कृष्ट क्रम से दौड़ती हुई क्षीरसमुद्र के मध्यम भाग को अत्यन्त सुशोभित कर रही हैं। उस समुद्र में महा मगरमच्छ, तिमि मच्छ, तिमितिमिंगल मच्छ (महाकाय मच्छ), तिलतिलक लघुमच्छ, ये सब प्रकार के जलचर प्राणी क्रीड़ा करते हुए जब २ पानी पर अपनी पुच्छ का प्रहार करते हैं तब पानी पर झाग पैदा होते हैं जो किनारे पर आकर कर्पूर के ढेर समान दिखाई देते हैं। उसी समुद्र में गंगा, सिन्धु, सितादि महानदियाँ बड़े वेग से आकर मिलती हैं। यद्यपि ये नदियाँ क्षीरसमुद्र में नहीं किन्तु लवणसमुद्र में मिलती हैं तथापि समुद्र की शोभा के रूप में इनका वर्णन किया गया है। ११।

बारहवें स्वप्न में शरद् रजनी पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली त्रिशला क्षत्रियाणी एक उत्तम देवविमान को देखती है–वह पुंडरिक नामक श्वेत और सर्व श्रेष्ठ कमल के समान श्रेष्ठ विमान है। तथा वह उत्तम प्रकार के

रत्नजड़ित सुवर्ण के १००८ स्थंभोंवाला आकाश में दीपक एवं उदय होते हुए सूर्य के सदृश देदीप्यमान है। उसमें अनेक प्रकार के रंगविरंगे पंचवर्णीय सुगन्धित पुष्पों की मालायें लटक रही हैं। तथा मोतियों की मालाओं से उसकी कान्ति में अधिक शोभा बढ़ रही है। उस दिव्य विमान की दीवारों में मृग, वृक्ष, वृषभ, अश्व, गज, मगर मच्छ, भारंड, वरुड, मयूर, सर्प, किन्नर, कस्तूरिया मृग, अष्टापद, शार्दूलसिंह, वनलता, पद्म-लता इत्यादि के रंगविरंगे सुन्दर चित्र लिखे हुए हैं। उस विमान में जो विविध प्रकार के नाटक हो रहे हैं उनमें बजनेवाले अनेक बाजों तथा महामेघ के शब्द सदृश गंभीर देवदुन्दुभी का मनोहर और सर्व लोकको पूर्ण करनेवाला शब्द हो रहा है। देवों के योग्य पुण्य कर्मफल सुखदायक वह विमान कृष्णागुरु, कुन्दरूक, सेलारस आदि दशांग धूप से सुगन्धमय तथा उद्योतवाला है। १२।

तेरहवें स्वप्न में त्रिशलादेवीने उत्तम रत्नों को राशिसमूह को देखा—उस रत्नों के समूह में पुलाक जाति के वज्र—हीरा की जाति के, नीलम, सस्यक, मरकत, इंद्रनील, करकेतन, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, प्रवाल, स्फटिक, सौगन्धिक, हंसगर्भ, अंजन, चंद्रकांतमणि, माणिक्य, सासक, पन्ना आदि अनेक जाति के रत्न संचित हैं। वह रत्नों का पुंज मेरु के समान ऊँचा और अपने देदीप्यमान तेजसे आकाश को भी प्रकाशमान कर रहा है। १३।

चौदहवें स्वप्न में त्रिशला माताने विस्तीर्ण, उज्ज्वल, निर्मल, पीतरक्तवर्णवाली तथा मधु घीसे सिंचित धग् २ शब्द करती हुई जाज्वल्यमान् निर्धूम अग्निशिखा को देखा—वह अग्निशिखा अनेक छोटी बड़ी ज्वालाओं से

व्याप्त है। धूम्र रहित अनेक ज्वालायें आपस में स्पर्धा से बढ़ती हुई मानो आकाश को पकाने के लिए प्रयत्न करती हों ऐसी मालूम होती है। १४। इस प्रकार विकसित कमल के समान नेत्रवाली त्रिशला क्षत्रियाणीने पूर्वोक्त मंगलमय, कल्याणकारी, प्रियदर्शन इन चौदह महास्वप्नों को आकाश से उतरते और अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा। पूर्वोक्त सुभग सौम्य चतुर्दश स्वप्नों को देख कर त्रिशला रानी शय्यामें जाग उठी। उस समय हर्ष के कारण उसका सर्वांग उल्लसित हो गया, अरविन्द के समान लोचन विकस्वर हो गये और उसके सर्व शरीर की रोमराजी मारे हर्ष के विकासमान् होगई।

इन चौदह स्वप्नों को सर्व तीर्थंकरों की मातायें जब तीर्थंकर का जीव उनके गर्भ मे अवतरता है तब अवश्य देखती हैं। इस कारण त्रिशला रानी भी महावीर प्रभु के गर्भ में आने से इन चतुर्दश महास्वप्नों को देख कर शय्या में जागृत होगई। अब हर्ष संतोष युक्त हृदयवाली, मेघधाराओं से सिंचित कदम्ब के पुष्प समान उठे हुए रोमवाली त्रिशला रानी उन स्वप्नों को क्रम से याद करती है। फिर शय्या से उठ कर पाद-पीठ से उतर कर मन, वचन, काया सम्बन्धी चापल्य—स्खलनादि रहित, राजहंसी के समान गति से चल कर सेज पर सोए हुए सिद्धार्थ राजा के पास आती है और सिद्धार्थ राजा को वल्लभ, सदैव वाञ्छनीय, प्रेमगर्भित, मनोज्ञ, उदार, मनोरम, वर्णस्वर के उच्चारण से प्रगट, कल्याणकारी, समृद्धिकारक, धन लाभ करानेवाली, मंगलकारी, अलंकारादि शोभायुक्त, हृदय को प्रसन्न करनेवाली, भरतार हृदय को आह्लाददायक, कोमल मधुर

रसवाली, संपूर्ण उच्चारवाली, मितपद-वर्णादिवाली, अल्प शब्द और अधिक अर्थवाली वाणी से जगाती है । सिद्धार्थ राजा की आज्ञा पाकर मणि, रत्न जड़ित सुवर्ण के सिंहासन पर बैठ गई । मार्ग का परिश्रम दूर हो जाने से अर्थात् सर्वथा स्वस्थ चित्त होने पर त्रिशला क्षत्रियाणी पूर्वोक्त मंजुल मधुर वचनों से बोली-हे स्वामिन् ! आज मैंने अर्ध जागृत अवस्थामें गजादि चौदह महास्वप्न देखें हैं । हे स्वामिन् ! मुझे उन मनोहर मंगलकारी स्वप्नों का क्या शुभ फल होगा ? त्रिशला क्षत्रियाणी के मुख से उन महाप्रशस्त स्वप्नों को सुन कर और सम्यक्-तया हृदय में धारण कर सिद्धार्थ राजा हर्षित हो, सन्तुष्ट हो, आनन्दपूर्ण हृदय हो, मेघधारा से सिंचित कदम्ब पुष्प के समान विकसित रोमराजीवाला होकर अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धि विज्ञान से स्वप्नों के अर्थ को निश्चित करता है । अर्थ निश्चय करने पर उत्तम प्रकार की वाणीद्वारा राजा सिद्धार्थ त्रिशला क्षत्रियाणी से कहता है—हे देवानुप्रिये ! तुमने बड़े उदार, कल्याणकारी, मंगल, धन, लक्ष्मीयुक्त, दीर्घायु, आरोग्य, तुष्टि, शिव और यश प्राप्त करानेवाले स्वप्न देखे हैं । हे देवानुप्रिये ! इन महामंगलकारी स्वप्नों के दर्शन से अर्थ का लाभ होगा, भोग का, सुख का, पुत्र का, राज्य का, यश का और धन धान्य का लाभ होगा, हे देवानुप्रिये ! आज से नव मास और साढ़े आठ दिनरात व्यतीत होने पर तुम एक उत्तम लक्षणवाले पुत्र को जन्म दोगी। वह पुत्र हमारे कुल में ध्वज समान, दीपक समान मंगलकारी, पर्वत के समान अचल धैर्यवान्, कुलाधार, मुकुट मणि तुल्य, लोक में तिलक समान, कुलकीर्तिकारक, कुल को प्रकाशित करने में सूर्य समान, कुल की वृद्धि करनेवाला, और कुल का यश

विस्तृत करनेवाला होगा। वह पुत्र हमारे कुल म वृक्ष के समान दूसरों को आश्रय देनेवाला होगा, उसके हाथ पैर सुकोमल होंगे, उसका शरीर यथायोग्य अवयवों से तथा सपूर्ण पचेंद्रियों सहित, सर्व प्रकार के प्रशस्त लक्षणों एव व्यजनों से युक्त, मानोन्मान प्रमाण से सर्वांग सुन्दर होगा। पूर्ण चद्र के समान उसकी सौम्याकृति होगी और वह सब को देखने में प्रिय लगेगा क्यों कि सब से अधिक उसका रूपसौन्दर्य होगा। वह पुत्र जब बाल्यावस्था को त्याग कर यौवनावस्था के सन्मुख होगा, अर्थात् जब वह परिपक्व विज्ञानवान् होगा तब बड़ा शूरवीर, अगीकृत कार्य को निभाने में समर्थ, सग्राम करने में, परराष्ट्र पर आक्रमण करने में बड़ा पराक्रमी, विपुल बल वाहनवाला तथा राजाओं का भी राजा महान् सम्राट् होगा। इस लिए हे देवानुप्रिये ! तुमने बड़े ही उत्तम स्वप्न देखे हैं।

त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजासे पूर्वोक्त स्वप्नों का अर्थ सुन कर सतुष्ट हो हर्ष से पूर्ण हृदयवाली होकर दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर अजलि कर के विनयपूर्ण वचनों से बोली–हे स्वामिन् ! आप का वचन सत्य है, जो आपने फरमाया वह सर्वथा यथार्थ है, मैं आप के कथन किये अर्थ को सदेह रहित स्वीकारती हू। इस प्रकार सिद्धार्थ राजा के कथन किये अर्थ को याद रखती हुई और उन चतुर्दश महास्वप्नों को स्मरण करती हुई राजा की आज्ञा लेकर अनेक प्रकार के मणि रत्नजडित सुवर्ण के भद्रासन से उठ कर त्रिशला रानी पूर्वोक्त राजहसी के समान गति से अपने शयनागार में चली जाती है। वहाँ जाकर मेरे देखे हुए ये सर्वोत्कृष्ट प्रधान मगलकारी चौदह महास्वप्न किसी खराब स्वप्न के देखने से निष्फल न हो इस लिए अब निद्रा लेना

उचित नहीं, यह विचार कर देव गुरुजन सम्बन्धी प्रशस्त धर्मकथाओं से स्वप्न जागरिका करती है। स्वयं जागती हुई सेवक सखीजनों को जगाती हुई और धर्मकथाओं द्वारा रात्रि को व्यतीत करती है।

अब प्रातःकाल होने पर सिद्धार्थ राजा अपने सेवकों को बुलाकर कहता है-हे महानुभावो ! आज उत्सव का दिन है इसलिए जाओ बाहर की उपस्थानशाला-बैठक को साफ कराओ, सुगंधवाले जल का छिड़काव कराओ, गोवर आदि से लिपाओ, पंचवर्णीय सुगंधवाले पुष्पों से सुगंधित कराओ तथा सुलगते हुए कृष्णागुरु, कुन्दरुष्क, तुरुष्क आदि उत्तम प्रकारके धूप से मघमघायमान् करो, यह सब कार्य तुम स्वयं करो और दूसरों से कराओ तथा शीघ्र ही वापिस आकर आज्ञापालन की खबर दो। उन आज्ञाकारी राजपुरुषोंने विनययुक्त हाथ जोड़कर राजा की आज्ञा सुनी और उसे स्वीकार कर वहाँ से चले गये। थोड़ी ही देर में उन्होंने राजाज्ञा के अनुसार सर्व कार्य कर के राजा के पास वापिस आकर निवेदन कर दिया।

सिद्धार्थ राजा का दैनिक कार्यक्रम।

इधर सूर्योदय के समय सरोवरों में कमल विकसित होने लगे, रात्रि में कृष्ण मृगों के निद्रा से मिचे हुए नेत्र खुलने लगे, लाल अशोक वृक्ष की कान्तिसमूह, फूले हुए केसू के पुष्प, तोते के मुख, चणोटी-गुंजा के अर्ध भाग, कबूतर के पैर, क्रोधित कोकिल के नेत्र, जासूद के पुष्प, जातिवान् हिंगुल के पुंज तुल्य, वन्धुक लाल पुष्प के समान रक्तवर्णवाला प्रभातसमय हुआ। जगत्‌भर में कुंकुम समान लालिमा छागई, दिशायें

प्रकाशमान् हो गई, जाज्वल्यमान् सूर्य की हजारों किरणों से अन्धकार दूर हुआ, उस वक्त सिद्धार्थ राजा अपनी शय्या से उठकर व्यायामशाला में गया। वहाँ पर अनेक प्रकार के मल्लयुद्धादि के व्यायाम कर के जब राजा परिश्रमित हो गया, अर्थात् जब वह अनेकविध व्यायाम के करने से थक गया तब सौ औषधियों से बनाये हुए, या सौ द्रव्य खर्चने से पैदा हुए शतपक्व तेल से तथा हजार औषधियों या हजार मूल्य लगने से उत्पन्न हुए सहस्र पक्व तेल से अपने शरीर में मर्दन कराने लगा, जो मर्दन अत्यन्त गुणकारी, रस, रुधिर धातुओं की वृद्धि करनेवाला, क्षुधा अग्नि को दीप्त करनेवाला, बल, मांस, उन्माद को बढ़ानेवाला, कामोद्दीपक, पुष्टिकारक तथा सर्व इंद्रियों को सुखदायक था। वे मर्दन करनेवाले भी संपूर्ण अंगुलियों सहित सुकुमार हाथ पैरवाले, मर्दन करने में प्रवीण और अन्य मर्दन करनेवालों से विशेषज्ञ, बुद्धिमान्, तथा परिश्रम को जीतनेवाले थे। उन मनुष्योंने अस्थि, मांस, त्वचा, रोम इन चारों को सुखदायक हो ऐसा मर्दन किया। इसके बाद सिद्धार्थ राजा व्यायामशाला से निकल कर मोतियों से व्याप्त गवाक्षवाले, अनेक प्रकार के चंद्र कान्तादि, तथा वैडूर्यादि रत्नों से जड़े हुए आँगनवाले मज्जन घर में प्रवेश करता है। मज्जन घर में जाकर वहाँ पर नाना प्रकार के मणि रत्नजड़ित स्नानपीठ पर बैठता है और वहा पर उसने अनेक पुष्पों के रस सहित, चंदन, कर्पूर, कस्तूरीयुक्त पवित्र निर्मल कवोष्ण जल से कल्याणकारक स्नानविधि से स्नान किया। तदनन्तर उसने पक्ष्मयुक्त सुकुमार, केशर, चंदन, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों से वासित वस्त्र से शरीर को पोंछ कर, फिर प्रधान

वस्त्र धारण किये, गोशीर्षचंदन का विलेपन किया, पवित्र पुष्पमालायें पहनीं, केशर आदि का तिलक लगाया। मणि, रत्न और सुवर्ण के बने हुए आभूषण पहने, अठारह, नव, तीन और एक लड़ी के हार गले में धारण किये। कीमती हीरों और मणियों से जड़े हुए मोतियों के लम्बे २ फुंदो सहित कमर में कटिभूषण पहना। हीरे माणिक्यादि के कंठे पहने, अंगुलियों में अंगूठी आदि पहनीं, और अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए बहुमूल्यवान् जड़ाउ कड़े हाथों में तथा भुजाओं के आभूषण भुजाओं में पहने। इसीप्रकार कीमती कुंडलों से राजा का मुखमंडल शोभता है, मुकुट से मस्तक दीपता है, अंगूठियों से अंगुलियाँ पीली हो गई हैं, बहुमूल्य अत्यन्त उत्तम वस्त्र का उत्तरासन किया है, नाना प्रकार के रत्न और मणियों से जड़ा हुआ सुवर्ण का चतुर कारीगर द्वारा बना हुआ वीरतासूचक वीरवलय भुजा में धारण किया है जिस के धारण करने से वह वीर पुरुष सिद्धार्थ अन्य किसी से जीता न जा सकता था। अधिक क्या वर्णन किया जाय? जिस प्रकार कल्पवृक्ष पुष्पपत्तों से अलंकृत और विभूषित होता है वैसे ही सिद्धार्थ राजा भी आभूषणों से अलंकृत और वस्त्रों से विभूषित था, कोरंट वृक्ष के श्वेत पुष्पों की माला से सुशोभित छत्र मस्तक पर धारण किये हुए था, अति उज्वल चमर ढुल रहे थे, चारों तरफ लोग राजा की जय जयकार कर रहे थे। इस प्रकार सब तरह से अलंकृत हो कर अनेक दंडनायक, गणनायक, राजेश्वर, सामन्त, महासामन्त, मंडलिक, मंत्री, महामंत्री, सेठ, सार्थवाह, अंगरक्षक, पुरोहित, दंड-धर, धनुषधर, खड्गधर, छत्रधारी, चँवरधारी, ताम्बूलधारी, शय्यापालक, गजपालक, अश्वपालक, अंगमर्दक,

आरक्षक और सधिपालक इत्यादि के साथ मज्जन घर से निकलता हुआ धवल महामेघ से निकलते हुए नक्षत्र तारागणों में चद्र के समान लोकप्रिय, नरवृषभ, नरों में सिंह सदृश वह सिद्धार्थ राजा राज्यलक्ष्मी से सुशोभित होकर सभामडप में आकर पूर्वदिशा के सन्मुख सिंहासन पर बैठता है। वहीं पर इशान कौन में वस्त्र से ढके हुए सरसों के उपचार से मगलिक किये हुए आठ भद्रासन रखवाये और रत्नजड़ित, बहुमूल्यवान्, दर्शनीय, प्रधान पत्तन में बना हुआ, अत्यन्त स्निग्ध, कोमल उत्तम वस्त्र का एक पर्दा ऐसे स्थान पर बँधवाया जो राजा के सिंहासन से अति दूर भी न था और न ही अति नजदीक था। वह पर्दा–जिसे यवनिका या कनात भी कहते हैं मृग, वृक, रोक्ष, वृषभ, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, कस्तूरिया मृग, अष्टापद, सिंह, चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता इत्यादिके चित्रों से सुशोभित था। उस पर्दे के अन्दर त्रिशला रानी के बैठने के लिए मणि रत्नजड़ित, कोमल, अग को सुखकारी स्पर्शवाले मखमल के बने हुए और उपर से श्वेत वस्त्र से आच्छादित एक भद्रासन को रखवाया।

स्वप्नपाठकों का राजसभा में आगमन

अब सिद्धार्थ राजाने कौटुबिक अर्थात् अपने आज्ञाकारी राजपुरुषों को बुलवाया और उनसे कहा–हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र जाकर अष्टाग निमित्तशास्त्र के सूत्रार्थ को जाननेवाले स्वप्नपाठकों को बुला कर लाओ। ज्योतिषशास्त्र के आठ अग निम्न प्रकार हैं—

अंगं स्वप्नं स्वरं चैव, भौमं व्यंजनलक्षणे । उत्पातमंतरिक्षं च, निमित्तं स्मृतमष्टधा ॥ १ ॥

अर्थः—अंग के स्फुरण का परिज्ञान, उत्तम, मध्यम और जघन्य स्वप्नों के अर्थ का ज्ञान, दुर्गादि पशु-पक्षियों के स्वर का बोध, भूकंपादि पृथ्वी सम्बन्धी परिज्ञान, शरीर में जो मसे तिलादि व्यंजन होते हैं तत्सम्बन्धी ज्ञान, हाथ पैरों की रेखाओं सम्बन्धी सामुद्रिक लक्षण ज्ञान, सातवां उत्पात एवं उल्कापात–अर्थात् तारादि टूटने का परिज्ञान और आठवाँ अंतरीक्ष–ग्रहों के उदय अस्त से शुभाशुभ घटनाओं का परिज्ञान । इन अष्टांग निमित्त के पारगामी, विविध शास्रों में निपुण स्वप्नलक्षण पाठकों को बुलाने की आज्ञा दी । इस आज्ञा को सुन कर वे कौटुम्बिक पुरुष हर्षित और संतोष को प्राप्त होकर विनीतभाव से राजाज्ञा को सिरोधार्य कर वहाँ से निकल कर क्षत्रियकुण्ड नगर के मध्यम में होकर स्वप्नलक्षण पाठकों के घर जाते हैं । वहाँ जाकर स्वप्नलक्षणपाठकों से कहते हैं—हे देवानुप्रियो ! आप को सिद्धार्थ राजाने बुलवाया है । स्वप्नलक्षणपाठक भी राजपुरुषों के मुख से ऐसा सुन कर अत्यन्त हर्षित और संतोषित हुये । उन्होंने स्नान किया, देवपूजा की, निर्मल वस्त्र पहने, मस्तक पर तिलक, सर्षव, दूब और अक्षतादि मांगलिक वस्तुयें धारण कीं । दुःस्वप्नादि को निवारण करने के लिए अपने मंगल किये, राजसभा में प्रवेश करने योग्य स्वर्णादि के बहुमूल्यवान् आभूषण धारण किये और क्षत्रियकुण्ड नगर के मध्य में होकर सब के सब राजसभा के द्वार पर एकत्रित हुए । वहाँ पर सबने मिल कर अपने में से किसी एक को अग्रेसर बनाया और सब उसके अनु-

यायी बने, क्यों कि कहा भी है—

सर्वेपि यत्र नेतारः, सर्वे पंडितमानिन । सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति ॥ १ ॥

अर्थात्—जहाँ पर सब ही अग्रेसर हों, सब ही अपने आपको पंडित मानते हों, सब ही महत्व चाहते हों वह समुदाय नष्ट होजाता है। इस बात पर यहाँ एक दृष्टान्त देते हैं-एक समय परदेश से एक पाँचसौ सुभटों का समुदाय नौकरी करने के लिये एक राजसभा में आया। वे पाँचसौ ही अभिमानी थे, बड़े छोटे का व्यवहार एक भी आपस में न करते थे। मंत्री की सलाह से उनकी परीक्षा करने के लिए राजाने रात्रि के समय उनके पास एक शय्या भेजी, परन्तु वे तो सभी अपने आपको बड़ा समझते थे इस लिए आपस में क्लेश करने लगे, अन्त में फैसला हुआ कि उस शय्या पर कोई भी न सोवे, अतः उसे बीच में रख कर वे चारों ओर उसकी तरफ पैर कर के सो गये। प्रातःकाल राजाने उनकी चेष्टायें जानने के लिए छोड़े हुए गुप्त पुरुष के द्वारा समाचार सुन कर उन्हें यह समझ कर कि ये युद्धादि में किसी के आज्ञाकारी नहीं रह सकते अपमानित कर वहाँ से निकाल दिया। इस लिए स्वप्नपाठक राजद्वार पर एकमत होकर सभामंडप में सिद्धार्थ राजा के पास आये। वहाँ आकर हाथ जोड़ कर-हे राजन्! आपकी देश भर में जय हो, विदेश में विजय हो इस प्रकार जय और विजय से राजा को बधाया और आशीर्वाद दिया—

दीर्घायुर्भव, वृत्तवान् भव, भव श्रीमान्, यशस्वी भव, प्रज्ञावान् भव, भूरिसत्वकरुणादानैकशौण्डो भव,

भोगाढ्यो भव, भाग्यवान् भव, महासौभाग्यशाली भव, प्रौढश्रीर्भव, कीर्तिमान् भव, सदा विश्वोपजीवीभव ।१।

अर्थः—हे राजन् ! आप दीर्घायु होवें, वृत्तवान्–यमनियमादि व्रत धारण करनेवाले होवें, लक्ष्मीमान् होवें, यशस्वी, बुद्धिमान् होवें, बहुत से प्राणियों की रक्षा करनेवाले, महादानी, भोगसंपदावाले, भाग्यवान् होवें, सौभाग्यशाली होवें, उत्कृष्ट लक्ष्मीवाले, कीर्तिमान और सदाकाल विश्व के समस्त प्राणियों का पालन-पोषण करनेवाले होवें। इसी प्रकार आशीर्वाद में एक श्लोक और कहा—

कल्याणमस्तु शिवमस्तु धनागमोऽस्तु, दीर्घायुरस्तु सुतजन्म समृद्धिरस्तु ।
वैरिक्षयोऽस्तु नरनाथ ! सदाजयोऽस्तु युष्मत्कुले च सततं जिनभक्तिरस्तु ॥ १ ॥

अर्थः—हे राजन् ! हे नरनाथ ! आप का कल्याण हो, आप का श्रेय हो, आप के घर धनागमन हो, आप दीर्घ आयुवाले हों, आपके घर पुत्र का जन्म हो, आप समृद्धिशाली हों, आपके दुश्मनों का नाश हो, आप सदाकाल जयवान् रहें, आप के कुल में निरन्तर जिनेश्वर देव की भक्ति कायम रहे।

। तीसरा व्याख्यान समाप्त हुआ ।

॥ चौथा व्याख्यान ॥

फिर सिद्धार्थ राजाने उन स्वप्नपाठकों को उनके गुणों की स्तुति कर के नमस्कार किया। पुष्पादि से उन्हें पूजा, फल, वस्त्रादि के दान से उनका आदर किया और खड़ा होने आदि से उनका सम्मान किया। अब वे पहले से बिछाये हुए आसनों पर बैठ गये। फिर सिद्धार्थ राजा त्रिशला क्षत्रियाणी को पड़दे में रखकर पुष्प तथा नारियलादि फलों को हाथ में लेकर (क्योंकि खाली हाथ से देव गुरु राजा तथा विशेष कर के निमित्तिये के सन्मुख न जाना चाहिये, फल से ही फल की प्राप्ति होती है) स्वप्नपाठकों को विशेष विनय से यों कहने लगा—हे देवानुप्रियो! आज त्रिशला क्षत्रियाणी वैसी शय्या में सोती जागती अर्थात् अल्प निद्रावस्था में इस प्रकार के गज, वृषभ आदि श्रेष्ठ चौदह स्वप्नों को देख कर जाग उठी। हे देवानुप्रियो! उन श्रेष्ठ चौदह महास्वप्नों को मैं विचारता हूँ कि वे कैसे कल्याणकारी और वृत्तिविशेष फल देनेवाले होंगे? वे स्वप्नपाठक सिद्धार्थ राजा से उन स्वप्नों को सुनकर, जानकर, हर्ष को प्राप्त हुए, संतोष को प्राप्त हुए, यावत् हर्ष से पूर्ण हृदयवाले हो कर उन्होंने उन स्वप्नों को अच्छी तरह मन में धारण किया। मन में धारण कर के वे उन स्वप्नों का अर्थ विचारने लगे। अर्थ का विचार कर के परस्पर विचार करने लगे और परस्पर विचार कर के अपनी बुद्धि से अर्थ को जान कर, परस्पर अर्थ को धारण कर के, शंकावाली बातों को आपस में पूछताछ कर, अर्थ को

निश्चित कर के सिद्धार्थ राजा के पास स्वप्नशास्त्रों को उच्चारण करते हुए यों कहने लगेः—

स्वप्नों का फलादेस ।

हे राजन्! अनुभव किया हुआ, सुना हुआ, देखा हुआ, प्रकृति के विकार से उत्पन्न हुआ, धर्मकार्य के प्रभाव से, पाप के उदय से, चिन्ता की परम्परा से, देवता के उपदेश से और स्वभाव से उत्पन्न हुआ, इस प्रकार मनुष्यों को नव तरह के स्वप्न आते हैं। पहेले ६ प्रकार के स्वप्नों में से देखा हुआ स्वप्न निरर्थक जाता है और बाद के तीन प्रकार के देखे हुए स्वप्न सार्थक होते हैं। रात्रि के चारों पहरों में देखा हुआ स्वप्न बारह, छ, तीन तथा एक मास में अनुक्रम से फलदायक होता है। रात्रि की अन्तिम दो घड़ियों में देखा हुआ स्वप्न दश दिन में ही फल देता है। तथा सूर्योदय के समय देखा हुआ स्वप्न निश्चय ही तुरन्त फलदायक होता है। दिन में देखी हुई स्वप्न की श्रेणी एवं आधि, व्याधि तथा मळमूत्र की हाजत से उत्पन्न हुआ स्वप्न व्यर्थ समझना चाहिये। धर्म में अनुरक्त, समधातुवाला, स्थिर चित्तवाला, जितेन्द्रिय और दयालु मनुष्य प्रायः स्वप्न से अपने अर्थ को सिद्ध करता है। यदि खराब स्वप्न देखा हो तो किसी को सुनाना नहीं चाहिये। अच्छा स्वप्न गुरु आदि को सुनाना और यदि गुरु आदि का योग न बने तो गाय के कान में ही सुनाना उचित है। उत्तम स्वप्न देख कर बुद्धिवान् को चाहिये कि वह निद्रा न लेवे, सोजाने से उसका फल नष्ट होता है। यदि अधिक रात्रि हो तो प्रभु के गुनगान द्वारा जागृत रह कर शेष रात्रि व्यतीत करनी चाहिये।

खराब स्वप्न दखा हो तो फिर सोजाना चाहिये और उसे किसी के आगे न कहना चाहिये। ऐसा करने से उसका खराब फल नहीं होता। जो मनुष्य प्रथम खराब स्वप्न देख कर फिर अच्छा स्वप्न देखता है उसे पिछले अच्छे स्वप्न का फल होता है। ऐसे ही उल्टा समझना चाहिये। यदि स्वप्न में मनुष्य हाथी, घोड़ा, सिंह, वृषभ और सिंहनी से युक्त अपने आप को रथ में बैठे जाता देखे वह राजा होता है। स्वप्न में घोड़ा, हाथी, वाहन, आसन, घर और निवसन(वस्त्र) आदि का अपहरण देखता है वह राजा की ओर से शंकित -भयवाला, शोक करनेवाला, बन्धुओं का विरोध करनेवाला और धन की हानि करनेवाला होता है। मनुष्य स्वप्न में सूर्य और चन्द्रमा के बिम्बको संपूर्ण निगल जाये वह दरिद्री होते हुए भी सुवर्ण और समुद्र सहित पृथ्वी का मालिक बनता है। प्रहरण(शस्त्र), आभूषण, मणि, मोति, सोना, चाँदी और धातुओं का हरण दखे तो वह धन एवं मान का नाशकारक होता है तथा भयंकर मृत्यु करनेवाला होता है। सुफेद हाथी पर बैठा हुआ नदी के किनारे चावलों का भोजन करता अपने को दखे तो वह जातिहीन होने पर भी धर्मधन को ग्रहण करता हुआ समस्त पृथ्वी को भोगता है। अपनी स्त्री का हरण दखने से धन नाश होता है। पराभव से क्लेश हो और गोत्रीय स्त्री का हरण या पराभव देखे तो बन्धुओं का वध बन्धन हो। सुफेद सर्प से जो मनुष्य अपनी दाहिनी भुजा को डसा दखे वह पाँच दिन में हजार सुवर्ण मुहरें प्राप्त करता है। जो अपनी शय्या या जूतों का हरण देखे उस की स्त्री मर जाती है, और उस के शरीर को पीड़ा होती है। जो मनुष्य स्वप्न में मनुष्य के

मस्तक तथा हाथ पैर का भक्षण करता है उसे अनुक्रम से राज्य, हजार सुवर्ण मुहरें तथा पाँच सौ सुवर्ण मुहरें प्राप्त होती हैं। जो मनुष्य दरवाजे की अर्गला का, शय्या का, हिंडोले का, पादुका का तथा घर का भंग देखता है उसकी स्त्री का नाश होता है। जो मनुष्य तलाव, समुद्र, जल से भरी नदी तथा मित्र की मृत्यु देखता है उसको विना निमित्त धन की प्राप्ति होती है। जो स्वप्न में गोबर मिश्रित गडुल तथा दवा सहित तपा हुआ पानी पीता है वह मनुष्य निश्चय ही अतिसार रोग से मृत्यु पाता है। जो मनुष्य स्वप्न में देवता की प्रतिमा की यात्रा, स्नान, भेट तथा पूजा आदि करता है उसे सब तरफ से वृद्धि होती है। जो मनुष्य अपने हृदयरूप तलाव में कमल उत्पन्न हुए देखता है वह कुष्टी होकर तुरन्त मृत्यु प्राप्त करता है। जो मनुष्य स्वप्न में मनोहर घी प्राप्त करता है उसे निर्मल यश की प्राप्ति होती है। तथा क्षीरान्न के साथ घी का खाना देखे तो भी प्रशस्त है। स्वप्न में हसे तो शोक होता है। नाचने से बन्धन और पढ़ने से क्लेश होता है। गाय, घोड़ा, राजा, हाथी और देव सिवाय सब ही काले रंग के स्वप्न खराब समझना चाहिये, तथा कपास और नमक के सिवा सुफेद रंग के सब ही स्वप्न श्रेष्ठ समझना चाहिये। जो स्वप्न शुभ या अशुभ अपने लिए देखा हो उसका शुभाशुभ फल अपने लिए और जो दूसरों के लिए देखा हो उसका शुभाशुभ फल दूसरे के लिए होता है। यदि खराब स्वप्न देखा हो तो देव गुरु का पूजन करना उचित है तथा यथाशक्ति तप दान करना योग्य है कि जिस से धर्म के प्रभाव से कुस्वप्न भी सुस्वप्न का फल दे देता है। इस तरह हे देवानुप्रिय ! हे सिद्धार्थ राजन् ! हमारे

स्वप्नशास्त्रों में बैतालीस स्वप्न साधारण फल देनेवाले और तीस महास्वप्न उत्तम फल देनेवाले हैं। इस प्रकार सब मिलाकर बहत्तर स्वप्न कहे हैं। उन में भी हे देवानुप्रिय ! अरिहन्त की माता अथवा चक्रवर्ती की माता अरिहन्त या चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर इन तीस महास्वप्नों में से ऐसे चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती है। वे चौदह महास्वप्न गज, वृषभादि। वासुदेव की माता वासुदेव के गर्भ में आने पर इन्ही चौदह महास्वप्नों में से केवल सात स्वप्न देखती है। बलदेव की माता बलदेव के गर्भ में आने पर इन्ही चौदह महास्वप्नों में से मात्र चार स्वप्न देखती है और मण्डलिक की माता मंडलिक के गर्भ में आने पर इन्ही चौदह महास्वप्नों में से केवल एक स्वप्न देखती है। इस लिए हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणीने तो ये चौदह ही प्रशस्त महास्वप्न देखे हैं। हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणीने यावत् मंगलकारक स्वप्न देखे हैं। इससे हे देवानुप्रिय ! आप को अर्थ का लाभ, भोग का लाभ, पुत्र का लाभ, सुख का लाभ और राज्य का लाभ होगा। इस तरह हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी नव मास संपूर्ण होने पर साढ़े सात रात्रिदिन व्यतीत होने पर आपके कुल में ध्वज समान, दीपक समान, मुकुट समान, पर्वत समान, तिलक समान, कुल की कीर्ति करनेवाला, कुल का निर्वाह करनेवाला, कुल में सूर्य समान, कुल का आधाररूप, कुल का यश करनेवाला, कुल में वृक्ष के समान, कुल की परम्परा को बढ़ानेवाला, सुकोमल हाथ पैर के तलियोंवाला, परिपूर्ण पंचेन्द्रिय युक्त शरीरवाला, लक्षण और व्यंजनों के गुणों से युक्त, मान उन्मान के प्रमाण से परिपूर्ण और अच्छी तरह प्रगट हुए अवयवों

से सुन्दर अंगवाला, चंद्र समान मनोहर आकृतिवाला, प्रिय, प्रियदर्शनी और सुन्दर रूपवाला; ऐसे पुत्र को जन्म देगी। तथा वह पुत्र बाल्यावस्था को त्याग कर परिपक्व विज्ञानवाला होकर यौवनावस्था के प्राप्त होने पर दानादि देने में शूर, संग्राम में वीर, परराज्य पर आक्रमण करने में समर्थ, अधिक विस्तार युक्त सेना तथा वाहनवाला और चारों दिशाओं का स्वामी चक्रवर्ती राज्यपति राजा होगा या तीन लोक का नायक धर्मश्रेष्ठ, चार गति का नाश करनेवाला धर्मचक्रवर्ती जिनेश्वर होगा।

जिनत्व प्राप्त होने पर चौदह स्वप्नों का जुदा जुदा फल नीचे मुजब समजना चाहिये। चार दाँतवाला हाथी देखने से वह चार प्रकार का धर्म कथन करेगा। वृषभ को देखने से वह इस भरतक्षेत्र में बोधिरूप बीज को बोवेगा। सिंह के देखने से वह कामदेवादिक जो उन्मत्त हाथी हैं, जिन से भव्यजनरूपी वन भंग होता है उन्हें मर्दन कर उसका रक्षण करेगा। लक्ष्मी देखने से वार्षिक दान देकर तीर्थंकर पद की लक्ष्मी को भोगेगा। माला देखने से तीन भवन को मस्तक में धारन करने योग्य होगा। चन्द्रमा देखने से भव्य समूहरूप चंद्रविकासी कमलों को विकसित करेगा। सूर्य देखने से कान्ति के मंडल से भूषित होगा। ध्वज को देखने से वह धर्मध्वज से विभूषित होगा। कलश देखने से धर्मरूपी महल के शिखर पर रहेगा। पद्म सरोवर देखने से देवताओं द्वारा संचारित किये हुए कमलों पर वह विचरेगा। समुद्र को देखने से वह केवलज्ञानरूप रत्नाकर के स्थान समान होगा। देव विमान देखने से वह वैमानिक देवताओं का पूजनीय होगा। रत्नराशि

देखने से वह रत्नों के गढ़ों से विभूषित होगा। निर्धूम अग्नि देखने से वह भव्यजनरूप सुवर्ण को शुद्ध करनेवाला होगा। चौदह स्वप्नों का एकत्रित फलरूप वह चौदह राजलोकात्मक लोक के अग्र भाग पर रहनेवाला होगा। इसलिए हे देवानुप्रिय! त्रिशला क्षत्रियाणीने अत्यन्त उदार और मंगलकारक स्वप्न देखे हैं।

सिद्धार्थ राजाने स्वप्नपाठकों से यह अर्थ सुन कर और धारण कर के हर्षित हो, संतोषित हो, यावत् हर्ष से पूर्ण हृदयवाला हो कर दोनों हाथों में अंजलि कर के स्वप्नपाठकों से यों कहा–हे देवानुप्रिय पाठको! ऐसा ही है, हे पाठको! यह यथार्थ है, वांछित है। हे पाठको! तुम्हारे मुख से निकलते ही मैंने इन वचनों को ग्रहण कर लिया है। हे पाठको! यह वांछित होने से मैंने वारंवार अंगीकार किया है। यह अर्थ सच्चा है। जिस प्रकार आप कहते हैं वैसे ही है। यों कह कर सिद्धार्थ राजा उस अर्थ को भली प्रकार धारण करता है, और धारण कर के उन स्वप्नपाठकों को उसने विपुल शाली आदि उत्तम भोजन की वस्तुओं से, श्रेष्ठ पुष्पों से, सुगंधित द्रव्यों से, पुष्पों की गुथन की हुई मालाओं से और मुकुटादि आभूषणों से सत्कारित और विनययुक्त वचनों से सन्मानित किया एवं जीवन पर्यन्त निर्वाह चल सके इतना प्रीतिदान देकर उन्हें विदाय किया।

अब सिद्धार्थ राजा सिंहासन पर से उठकर जहाँ पर त्रिशला क्षत्रियाणी कनात के अंदर बैठी थी वहाँ पर आया और आकर उससे कहने लगा कि–हे प्रिये! इस प्रकार स्वप्नशास्त्र में बैतालीस साधारण स्वप्न और तीस महास्वप्न कहे हैं। उन तीस महास्वप्नों में से तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती की माता तीर्थंकर अथवा चक्र

ऋतु का क्या दोष है ? ऊँचे वृक्ष को फल यदि ठिंगना मनुष्य नहीं तोड़ सकता तो उसमें वृक्ष का क्या दोष है ? इस लिए हे प्रभो ! यदि मैं अपने इच्छित को नहीं कर सकती तो इसमें आपका क्या दोष है ? यह तो मेरे ही कर्म का दोष है; क्यों कि सूर्य के प्रकाश में भी यदि उल्लू नहीं देख सकता तो इस में सूर्य का क्या दोष है ? इस लिए अब मुझे मरण का ही शरण है, निष्फल जीवन जीने से क्या लाभ ? इस प्रकार त्रिशला के विलाप को सुन कर तमाम सखियाँ और सकल परिवार रुदन करने लगा। अरे यह क्या होगया ! निष्कारण ही दैव दुश्मन बन गया ! हे कुलदेवियो ! आप इस समय कहाँ चली गईं ! आप भी उदास होकर क्यों बैठी हैं ? ऐसे बोलती हुई कुल की विचक्षण वृद्धा स्त्रियाँ शान्ति, मंगल, उपचार तथा माननायें मानने लगीं। ज्योतिषियों को बुला कर पूछने लगीं, तथा अति ऊंचे स्वर से कोई बोल न सके ऐसे इसारे करने लगीं। उत्तम बुद्धिवाला राजा सिद्धार्थ भी लोगों सहित शोकातुर हो गया। एवं समस्त मंत्री लोग भी कर्तव्यविमूढ बन गये।

उस समय सिद्धार्थ राज का राजभवन कैसा हो गया था सो सूत्रकार स्वयं कथन करते हैं। सिद्धार्थ राजा का भवन मृदंग, तंत्री, वीणा और नाटक के पात्रों से रहित होगया था। विमनस्क होगया था। श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु गर्भ में रहे हुये पूर्वोक्त वृत्तान्त अवधिज्ञान से जान कर विचारने लगे कि क्या किया जाय ? मोह की कितनी प्रबल गति है ? दुष् धातु को गुण करने के समान मेरा गुण किया हुआ भी दोष ही बन गया। मैंने तो माता के सुख के लिए ऐसा किया था परन्तु यह उलटा उस के खेद के लिए हो गया। यह

भावी कलिकाल की सूचना करनेवाला लक्षण है। जिस तरह नारियल के पानी में डाला हुआ कपूर मृत्यु के लिए होता है वैसे ही इस पचमकाल में गुण भी दोष को करनेवाला होगा। इस प्रकार श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभुने माता को उत्पन्न हुआ अपने सम्बन्ध में इच्छित, प्रार्थित और मन में रहा हुआ सकल्प अवधिज्ञान से जान कर अपने आप को एक देश से हिलाया। अब गर्भ की कुशलता जान कर त्रिशला क्षत्रियाणी हर्षित तथा सतुष्ट हो कर बोल उठी–निश्चय ही मेरा गर्भ हरन नहीं किया गया, मरा नहीं, चलायमान् नहीं हुआ और गला भी नहीं है, परन्तु यह पहले हलताचलता नहीं था, अब हलनेचलने लगा है। यों कह कर हर्षित हुई, प्रसन्न हुई, यावत् हर्ष से पूर्ण हृदयवाली त्रिशला क्षत्रियाणी विलास करने लगी। गर्भ की कुशलता मालूम होने से त्रिशला क्षत्रियाणी हर्ष से उल्लसित नेत्रवाली, स्मेर कपोलवाली, प्रफुल्लित मुखकमलवाली तथा रोमाच कचुकवाली होकर कहने लगी–मेरे गर्भ को कल्याण है। धिक्कार है! मैंने अति मोह युक्त मति से कुविकल्प किये! अभी मेरे भाग्य विद्यमान हैं, मैं तीन भुवन में मान्य हू और मेरा जीवन धन्य एव प्रशसनीय है। मेरा जन्म कृतार्थ है। श्री जिनेश्वर देवकी मुझ पर पूर्ण कृपा है, तथा गोत्रदेवियोंने भी मुझ पर कृपा की है और मैंने जो श्री जिनधर्मरूप कल्पवृक्ष की आज तक आराधना की है वह आज सफल हुई है। इस प्रकार अत्यन्त हर्षयुक्त चित्तवाली त्रिशला देवी को देख कर वृद्ध स्त्रियों के मुखकमल से जय जय नन्दा इत्यादि आशीस के शब्द निकलने लगे, कुलागनाएं हर्षपूर्वक मनोहर धवल मगल गाने लगीं, ध्वज, पताकायें उड़ने लगीं, मोतियों के स्वस्तिक पूरे जाने लगे, समस्त

राजकुल आनन्दमय हो गया, वाद्य और गीतों एवं नाटक से उस समय राजकुल देवलोक के समान शोभायमान्
हो गया। करोड़ो ही धन के वधामणे सिद्धार्थ राजाने ग्रहण किने और करोड़ों ही गुणा धन उन्हें वापिस
दिया। इस प्रकार सिद्धार्थ राजा अत्यन्त हर्षयुक्त हो कल्पवृक्ष के समान शोभने लगा।

श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु गर्भ में ही रहे हुए साढ़े छह महीने बीतने पर इस प्रकार का अभिग्रह
करते हैं। जब तक मेरे माता पिता जीवित रहेंगे तब तक मैं दीक्षा ग्रहण न करूँगा। गर्भ में होते हुए जब माता
का मुझ पर इतना स्नेह है तब फिर जब मेरा जन्म होगा तब तो न जाने कैसा स्नेह होगा ? यह समझ कर
प्रभु ने पूर्वोक्त अभिग्रह धारण किया और दूसरों को भी मातपिता की भक्ति करने का मार्ग दिखलाया। कहा
भी है कि–पशु जब तक माता का दूध पीते हैं तब तक ही माता पर स्नेह रखते हैं, अधम मनुष्य जब तक स्त्री
मिले तब तक माता पर मातापन का स्नेह रखते हैं। मध्यम मनुष्य जब तक माता घर का कामकाज करती
है तब तक माता पर मातातया स्नेह रखते हैं, परन्तु उत्तम पुरुष जीवन पर्यन्त माता को तीर्थ समान समझ
कर उस पर स्नेह रखते हैं।

अब त्रिशला क्षत्रियाणीने स्नान किया, पूजन किया तथा कौतुक मंगल किया और सर्व प्रकार के
आभूषणों से वह विभूषित हुई। उस गर्भ को वह त्रिशला क्षत्रियाणी न अति ठंडे, न अति गर्म, न अति तीखे,
न अति कडवे, न अति कषायले, न अति खट्टे, न अति मीठे, न अति चिकने, न अति रूखे, न अति आर्द्र,

न अति सूके, सर्व ऋतु में सुखकारी इस प्रकार के भोजन, आच्छादन, गन्ध और पुष्पमाला आदि से पोषण करने लगी। क्यों कि गर्भ के लिये अति शीतादि पदार्थ हानिकारक होते हैं। उन में कितने एक वायु करनेवाले, कितने एक पित्त करनेवाले और कितने एक कफ करनेवाले होते हैं। वाग्भट्ट नामक वैद्यक ग्रन्थ में भी कहा है कि-वायुवाले पदार्थ खाने से गर्भ कुबड़ा, अन्धा, जड़ तथा वामनरूप होता है। पित्तवाले पदार्थ भक्षण करने से गर्भ स्खलित, पीला तथा चित्रीवाला होता है। कफवाले पदार्थ भक्षण करने से पाण्डु रोगवाला होता है। अति क्षारवाला भोजन नेत्र को हणता है, अति ठंढा भोजन पवन को कोपायमान करता है। अति उष्ण बल को हरता है, अति कामविकार जीवित को हरता है। मैथुन, यान, वाहन, मार्गगमन, स्खलना पाना, गिर पड़ना, पीड़ा का होना, अति दौड़ना, किसी के साथ टकराना, विषम स्थान पर सोना, विषम जगह पर बैठना, उपवास करना, वेग का विघात होना, रूखा तीखा और कड़वा भोजन करना, अति राग, अति शोक करना, अति खारी वस्तुओं का सेवन करना, अतिसार, वमन, जुलाब, हुचकी लेना और अजीर्ण आदि से गर्भ अपने बन्धन से मुक्त हो जाता है। किस ऋतु में कौन सी वस्तु खाने में गुणकारी होती है सो बतलाते हैं-वर्षा ऋतु में नमक खाना अमृत के समान है, शरद ऋतु में पानी अमृत तुल्य, हेमन्त में गोदुध अमृत तुल्य, शिशिर में खट्टा भोजन अमृत तुल्य है। वसन्त में घी खाना अमृत तुल्य है। तथा अन्तिम ऋतु में गुड़ का भोजन अमृत समान है। अब त्रिशला क्षत्रियाणी रोग, शोक, मोह, भय और परिश्रमादि रहित सुख से रहती

है। क्यों कि रोगादि गर्भ को हानिकारक होते हैं। सुश्रुत नामक वैद्यक ग्रन्थ में कहा है कि–यदि गर्भवती स्त्री दिन में निद्रा लेवे तो गर्भ भी निद्रालु या आलसी होता है, अंजन आँजने से गर्भ अंधा होता है, रोने से गर्भ विकृत आँखोंवाला होता है, स्नान तथा लेपन से दुःशील होता है, तेल मर्दन से कुष्ट रोगी होता है, नाखून करने से खराब नाखूनवाला होता है। दौड़ने से चंचल स्वभावी, हसने से काले दाँतोंवाला, काले होठवाला, काले तालुवेवाला और काली जीभवाला होता है। बहुत बोलने बकवाद से करनेवाला और अति शब्द सुनने से बहिरा होता है। अलेखन से स्खलित हो और पंखे आदि का अति पवन सेवन करने से उन्मत्त होता है, पूर्वोक्त प्रकार से त्रिशला देवी को कुल की वृद्ध स्त्रियाँ शिक्षा देती हैं। तथा कहती हैं कि–हे देवी! तूं धीरे धीरे चल, धीरे धीरे बोल, क्रोध को त्याग दे, पथ्य वस्तुओं का सेवन कर, नाड़ा ढीला बाँध, खिलखिला कर न हस, खुले आकाश में न बैठ, अतिशय ऊँचे और नीचे न जा। इस प्रकार गर्भ से आलस्यवाली त्रिशला क्षत्रियाणी को शिक्षा देती हैं। त्रिशला क्षत्रियाणी भी गर्भ को हित करनेवाली वस्तुओं का सेवन करती है। आरोग्यवर्धक पथ्य भोजन, सो भी समय पर ही करती है। कोमल शय्या और कोमल आसन सेवन करती है। सुखाकारी मनके अनुकूल विहार भूमि अर्थात् गर्भ हितकर आचरणाओं से गर्भ का पोषण करती है।

गर्भ के प्रभाव से उत्पन्न हुआ उत्तम दोहला भी जिस का पूर्ण हो गया है। त्रिशला क्षत्रियाणी के मन में विचार पैदा हुआ कि मैं सर्व प्राणीयों की हिंसा बन्द कराने का पटह बजाऊं, दान दूं, गुरुजनों की अच्छी

तरह पूजा करूँ, तीर्थंकरों की पूजा रचाऊ, विशेषतया संघ का वात्सल्य करू, सिंहासन पर बैठ कर उत्तम छत्र मस्तक पर धारण कराऊ, उत्तम सफेद चामर अपने आसपास ढुलाऊ, सब पर आज्ञा चलाऊ और राजा लोग आकर मेरे पादपीठ को नमस्कार करें, हाथी के मस्तक पर बैठ कर जब सामने पताकायें फरहा रही हों, वाजिंत्रों के नाद से दिशायें गूज रही हों और आगे जनसमुदाय जय २ शब्द कर रहे हों तब मैं हर्षित हो कर उद्यान की पाप रहित क्रीड़ा करू। सिद्धार्थ राजा ने त्रिशला क्षत्रियाणी के पूर्वोक्त समस्त मनोरथ पूर्ण किये। उस के किसी भी दोहले की अवगणना नहीं की। अब ज्यों गर्भ को बाधा न पहुंचे त्यों स्तंभ आदि का अवलम्बन लेती हुई, सुख से निद्रा करती हुई, उठती हुई, सुखासन पर बैठती हुई, तथा निद्रा विना भी शय्या पर लेटती हुई, जमीन पर विहार करती हुई सुखपूर्वक गर्भ को धारण करती है।

प्रभु महावीर का जन्म।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवन्त श्री महावीर के गर्भ में आये बाद ग्रीष्म ऋतु का पहला महीना, दूसरा पक्ष–चैत्र मास की शुक्लपक्ष की त्रयोदशी के दिन नव मास पूर्ण होने पर तथा सातवीं आधिरात होने पर अर्थात् नव मास और साढ़े सात दिन सम्पूर्ण होने पर त्रिशला माताने पुत्र को जन्म दिया। इस प्रकार सब तीर्थंकरों की गर्भवास स्थिति का समान काल नहीं है। ऋषभदेव प्रभु नव मास और चार दिन गर्भ में रहे, अजितनाथ प्रभु आठ मास पच्चीस दिन गर्भ में रहे, संभवनाथ प्रभु नव मास और छह दिन गर्भ में रहे,

अभिनन्दन स्वामी आठ महीने और अठाईस दिन गर्भ में रहे, सुमतिनाथ प्रभु नव मास और छह दिन गर्भ में रहे, पद्मप्रभ स्वामी नव मास और छह दिन गर्भ में रहे, सुपार्श्वनाथ प्रभु नव मास और उन्तीस दिन गर्भ में रहे, चंद्रप्रभ नव मास और सात दिन गर्भ में रहे, सुविधिनाथ प्रभु आठ मास और छवीस दिन गर्भ में रहे, शीतलनाथ प्रभु नव महीने और छह दिन गर्भ में रहे, श्रेयांसनाथ प्रभु नव महीने और छह दिन गर्भ में रहे, वासुपूज्य स्वामी आठ मास और वीस दिन गर्भ में रहे, विमलनाथ प्रभु आठ मास और इकीस दिन गर्भ में रहे, अनन्तनाथ प्रभु नव महीने और छह दिन गर्भ में रहे, धर्मनाथ प्रभु आठ महीने और छवीस दिन गर्भ में रहे, शान्तिनाथ प्रभु नव मास और छह दिन गर्भ में रहे, कुंथुनाथ प्रभु नव महीने पाँच दिन गर्भ में रहे, अरनाथ प्रभु नव महीने और आठ दिन गर्भ में रहे, मल्लीनाथ प्रभु नव महीने और सात दिन गर्भ में रहे, मुनिसुव्रत स्वामी नव मास और आठ दिन गर्भ में रहे, नमीनाथ प्रभु नव मास और आठ दिन गर्भ में रहे, नेमिनाथ प्रभु नव मास और आठ दिन गर्भ में रहे, पार्श्वनाथ प्रभु नव मास और छह दिन गर्भ में रहे और श्री महावीर प्रभु नव मास साढ़े सात दिन गर्भ में रहे।

उस समय सब ग्रहों के उच्च स्थान में आने पर,—मेषादि राशि में रहे हुये सूर्यादिक ऊंचे समझना, उस में भी दशादि अंशों तक परम उच्च समझना चाहिये। उन का फल सुखी, भोगी, धनवान, स्वामी, मंडलाधिप, राजा और चक्री अनुक्रम से समझना चाहिये। उन में तीन ग्रह उच्च हों तो राजा होता है, पाँच उच्च हों

तो अर्ध चक्री होवे, छह उच्च हों तो चक्रवर्ती और सात ग्रह उच्च हों तो वह तीर्थंकर होता है।

इस प्रकार उच्च चद्रमा का योग आने पर, दिशाओं के सौम्य होने पर, अन्धकारादि से रहित होने पर, क्यों कि प्रभु के जन्म समय सर्वत्र उद्योत होता है। तथा रज, दिग्दाह आदि से रहित होने पर, तथा काक, उल्लू, दुर्गा आदि के जयकारक शकुन होने पर, तथा दक्षिणावर्तवाले और अनुकूल सुगन्धित शीतल सुखावह पृथ्वी को स्पर्श करते हुए, मन्द पवन के चलते हुए तथा जब पृथ्वी पर चारों ओर खेती लहरा रही थी और देश में सर्वत्र सुकाल था अत सुकाल होने से देश के लोग खुशी में मग्न हो कर जब वसन्तोत्सवादि की क्रीडा में लग रहे थे तब अपर रात्रि के समय उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चद्रमा का योग आने पर बाधा रहित त्रिशला क्षत्रियाणीने पीड़ा रहित पुत्र को जन्म दिया।

चौथा व्याख्यान समाप्त हुआ।



पांचवां व्याख्यान ।



महावीर भगवान् का जन्ममहोत्सव ।

जिम ममय भगवान् महावीर का जन्म हुआ, उस ममय इम पवित्र आत्मा के प्रादुर्भाव से केवल क्षत्रीयकुण्डपुर ही नहीं, क्षणभर के लिए समस्त संसार लोकोत्तर प्रकाश से प्रकाशित हो गया था और आकाश मण्डल में दुंदुभी बजने लगी थी। खाम विशेषता तो यह थी कि महा दुःख के भोक्ता नरक के जीवों को भी क्षणमात्र आनन्द प्राप्त हुवा तथा ममस्त पृथ्वी उल्लसित हुई और मर्वत्र आनन्द आनन्द दृष्टिगोचर हो रहा था।

भगवान् का जन्म होते ही सब मे पहले छप्पन दिक्कुमारियों के आसन कम्पायमान हुए, अवधिज्ञान से प्रभु का जन्म अवसर जान कर हर्षित होती हुई यहां पर आकर क्रमशः इम प्रकार भक्ति करने लगीं:—

१. भोगंकरा   २. भोगवती   ३. सुभोगा   ४. भोगमालिनी
५. सुवत्सा   ६. वत्समित्रा   ७. पुष्पमाला   ८. अनिन्दिता

इन आठ दिक्कुमारियोंने अधोलोक से आकर प्रभु को और प्रभु की माता को नमस्कार कर संवर्तक वायु (गोल पवन) द्वारा योजनप्रमाण पृथवी को शुद्ध और सुगन्धित बना कर एक सूतिकागृह (जापा-घर) की रचना की।

१ मेघकरा	२ मेघवती	३ सुमेघा	४ मेघमालिनी
५ तोयधारा	६ विचित्रा	७ वारिषेणा	८ बलाहका

इन आठ दिक्कुमारियों ने ऊर्ध्वलोक से आकर वन्दन किया, तत्पश्चात् पुष्पवृष्टि की।

१ नदोत्तरा	२ नन्दा	३ आनन्दा	४ नन्दवर्धना
५ विजया	६ वैजयन्ती	७ जयन्ती	८ अपराजिता

ये आठ दिक्कुमारियां पूर्व दिशा के रूचक पर्वत से आकर वन्दन विधि कर मुख देखने के लिए सन्मुख शीशा (दर्पण) लेकर खड़ी रहीं।

१ समाहारा	२ सुप्रदत्ता	३ सुप्रबुद्धा	४ यशोधरा
५ लक्ष्मीवती	६ शेषवती	७ चित्रगुप्ता	८ वसुन्धरा

ये आठ दिक्कुमारीयाँ दक्षिण रूचक पर्वत से आकर हाथ में कलश धारण कर भगवन्त और भगवन्त की मातेश्वरी को स्नान कराती हैं।

१ इलादेवी	२ सुरादेवी	३ पृथ्वी	४ पद्मावती
५ एकनासा	६ नवमिका	७ भद्रा	८ सीता

ये आठ दिक्कुमारियां पश्चिम दिशा के रूचक पर्वत से आकर पवन डालने के लिए हाथों में पखे लेकर

सामने खड़ी रहीं ।

१. अलम्बुसा २. मितकेशी ३. पुण्डरीका ४. वारुणी
५. हासा ६. सर्वप्रभा ७. श्रीः ८. ह्रीः

ये आठ दिग्कुमारियाँ उत्तर दिशा के रूचक पर्वत से आकर चामर ढालती हैं।

१. चित्रा २. चित्रकनका ३. शतेरा ४. वसुदामिनी

ये चार दिक्कुमारियाँ हाथों में दीपक धारण कर भगवन्त के आगे खड़ी रहीं।

१. रूपा २. रूपासिका ३. सुरूपा ४. रूपकावती

ये चार दिक्कुमारियाँ रूचक द्वीप के मध्यम दिशा से आकर चार अंगुल बाकी रख शेष नाल को छेद कर पास में खड्डा खोद पृथ्वी के अन्दर रखती हैं और ऊपर रत्नमय चबुतरा बना कर उसके ऊपर दूबघास बोती हैं।

तत्पश्चात् जन्मगृह से पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशा में तीन केले के घर बनाती हैं। उन में से दक्षिण दिशा के केले के घर में भगवान् और भगवान् की माता को ले जाती हैं और वहाँ उन्हें तैलादि का मर्दन करती हैं। फिर पूर्व तरफ के घर में स्नान करा कर वस्त्र तथा आभूषण पहनाती हैं। उत्तर दिशा के घर में दो अरणी काष्ठ घिस कर अग्नि पैदा करती हैं। चंदन का होम कर के उन्होंने दोनों को रक्षा पोटली बांधी। फिर मणि के दो गोलों को उछालती हुई "तुम पर्वत के समान आयुष्यवाले बने रहो !" यों कह कर प्रभु और उनकी

माता को जन्मस्थान में रख कर वे अपने अपने स्थान की ओर चली जाती हैं। उन दिक्कुमारियों क प्रत्येक क साथ चार चार हजार सामानिक देव होते हैं, चार महत्तरायें होती हैं, सोलह हजार अगरक्षक होते हैं, सात सेनायें और उनके अधिपति होते हैं, एव अन्य भी महर्धिक देवता होते हैं और आभियोगिक (नौकर) देवताओं द्वारा बनाये हुए एक योजनप्रमाण विमान में बैठ कर वहाँ आती हैं। इस प्रकार दिक्कुमारियों से किया हुआ जन्मोत्सव समझना चाहिए।

उस समय पर्वत क समान निश्चल इद्र का आसन चलायमान हुआ। इस से अवधिज्ञान द्वारा इद्रने अन्तिम तीर्थंकर प्रभु का जन्म हुआ जाना। वज्रमय एक योजन प्रमाण सुघोषा नामक घटा इद्र ने नैगमेषी देव से बजवाया, जिस से समस्त देव विमानों की घटियाँ बजने लगीं। देवों के उपयोग देने पर नैगमेषी देव ने उच्च स्वर से इद्र की आज्ञा सुनाई, इस से हर्षित होकर देव चलने की तैयारी करने लगे। पालक नामा देव के बनाये हुए एक लाख योजन प्रमाणवाले विमान में इद्र सवार होगया। फिर इद्र के आसन के सामने इद्र की अग्र महिषियों के आठ भद्रासन बिछाये गये। इद्र के बाँई ओर चौरासी हजार सामानिक देवों क भद्रासन थे। दक्षिण तरफ बारह हजार अभ्यन्तर परिषदा के देवों के चौदह हजार भद्रासन थे। इसी तरह सोलह हजार बाह्य परिषदा के भद्रासन थे। पिछले भाग में सात सेनापतियों के उतने ही भद्रासन, चारों ओर प्रत्येक दिशा में चौरासी हजार आत्मरक्षक देवों क थे। इस प्रकार अन्य भी बहुत से देव देवियों से वेष्टित और सिंहासन पर

बैठ कर, गीत गान होते हुए इंद्र वहाँ से चल पड़ा। पालक विमान के सिवा अपने २ विमानों द्वारा और भी बहुत से देव चल पड़े। उन में कितनेक तो इंद्र की आज्ञा से, कितनेक मित्रों की प्रेरणा से, कितनेक अपनी पत्नी की प्रेरणा से, कितनेक तमासा देखने की भावना से, कई एक आश्चर्य देखने के लिए, कई एक आत्मीय भाव से और कई एक भक्तिभाव से चल दिये। उस समय अनेक प्रकार के बाजों के शब्द से, घंटों के निनादों से, देवताओं के कोलाहल से सारा ब्रह्माण्ड गूंज उठा। सिंहाकृतिवाले विमान पर बैठा हुआ देव हाथी पर बैठे हुए देव को कहता है कि भाई! अपने हाथी को दूर बचा ले वरना दुर्धर मेरा केशरी इसे मार डालेगा। इसी तरह भैंसे पर बैठा घोड़े सवार को, गरुड़ पर बैठा हुआ सर्पवाले को और चीते पर बैठा हुआ बकरेवाले को सादर कहता है। उस समय करोड़ों देव विमानों से विशाल आकाश भी संकीर्णसा हो गया। कितनेएक देव उत्सुकता से मित्र को छोड़ कर आगे बढ़ रहे थे, कितनेक कहते थे कि भाई! जरा ठहरो हम भी आते हैं, कइएक कहते थे कि भाई! पर्व के दिन संकीर्ण ही होते हैं इस लिए चुपचाप चले आओ। इस प्रकार आकाश मार्ग से गमन करते देवों के सिर पर चंद्रमा की किरणें पड़ने से वे वृद्ध जैसे शोभते थे। देवों के मस्तक पर रहे तारे घड़ों से लगते थे, गले में रत्नों के कंठे जैसे शोभते थे और शरीर पर पसीने के बिन्दु सरीखे शोभते थे। इस तरह इंद्र नन्दीश्वर द्वीप में विमान को संक्षेप कर वहाँ आया। भगवन्त तथा उन की माता को तीन प्रदक्षिणा दे कर नमस्कार करता है और कहता है कि–हे रत्नकुक्षि! जगत में दीपिका समान माता! आप को नमस्कार

हो । मैं देवों का स्वामी इन्द्र हूँ, स्वर्ग से यहाँ आया हूँ और प्रभु का जन्मोत्सव करूँगा । इस लिए माता आप डरना नहीं । यों कह कर इन्द्र ने अवस्वापिनी निद्रा देदी और प्रभु का एक प्रतिबिम्ब बना कर माता के पास रख दिया । भगवन्त को अपने हस्तसपुट में ले कर विशेष लाभ प्राप्त करने की भावना से इन्द्र ने अपने पाँच रूप बनाये । एक रूप से प्रभु को ग्रहण किया, दो रूपों से प्रभु के दो तरफ चामर वीजने लगा, एक रूप से छत्र धारण किया और एक रूप से वज्र धारण किया ।

अब देवों में आगे चलनेवाले पिछलों को धन्य मानते हैं और प्रभु का दर्शन करने के लिए अपने नेत्र पिछली तरफ चाहते हैं । इस प्रकार इन्द्र मेरुपर्वत पर जाकर उसके शिखर के दक्षिण भागमें रहे हुए पाण्डुक वनमें पाण्डुशिला पर प्रभु को गोदमें लेकर पूर्वदिशा तरफ मुख कर के बैठ जाता है । उस समय तमाम इन्द्र प्रभु के चरणों में उपस्थित होजाते हैं । दस वैमानिक, बीस भुवनपति, बत्तीस व्यन्तर और दो ज्योतिष्क एवं चौंसठ इन्द्र उपस्थित हो गये । सुवर्ण के, चाँदी के, रत्नों के, सोनेचाँदी के, सुवर्णरत्नों के, चाँदी और रत्नोंके, सोने चाँदी और रत्नों के तथा मिट्टी के ऐसे आठ जाति के प्रत्येक के एक हजार और आठ एक योजनप्रमाण मुखवाले कलशे (पचीस योजन ऊँचे, बारह योजन चौड़े और एक योजन नालवाले, सब इन्द्रों के एक करोड़ और साठ लाख कलशे होते हैं) तथा इसी प्रकार पुष्प चगेरी, भृगार, दर्पण, रत्नकरण्डक, सुप्रतिष्ठक, थालादि पूजा के उपकरण प्रत्येक कलशे के समान एक हजार आठ प्रमाणवाले समझने चाहिए । तथा मागध आदि तीर्थों की मिट्टी, गगादि का जल, पद्मसरोव

शादि का पानी तथा कमल, क्षुल्लहिमवन्त, वर्षधर, वैताढ्य, निजय तथा वक्षस्कारादि पर्वतों से सरसों के पुष्प, सुगंधी पदार्थ आदि सर्व प्रकार की औषधियों को अच्युतेंद्र मंगवाता है। क्षीरसमुद्र से जल भरे घड़े छाती से लगाये हुए आते समय देवता ऐसे शोभते थे मानो संसारसमुद्र को पार करने के लिए ही घड़े छाती से लगाये हों। भावरूप वृक्ष को सींच कर उन्होंने अपनी आत्मा का मैल धो लिया।

उस समय इंद्र के संशय को जानकर वीरप्रभुने दाहिने अंगूठे से चारों ओर से मेरुपर्वत को कंपायमान किया। इससे पृथ्वी धूजने लगी, शिखर गिरने लगे और समुद्र भी क्षोभायमान होगया। ब्रह्माण्ड को फोड़ डालें ऐसे शब्द होने पर क्रोधित होकर इंद्रने अवधि ज्ञान से जानकर प्रभुसे क्षमा माँगी। असंख्य तीर्थंकरों में से मुझे आज तक किसीने भी अपने पैर से स्पर्श नहीं किया किन्तु प्रभु वीरने स्पर्श किया इस कारण मानो हर्ष के मारे मेरु पर्वत नाचने लगा। उसने विचार किया कि-इस स्नात्रजल के अभिषेक से झरते हुए समस्त झरनेरूप मैंने हार पहने हैं तथा जिनेश्वररूपी मुकुट को धारण कर मैं आज सब पर्वतों का राजा बना हूँ। अब स्नात्र उत्सव के लिए इंद्रने सब को आदेश दिया—प्रथम अच्युतेंद्रने प्रभु का अभिषेक कराया। फिर अनुक्रम से बडे से छोटोंने और अन्त में सूर्य और चंद्रने स्नात्र कराया। वहाँ पर कवि घटना का वर्णन करता है कि स्नात्र महोत्सव के समय अन्तिम तीर्थंकर के मस्तक पर श्वेत छत्र के समान शोभता हुआ, मुख पर चंद्रकिरणों के समूह समान शोभता हुआ, कंठ में हार के समान शोभता हुआ, समस्त शरीर पर चीनीचोले के समान शोभता हुआ इंद्रो

द्वारा कलशों में से नीचे गिरता हुआ क्षीरसमुद्र का जल तुम्हारी लक्ष्मी के लिए हो (तुम्हारे कल्याण के लिए हो)।

फिर इन्द्रने चार बैलों का रूप धारण किया और उनके आठ शृङ्गों से दूध की धारा द्वारा वह प्रभु का अभिषक करने लगा। सचमुच ही देव बड़े चतुर होते हैं क्यों कि उन्होंने स्नान तो प्रभु को कराया और निर्मल अपने आपको कर लिया। देवोंने मगल दीपक तथा आरती करक नृत्य, गीत और वाद्य आदिसे विविध प्रकार से महोत्सव किया। इन्द्रने गध कषाय नामक दिव्य वस्त्र से प्रभु क अग को रूखा कर चदनादि से विलेपन कर पुष्पों से पूजन किया। फिर प्रभु के सन्मुख रत्नों के पट्टे पर चाँदी के चावलों से इन्द्रने दर्पण, वर्धमान, कलश, मत्स्ययुगल, श्रीवत्स, स्वस्तिक, नन्दावर्त तथा सिंहासन इन आठ मगलों को आलेखित कर प्रभु की स्तुति की। तत्पश्चात् प्रभु को उनकी माता के पास लाकर रक्खा और प्रभु का जो प्रतिबिंब था उसे और अवस्वापिनी निद्रा को वापिस ले लिया। फिर इन्द्रने वहाँ एक तकिया, कुण्डल और रेशमी वस्त्र की जोड़ी रक्खी। चद्रवे में श्रीदाम, रत्नदाम और सुवर्ण की गेंद रक्खी। बत्तीस करोड़ सोनैयों, रुपयों और रत्नों की वृष्टि करा कर इन्द्रने आभियोगिक देवों से घोषणा करा दी—प्रभु या प्रभु की माता की तरफ जो कोई मनुष्य अशुभ विचार करेगा उस के मस्तक क अर्जुन वृक्ष की मजरी क समान सात टुकडे होजायेंगे। अब वह प्रभु के अंगुठे में अमृत स्थापन कर तथा नन्दीश्वर द्वीप में अठाई महोत्सव कर सब देवों सहित अपने स्थान पर चला गया। इस प्रकार देवताओं द्वारा किया हुआ प्रभु महावीर का जन्मोत्सव समजना चाहिए।

अब प्रातःकाल में प्रियंवदा नामा दासीने जल्दी राजा के पास जाकर पुत्रजन्म की वधाई दी। उस वधाई को सुन कर सिद्धार्थ राजा अत्यन्त हर्षित हुआ। उस हर्ष के कारण उसकी वाणी भी गद्‌गद् होगई और शरीर पर रोमांच होगया। राजाने अपना मुकुट रख कर शरीर के तमाम आभूपण प्रियंवदा को दे दिये और हाथ से उसका मस्तक धोकर उस दिन से उसका दासीपन दूर कर दिया।

जिस रात्रि में श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभुने जन्म लिया उस रात्रिको कुबेर की आज्ञा माननेवाले बहुत से तिर्यग्जृंभक देवोंने सिद्धार्थ राजा के घर में सुवर्ण, चॉदी, हीरों तथा वस्त्रों एवं आभूपणों की, पत्रों, पुष्पों तथा फलों की, शाली आदि के बीजों की, पुष्पमालाओं की, सुगन्ध की, वासक्षेप की, हिंगलादि वर्ण की तथा द्रव्य की वृष्टि की।

प्रभातकाल के समय सिद्धार्थ राजाने नगर के आरक्षकों को बुलवाया और उनको आज्ञा दी कि-हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही इस क्षत्रियकुण्ड नाम के नगरमें जितने जेलखाने हैं उन सब को साफ करो! अर्थात् उनमें रहनेवाले तमाम कैदियों को छोड़ दो! कहा भी है कि-युवराज के अभिपेक समय, शत्रु के राज्य का नाश करते समय तथा पुत्र जन्मोत्सव के समय कैदियों को बन्धन मुक्त करना चाहिये। तथा नाप कर देनेवाली और तोल कर देनेवाली वस्तुओं के माप(प्रमाण) में वृद्धि करा दो। ऐसा कराकर इस क्षत्रियकुण्डगाम नगर को अन्दर और बाहर से अत्यन्त शोभायुक्त कराओ। सुगन्धि जल का छिडकाव कराओ, कूड़ाकचरा सब दूर करो, गोबर

आदिसे लिपवाओ, तीन कौनेवाले स्थान, तीन मार्गों के मिलापस्थान, चार मार्गों के मिलापस्थान, देवालयादि स्थान, राजमार्गों, साधारण मार्गों को जलसिंचन कर और साफ कर शोभायुक्त करो। मार्ग के मध्य मार्गों, दुकानों के मार्गों अर्थात् बाजारों में मच बधा दो कि जहा पर बैठ कर लोग महोत्सव देख सकें। इत्यादि करके शहर को शोभायमान करो। अनेक प्रकार की रगबिरगी सिंहादि के चित्रोंवाली ध्वजायें, तथा पताकायें लगा दो। दीवारों पर सफेदी कराओ, तथा गोशीर्ष चदन, रसयुक्त रक्त चदन, दर्दर के दीवारों पर थापे लगवाओ, घरो में चौकड़ियों पर चदनकलश स्थापन कराओ और ऐसा करा कर नगर को सजा दो। मकानों के दरवाजों पर पुष्पमालाओं के समूह लटका कर उन्हें शोभा युक्त करो, जमीन पर पचवर्ण के सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि कराओ, जलते हुए कृष्णागरु, श्रेष्ठ कुदरुक, तुरुष्क आदि विविध जाति के धूप की सुगन्ध से सुगन्धित करो, सुगन्धवाले चूर्णों से मनोहर करो। यह सब कुछ कराकर नाटक करनेवालों, नाचनेवालों, रस्सों पर खेल करनेवालों, मुष्टी से युद्ध करनेवाले मल्लों, मनुष्यों को हसानेवाले विदूषकों मुखविकार की चेष्टा से लोगों को खुश करनेवालों, सुन्दर सरस कथा करनेवालों, बाँस पर चढ़कर खेल करनेवालों, हाथ में तसवीर रखकर भिक्षा मांगनेवाले गौरी पुत्रों, तूण नामक वाद्य बजानेवालों, वीणा बजानेवालों और तालियाँ बजाकर कथा करनेवालों से इस क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर को स्वय शोभायुक्त करो एव दूसरोंसे कराओ। ऐसा कराकर हजारों ही गाड़ियों के जुवों तथा मूसलों का एक जगह ढेर लगादो कि जिससे महोत्सव के अदर कोई मनुष्य

हल तथा गाड़ी न चला सके। इत्यादि कर हमारी आज्ञा पालन करो अर्थात् पूर्वोक्त काम कर, वापिस आकर मुझे कहो कि हमने वैसा ही सब कुछ कर दिया है।

इस प्रकार सिद्धार्थ राजा द्वारा आदेश पाकर वे कौटुम्बिक पुरुष हर्ष और संतोष को प्राप्त होगये, हर्षसे पूर्ण हृदयवाले दोनों हाथोंसे अंजली कर सिद्धार्थ राजा की आज्ञा को विनयसे सुनकर तुरन्त ही क्षत्रियकुण्डग्राम नगरमें जाकर कैदियोंको छोड़ देनेसे लेकर हजारों जुवे और मुसल एकत्रित करने तक तमाम कार्य कर, सिद्धार्थ राजा के पास आकर आज्ञा पालन का समाचार देते हैं।

अब सिद्धार्थ राजा स्वयं वहाँसे उठकर कसरतशाला में जाता है। वहाँ पर अनेक प्रकार के व्यायाम करता है। व्यायाम कर के स्नानघरमें जाकर सुगन्धित कवोष्ण जलसे स्नान करता है, फिर वस्त्राभूषण धारण कर सुशोभित हो राजसभा में आता है। अब सर्व प्रकार की ऋद्धि से, सर्व उचित वस्तुओं के संयोग से, सर्व सैन्य से, पालकी, घोड़ा आदि सर्व वाहनों से, परिवार के समूह से, सर्व अन्तेउर से, सर्व पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला, अलंकारादि की शोभासे, सर्व प्रकार के वाजित्रों से तथा सब बाजों के एक साथ ही होनेवाले शब्दसमूह से युक्त सिद्धार्थ राजा दश दिन तक स्थितिपथि का नामक महोत्सव करता है। उस महोत्सव में बेचनेवाली वस्तुओं पर कर माफ कर दिया, प्रति वर्ष प्रजासे जो कर लिया जाता था सो भी उस समय माफ कर दिया। इन कारणों से प्रजाजनों के हर्ष द्वारा वह महोत्सव अत्यन्त उत्कृष्ट होगया। उस महोत्सवमें राजा की ओर से आज्ञा हो गई कि

यदि किसी मनुष्य को किसी वस्तु की आवश्यक्ता हो तो वह दाम दिये विना ही दुकानों से ले सकता है, दाम उसके राजा की तरफ से दिये जायेंगे। उस महोत्सव में राजपुरुषों की ओर से किसी भी प्रजाजन को कुछ भय नहीं है, राजदण्ड भी माफ कर दिया गया है, अर्थात् अपराध में प्रजाजनों के पाससे जो दण्ड लिया जाता था वह भी माफ कर दिया गया। यदि इस महोत्सव दरम्यान किसी को किसी से कुछ लेनदेन सम्बन्धी लेना है वो वह भी राजा की ओर से ही दिया जायगा। इस आनन्दोत्सवमें नगर के तथा देशभर के लोग अत्यन्त आनन्दित हो क्रीडा में निमग्न थे। इस प्रकार सिद्धार्थ राजाने कुल मर्यादा के अनुसार दश दिन तक पुत्र जन्मोत्सव मनाया।

अब सिद्धार्थ राजाने महोत्सव किये बाद जिसमें सैकड़ों, हजारों, और लाखों का खर्च हो वैसी महाना डम्बर युक्त प्रभुप्रतिमा की पूजा रचाइ। क्योंकि महावीरप्रभु के मातापिता पार्श्वनाथप्रभु के सतानीय श्रावक थे और सूत्र में दिया हुआ "यज" धातु देवपूजा अर्थ में ही आता है इस लिये मूल में याग शब्द से देवपूजा ही अर्थ समझना चाहिये श्रावकों द्वारा दूसरे यज्ञ का असभव ही है। राजाने उस पर्व में खूब दान दिया और मानी हुइ मानतायें भी दीं। अब सिद्धार्थ राजा दान देता और सेवकों से दिलाता हुआ स्वयं हजारों मनुष्यों द्वारा लाये हुए वधामणे भी ग्रहण करता है एवं दूसरे सेवकों से कराता है। इस प्रकार महान् उत्सव करके श्रमण भगवन्त श्री महावीरप्रभु के मातापिताने प्रथम दिन यह कुलमर्यादा की, तीसरे दिन चन्द्र, सूर्यदर्शन का महोत्सव किया। जिसकी विधि इस प्रकार है—जन्म से लेकर दो दिन बीतने पर गृहस्थ गुरु, अरिहन्त की

प्रतिमा के पास चाँदी की चंद्रमा की मूर्ति प्रतिष्ठित कर के पूजन कर विधिपूर्वक स्थापित करे। फिर स्नान कराकर और उत्तम वस्त्राभूषण पहना कर प्रभु सहित प्रभु की माता को चंद्रमा के उदय में बुलावे और चंद्रमा के सन्मुख लेजाकर "ॐ चंद्रोऽसि, निशाकरोऽसि, नक्षत्रपतिरसि, सुधाकरोऽसि, औषधीगर्भोऽसि, अस्य कुलस्य वृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा" इस तरह चंद्र मंत्र उच्चारण करते हुए चंद्रमा का दर्शन करावे। फिर पुत्र सहित माता गुरु को नमस्कार करे, तब गुरु भी आशीर्वाद देवे कि समस्त औषधियों से मिश्रित किरण राशिवाला, समस्त आपत्तियों को दूर करने में समर्थ चंद्रमा प्रसन्न होकर सदैव तुम्हारे वंश की वृद्धि करे। इसी प्रकार सूर्यदर्शन करावे, उसमें मूर्ति सुवर्ण या ताँवे की रक्खे। मंत्र निम्न प्रकार है–ॐ अर्हं सूर्योऽसि, दिनकरोऽसि, तमोपहोऽसि, सहस्रकिरणोऽसि, जगच्चक्षुरसि प्रसीद प्रसीद"। फिर गुरु आशीर्वाद दे कि–समस्त देव और असुरों को वन्दनीय, सर्व अपूर्व कार्यों को करनेवाला, तथा जगत का नेत्र समान सूर्य पुत्र सहित तुम्हे मंगल के देनेवाला हो। इस प्रकार चंद्र सूर्य दर्शन विधि जानना चाहिये। आजकल इस की जगह बालक को सीसा दिखलाते हैं।

इसके बाद छट्ठे दिन रात्रि जागरण करते हैं। जब ग्यारह दिन बीत जाते हैं, अशुचि दूर होजाती है अर्थात् जन्मकार्य समाप्त होने पर बारहवाँ दिन आने पर प्रभु के मातापिता बहुतसा अशन, पान, खादिम, स्वादिम चार प्रकार का भोजन तैयार कराते हैं। फिर अपने सगेसम्बन्धियों को, अपनी जातिवालों को, दास दासियों को तथा ऋषभदेव प्रभु के वंश के क्षत्रियों को जीमने के लिए बुलाते हैं। पूजादि का कार्य कर, कौतुक मंगल

कर तथा सभा के योग्य मांगलिक और शुद्ध वस्त्र पहन कर थोड़े परन्तु कीमती आभूषण धारण कर के शरीर अलङ्कृत कर प्रभु के मातापिता भोजन के समय भोजनमंडप में आकर आसनों पर बैठते हैं। पूर्वोक्त स्वजनादिक के साथ बैठ कर भोजन करते हैं। भोजन किये बाद कुल्ला कर ताम्बुलादि से मुखशुद्धि कर के वे बैठक की जगह पर आसनों पर आ बैठे और उन्होंने उन स्वजनादिकों का विशाल पुष्प, वस्त्र, सुगन्ध, माला तथा आभूषणादिसे आदरसत्कार किया। ऐसा कर के प्रभु के मातापिताने उन स्वजनादि से कहा कि हे बन्धुगण! प्रथम भी हमें इस बालक के गर्भमें आने पर यह विचार पैदा हुआ था कि जब से यह बालक गर्भ आया है तब से हम चांदी, सुवर्ण, धन, धान्य, राज्य तथा द्रव्य एवं अनेक प्रकार के प्रीति सत्कार से अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं, तथा सीमा मध्यवर्ती राजा भी हमारे वश में आगये हैं इस लिए जब यह बालक जन्म लेगा तब इस का इसके योग्य गुणसपन्न 'वर्धमान' नाम रक्खेंगे। वह पूर्व में उत्पन्न हुई हमारी मनोरथ सपत्ति आज सफल हुई है इस लिए हमारे कुमार का नाम वर्धमान ही समुचित है।

काश्यप गोत्रवाले श्रमण भगवन्त श्री महावीरप्रभु के तीन नाम हुए हैं। मातापिता का रक्खा हुआ प्रथम वर्धमान नाम है। तप करने की शक्ति प्रभु में साथ ही उत्पन्न हुई थी इस कारण उनका नाम श्रमण था। तथा भय और भैरव में निष्कप होने के कारण, जिसमें भय-अकस्मात् बिजली आदि से उत्पन्न हुआ, भैरव सिंहादि से उत्पन्न तथा भूख, प्यासादि बाइस परिषह, देवता सबन्धि चार उपसर्ग जिनके जुदे जुदे सोलह भेद

होते हैं, उन्हें प्रभुने क्षमाशीलता से सहन किया । भद्रादिक तथा एक रात्रिक आदि प्रतिमाओं-अभिग्रहों को पालन करनेवाले, तीन ज्ञान से मनोहर बुद्धिशाली जिन्होंने रति अरति को सहन किया है; अर्थात् जिसे अनुकूल और प्रतिकूल संयोगों में हर्ष और शोक नहीं है, जो रागद्वेष रहित होने से गुणों का भाजनरूप है ऐसा वृद्ध आचार्यों का मत है । पराक्रमसंपन्न होने से अर्थात् पूर्वोक्त गुणों के कारण देवोंने प्रभु का " श्रमण भगवान् महावीर " नाम रक्खा था । देवोंने ऐसा नाम क्यों रक्खा इसके लिए वृद्ध संप्रदाय का मत है—

इस प्रकार सुरासुर नरेश्वरों द्वारा जिसका जन्मोत्सव किया गया है ऐसे वीर भगवन्त द्वितीया के चंद्र समान या कल्पवृक्ष के अंकुर के समान वृद्धिको प्राप्त होते हुए अनुक्रम से ऐसे हुए-चंद्र के समान मुखवाले, ऐरावण हाथी के समान गतिवाले, लाल होंठोंवाले, दाँतों की सुफेद पंक्तियुक्त, काले केशों से युक्त, कमल के समान कोमल हाथों सहित, सुगंध युक्त श्वासोश्वासवाले और कान्तिसे निकसित हुए । वे मति, श्रुत और अवधिज्ञान सहित थे, उन्हें पूर्वभव का भी स्मरण था, वे रोग रहित थे, मति, कान्ति, धीरज आदि अपने गुणों के द्वारा संसार वासियों से अधिक थे और जगत में तिलक के समान थे ।

आमल-क्रीड़ा

एक दिन वीरकुमार कौतुक के न होने पर भी समान उम्रवाले कुमारों के आग्रह से उनके साथ आमल क्रीडा करने के लिए नगर के बाहर गये । वहाँ पर वे सब कुमार वृक्ष पर चढ़ने आदि की क्रिया से क्रीडा कर

रहे थे। उसी समय सौधर्मेंद्र अपनी सभा में देवों से समक्ष प्रभु के धैर्यादि गुणों की प्रशंसा कर रहा था। इंद्रने कहा–हे देवो! वर्तमान काल में मनुष्य लोक में श्री वर्धमान कुमार बालक होते हुए भी अबाल पराक्रमी अर्थात् महापराक्रमी है। उसे इंद्रादि देव भी डराने के लिए समर्थ नहीं हो सकते ऐसा निडर है। यह सुनकर सभा में बैठे हुए एक मिथ्यादृष्टि देवने विचारा कि–अहो इंद्र को अपने स्वामीपन का कितना अभिमान है! यह बिना विचारे कैसी गप्प मारता है। इंद्र की यह बात ऐसी ही है जैसे कोई कहे कि आकाश से एक रूई की पूणी पड़ी और उस से एक नगर दब गया! भला कहाँ देव और कहाँ एक मनुष्य? मैं अभी जाकर उसे डराकर इंद्र के वचन को झूठा कर देता हूं। यह विचार कर उस देवने मनुष्य लोक में आकर मूसल के समान मोटे, चपल दो जीभ युक्त, भयंकर फूत्कार सहित, अत्यन्त क्रूर आकारधारी, विस्तृत, क्रोधी, विशाल फण युक्त और चमकते हुए मणिवाले क्रूर सर्प का रूप धारण कर उस वृक्ष को चारों ओर से लपट लिया, जिस पर चढ़ उतर कर के वे लड़के खेल रहे थे। उसे देख कर सारे ही कुमार भयभीत हो वहाँ से दूर भाग गये। श्रीवर्धमान कुमारने निर्भीक हो वहाँ जाकर उसे हाथ में पकड़ कर दूर फेंक दिया। फिर सब कुमार वर्धमान के पास आकर गेंद का खेल खेलने लगे। वह देव भी कुमार का रूप धारण कर उन सब के बीच में खेलने लगा। उस खेल में शरत यह थी कि जो कुमार हार जाय वह जीतनेवाले कुमार को अपनी पीठ पर चढ़ावे। अब वह देवकुमार जानबूझ कर वर्धमान कुमार से हार गया। शरत के अनुसार वर्धमान कुमार को अपनी पीठ पर चढ़ा कर उस

देवने सात ताल वृक्ष समान ऊंचा शरीर बना लिया। भगवानने ज्ञानसे उसका स्वरूप जान कर उसकी पीठपर वज्र के समान कठिन मुष्टिप्रहार किया, उस देवने मुष्टिप्रहार की वेदना से पीड़ित हो मच्छर के समान संकुचित शरीर बना लिया और उसने इंद्र का वचन सत्य मान कर अपना स्वरूप प्रकट किया तथा सब वृत्तान्त सुना कर प्रभु से अपने अपराध की वारंवार क्षमा माँगी । देव अपने स्थान पर चला गया । इंद्रने संतुष्ट होकर प्रभु का 'वीर' नाम रक्खा । यह आमल क्रीडा का वृत्तान्त समझना चाहिये ।

प्रभु का पाठशाला में जाना

अब प्रभु के माता पिता उन्हें आठ वर्ष का हुआ जान कर अति मोह के कारण उन्हें आभूषणादि पहना कर पाठशाला में ले गये । उस समय माता पिताने लग्नस्थिति पूर्वक अति हर्षित होकर बहुत धन व्यय कर के बड़ा मूल्यवान् महोत्सव किया । हाथी, घोड़ों के समूह से, मनोहर बाजुबन्ध तथा हारों के समूह से, तथा सुवर्ण घड़ित मुद्रिकायें, कंकण, कुंडल आदि आभूषणों से, तथा अति मनोहर पंचवर्णीय रेशमी वस्त्रों से स्वजनादि राजकीय मनुष्यों का उन्होंने भक्तिपूर्वक आदरसत्कार किया । पंडित के लिए अनेक प्रकार के वस्त्र, आभूषणादि एवं विद्यार्थीओं के लिए सुपारी, सिंगाडे, खजूर, सक्कर, खांड, चरोली, किसमिस आदि खानेकी वस्तुयें भी उन्होंने साथ लेलीं । तथा सुवर्ण, चाँदी और रत्नों के मिश्रण से बनाये हुए पुस्तकों के उपकरण, एवं कलम, दवात, तख्ती को भी साथ ले लिया, सरस्वती की पूजा के लिए मनोहर तथा बहुत से रत्नों से

जडा सुवर्ण आभूषण भी साथ लिये, विद्यार्थियों के लिए सुन्दर वस्त्र भी लिये। इस प्रकार पढ़ने के योग्य सकल सामग्री साथ लेकर प्रभु को कुल वृद्ध स्त्रीयों द्वारा तीर्थोदक से स्नान कराकर श्रेष्ठ वस्त्राभूषणों से कान्ति युक्त कराकर, मस्तक पर मेघाडम्बर(छत्र) धारण करा, दोनों और चामर का व्यजन कराते हुए चतुरगी सेना सहित, आगे अनेक प्रकार के बाजे बजाते हुए पण्डित के घर ले जाते हैं। पडित भी राजकुमार को पढ़ाने योग्य क्षीरसमुद्र के जल समान उज्वल धोती पहन, सुवर्ण का यज्ञोपवीत धारण कर केशर के तिलक आदि की सामग्री करता था।

उस समय पीपल के पत्र समान, हाथी के कान समान, कपटी के ध्यान समान, राजा के मान समान, इद्र का सिंहासन चलायमान हुआ। अवधिज्ञानद्वारा सब वृत्तान्त जान कर इद्र देवों को कहने लगा–अहो! यह कैसा आश्चर्य है? प्रभु को पाठशाला में पढ़ने के लिए ले जा रहें है!!! यह भी वैसे ही है जैसे आम्रवृक्ष पर उसके पत्तों की बदरवाल बाँधना, अमृत में मिठास डालना, सरस्वती को पाठविधि सिखलाना, चद्र में सुफेदपन का आरोपन करना, सुवर्ण को सुवर्ण के पाणी के छींटे दने ऐसा ही प्रभु को पढ़ाने के लिए पाठशाला मे ले जाना है। तीर्थंकर के सामने जो वचन बोलते हैं वे तो माता के समक्ष मामा की प्रशसा करने के समान है, लका नगरी में जाकर समुद्र की लहरों का वर्णन करना, समुद्र को नमक की भेट करना, वैसा ही भगवन्त को पढाना है। जिनेश्वर विना ही पढ़े विद्वान्, निर्द्रव्य परमेश्वर और विना ही अलकार मनोहर हैं। ऐसे भगवन्त आपका कल्याण कर,

यह विचार कर के इंद्र तुरन्त ही ब्राह्मण का रूप धारण कर वहाँ पर आया जहाँ प्रभु थे। पंडित के आसन पर प्रभु को वैठा कर पंडित के मनमें जो संदेह था इंद्र उन्ही को पूछने लगा। यह देख लोग विचार में पड़ गये कि यह छोटासा वालक ऐसे गूढ प्रश्नों का क्या उत्तर देगा? उन लोगों के आश्चर्य मनाते हुए श्रीवीर प्रभुने उन समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया। उस वक्त से 'जैनेन्द्र व्याकरण' हुआ। यह वनाव देख पण्डित भी आश्चर्यचकित हो मनमें विचार करने लगा कि–अहो! इस बालक वर्धमान कुमारने इतनी विद्या कहाँ से सीखी होगी? कैसे आश्चर्य की बात है? मेरे मन में जो जन्म से संदेह थे और जिन्हें आज तक किसीने भी दूर नही किये थे। उन्हें आज इस बालक महावीरने दूर किये हैं। देखो इतनी विद्या जाननेवाले इस वालक में कितना गांभीर्य है!! अथवा ऐसे महापुरुष में ऐसे गुणों का होना युक्त ही है। शरद् ऋतु में मेघ गर्जता है परंतु वर्षता नहीं, वर्षाऋतु में गर्जता नहीं परंतु वर्षता है–इसी प्रकार नीच मनुष्य बोलते तो बहु हैं परन्तु करते कुछ नहीं और उत्तम पुरुष बोलते नहीं किन्तु कर दिखाते हैं। ऐसे ही असार पदार्थ का आडम्बर ही विशेष होता है, जैसे कि काँसी का आवाज होता है वैसा सुवर्ण का नहीं होता। इत्यादि विचार करते हुए पण्डित को इंद्रने कहा हे विप्र! इस बालक को साधारण मनुष्य मात्र समझना ठीक नहीं किन्तु तीन लोक के नाथ एवं सर्व शास्त्रों के पारगामी और अन्तिम तीर्थंकर ये श्रीमहावीर प्रभु हैं। इत्यादि भगवन्त की स्तुति कर के इंद्र अपने स्थान पर चला गया। भगवान् भी ज्ञातकुल के सकल परिवार युक्त अपने घर पर आगये। यह पाठशाला भेजने का अधिकार

समझना चाहिये।

प्रभु की बाल्यावस्था बीतने पर, जवानी आने पर अर्थात् भोग समर्थ होने पर उसके मातपिताने शुभ मुहूर्त देखकर प्रभु के साथ समरवीर राजा की यशोदा नामकी पुत्री का पाणिग्रहण कराया। उसके साथ सुख भोगते हुए प्रभु को एक पुत्री हुई और उसे एक राजकुमार जमाली नामक अपने भानजे के साथ ब्याह दिया। उसके भी एक शेषवती नामवाली पुत्री हुई जो प्रभु की दोयती लगती थी। श्रमण भगवान श्रीमहावीर प्रभु के पिता काश्यप गोत्रीय थे। उनके तीन नाम थे–सिद्धार्थ, श्रेयास और यशस्वी। श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु की माता का वाशिष्ठ गोत्र था। इस प्रकार उसके भी तीन नाम थे–त्रिशला, विदेहदिन्ना और प्रीतिकारिणी। श्रमण भगवन्त के चचा का नाम सुपार्श्व, बड़े भाई का नन्दिवर्धन, बहिन का सुदर्शना और स्त्री का नाम यशोदा जो कौडिन्य गोत्रीय थी। श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु की पुत्री काश्यप गोत्रवाली थी और उसके दो नाम थे, एक अणोज्जा और दूसरा प्रियदर्शना। श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु की कौशिक गोत्रवाली एक दोयती थी। उसके दो नाम ये थे–शेषवती और यशस्वी।

भगवान का दीक्षावसर

अब सकल कलाओ में कुशल, निपुण प्रतिज्ञावाले, सुन्दर रूप युक्त, सर्व गुणों से अलकृत, सरल, विनयवान् प्रख्यात सिद्धार्थ राजपुत्र ज्ञातकुल में चद्र समान, वज्रऋषभनाराच सहननवाले, समचतुरस्र

संस्थान की मनोहरता के कारण सुन्दर देहवाले, विदेहदिन्ना त्रिशला क्षत्रियाणी के पुत्र, वैदेहदिन्न नामधारी गृहस्थावास में सुकुमाल और दीक्षा के समय परिग्रह सहने में कठिन श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु तीस वर्ष तक गृहस्थावास में रहकर, मातापिता के स्वर्गवास हुए बाद बड़े भाई नन्दिवर्धन की आज्ञा लेकर, जो गर्भ में प्रतिज्ञा की थी कि मातापिता जीतेजी दीक्षा न लूंगा सो पूर्ण हो जाने पर, आवश्यक सूत्र के अभिप्राय मुजब प्रभु के अट्ठाईस वर्ष बीतने पर उनके मातापिता चौथे स्वर्ग में गये और आचारांग सूत्र के अभिप्राय से अनशन कर के बारहवें देवलोक में गये, तब प्रभुने अपने बड़े भाई नन्दिवर्धन से कहा कि–हे राजन् ! मेरा अभिग्रह पूर्ण हुआ है अतः मैं अब दीक्षा ग्रहण करूंगा । तब नन्दिवर्धनने कहा–हे भाई ! माता पिता के विरह से खिन्न हुए को मुझे ऐसी बात कह कर घाव पर नमक डालने के समान क्यों करते हो ? प्रभुने कहा–भाई ! माता, पिता, बहिन, भाई का सम्बन्ध तो इस जीवने अनेक दफा बांधा है, इस लिए नाहक क्यों प्रतिबन्ध करना चाहिये ? नन्दिवर्धन बोला–बन्धु ! यह सब कुछ मैं जानता हूँ, परन्तु आप प्राणों से भी प्रिय हैं तो आपका विरह मुझे अत्यन्त पीड़ाकारक है इस लिए आप मेरे आग्रह से दो वर्ष तक घर में और रहो । प्रभुने बड़े भाई का कहना मंजूर किया और कहा कि–अच्छा, अब से लेकर घर में मेरे लिए किसी भी प्रकार का आरंभ समारंभ न किया जाय । मैं प्रासुक आहार पानी ग्रहण करके रहूँगा । नन्दिवर्धन राजाने भी यह बात मंजूर करली । इन दो वर्ष तक प्रभुने वस्त्रालंकार विभूषित रहकर भी प्रासुक एषणीय आहार

पानी ही ग्रहण किया। कभी सचित्त पानी तक भी नहीं पिया और नहीं कभी सचित्त जल से स्नान किया एवं उस दिन से जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन किया। परन्तु दीक्षोत्सव में तो प्रभुने सचित्त जलसे ही स्नान किया, क्यों कि उस प्रकार आचार है। अब प्रभु को वैराग्यवान् देख कर चौदह स्वप्नों से सूचित चक्रवर्ती पन की बुद्धिसे सेवा करते श्रेणिक और चण्डप्रद्योत आदि राजकुमार अपने २ स्थान पर चले गये।

इधर एक तरफ प्रभु की प्रतिज्ञा पूर्ण होती है और दूसरी ओर लोकान्तिक देव आकर प्रभु को बोध करते हैं। लोकान्तिक ससार के अन्त में रहे हुए अर्थात् एक भवावतारी देव, क्यों कि यों तो वे ब्रह्मलोक नामक पाँचवें स्वर्ग में रहते हैं। ये देव भी नव प्रकार के होते हैं। उनके नाम सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अग्नि, और अरिष्ट हैं। प्रभु यद्यपि स्वयबुद्ध थे तथापि उन देवों का यह आचार ही होता है, वे जीतकल्प कहलाते हैं। वे देव आकर प्रभु को इष्ट वाणी से, मनोहर गुणोवाली वाणी से निरन्तर अभिनन्दित करते हुए, स्तुति करते हुए यों कहने लगे–हे जयवन्त प्रभो! हे भद्रकारी प्रभो! हे कल्याणवान् प्रभो आपकी जय हो। हे भगवन्! लोक के नाथ! आप प्रतिबोधको प्राप्त हो। हे उत्तम क्षत्रियवर! सकल जगत के प्राणियों को हितकारी ऐसे धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करो। वह तीर्थ सकल लोक में समस्त जीवों को सुखकारी और मोक्ष के देनेवाला होगा। यों कहकर वे जयजय शब्द बोलने लगे।

श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु को तो मनुष्य के उचित प्रथम से ही अनुपम, उपयोगवाला, तथा

केवलज्ञान उत्पन्न हो तब तक टिकनेवाला अवधिज्ञान और अवधिदर्शन था। उससे वे अपने अनुत्तर एवं आभोगिक ज्ञानदर्शन से अपने दीक्षा समय को स्वयं जानते थे। अब वे सोना, चाँदी, धन, राज्य, देश तथा सेना, वाहन, धन के भंडार, अन्न के भंडार, नगर, अन्तःपुर तथा देशवासी जनसमूह को त्याग कर, एवं रत्न, मणि, मोती, शंख, प्रवाल, स्फटिक, रक्त रत्न, हीरा, पन्नादि सार पदार्थ त्याग कर अर्थात् उन सार वस्तुओं को भी असार समझ एवं अस्थिर जान कर अर्थीजनों को दान करते हुए, जिसको जैसा देना उचित समझा उसको वैसा ही दे कर, गोत्रिय जनों को विभाजित कर देकर प्रभु निकलते हैं। इस सूत्र से प्रभु का वार्षिक दान सूचित किया है। दीक्षा के दिन से पहले एक वर्ष शेष रहने पर प्रातःकाल उठकर प्रभु वार्षिक दान शुरू करते हैं और वह दान सूर्योदय से लेकर मध्याह्न समय तक देते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन प्रभु एक करोड़ और आठ लाख सुवर्णमुद्राओं का दान देते हैं। 'जिसको चाहिये वह मांगे ऐसी घोषणापूर्वक जिसे जो चाहता सो देते हैं। वह समस्त द्रव्य इंद्राज्ञासे देवता पूर्ण करते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में तीन सौ अठासी करोड और अस्सी लाख सुवर्ण मुद्रायें दान में दीजाती हैं।

यहाँ पर कवि उस वार्षिक दान का वर्णन करता है कि भिखारी जैसे वेष में रहे हुए अर्थी प्रभु के पास से जब समृद्ध होकर घर आते हैं तब उनकी स्त्रीयाँ भी उन्हें पहचान नहीं सकीं और उन्हें हम इसी घर के मालिक हैं इस लिए कसम दिला कर घर में घुसने देती हैं। उपहास करते कि देखो तुम्हारे घर में कोई अन्य

न आ जावे ! !

इस प्रकार वर्षीदान देकर प्रभुने फिर नन्दिवर्धन राजा से कहा–भाई अब आपके कथनानुमार भी समय पूर्ण होगया है अत म दीक्षा ग्रहण करूँगा। यह सुन कर नन्दी राजाने भी ध्वज, तोरणादि से बाजार तथा कुण्डपुर नगर को देवलोक के समान सजाया। नन्दिवर्धन राजा और इद्रादिने सुवर्ण के, चाँदी के, मणि के, सोना चाँदी, सौनो रत्नों, सुवर्ण चाँदी मणि और मट्टी आदि प्रत्येक के एक हजार आठ कलशे और दूसरी भी सब सामग्री तैयार कराई।

फिर अच्युतेंद्रादि चौसठ इद्रोंने आकर भगवान का अभिषेक किया। देवकृत कलशे दिव्य प्रभाव से नन्दिवर्धन राजा के बनवाये हुए कलशों में प्रविष्ट होने से अत्यन्त शोभते हैं। देवताओं द्वारा क्षीरसमुद्र से लाये हुए पवित्र जल से नन्दिवर्धन राजाने प्रभु का अभिषेक किया। उस समय इद्र झारी तथा सीसा (दर्पण) हाथ में लेकर प्रभु सन्मुख खड़े जय जय शब्द बोलते थे। इस प्रकार प्रभु को स्नान कराये बाद गन्धकषाय नामक वस्त्र से उनका शरीर रूक्ष किया और फिर दिव्य चदन का विलेपन किया। दिव्य पुष्पों की मालायें उनके गले में धारण कराई। जिस के किनारों पर सुवर्ण का काम किया हुआ है ऐसे एक बहुमूल्य श्वेत वस्त्र से प्रभुने अपने शरीर को ढक लिया। हार से वक्षस्थल को शोभायमान किया, बाजुबन्ध और कंकणों से भुजाओं को सजाया, कर्णकुण्डलों से गालों को सुशोभित किया। अब श्री नन्दिवर्धन राजा द्वारा बनवाई हुई

पचास धनुष्य लम्बी और पचीस धनुष्य चौड़ी एवं छत्तीस धनुष्य ऊंची बहुत से स्तंभों से शोभती हुई, मणि रत्नों से एवं सुवर्ण से विचित्र तथा दिव्य प्रभाव से देवकृत पालखी जिस के अन्दर समा गई ऐसी चंद्रप्रभा नामक पालखी में बैठकर प्रभु दीक्षा ग्रहण करने के लिए चले। शेष वर्णन सूत्रकार स्वयं करते हैं।

भगवान का दीक्षा महोत्सव ।.

उस काल और उस समय में जो शरत्काल का पहला महीना और पहला ही पक्ष था। उस मागशिर मास का कृष्णपक्ष उसकी दशमी के दिन, पूर्वदिशा तरफ छाया के आनेपर प्रमाण सहित न कम न अधिक ऐसी पीच्छली पोरसी के आनेपर सुव्रत नामक दिन में, विजय नामक मुहूर्त में, छठ की तपस्या कर के, शुद्ध लेश्यावाले प्रभु पूर्वोक्त चंद्रप्रभा नामक पालखीमें पूर्व दिशा सन्मुख सिंहासन पर बैठे। वहाँ प्रभु के दाहिनी ओर हंस के लक्षण युक्त वस्त्र धोती आदि लेकर महत्तरिका बैठी। बाँई ओर दीक्षा के उपकरण लेकर प्रभु की धाव माता बैठी। प्रभु के पिछली तरफ हाथ में श्वेत छत्र लेकर उत्तम शृंगार धारण कर एक तरुणी स्त्री बैठी। ईशान कोण में एक स्त्री संपूर्ण भरा हुआ कलश लेकर बैठी। अग्निकोण में मणिमय पंखा हाथ में लेकर बैठी। फिर नन्दिवर्धन राजा की आज्ञा से राजपुरुष जब उस पालखी को उठाते हैं तब तुरन्त ही शक्रेंद्र दाहिनी तरफ की बांहू को उठाता है। ईशानेंद्र उत्तर तरफ की ऊपर की बांहू को उठाता है। चमरेंद्र दक्षिण तरफ की नीचे की बांह को उठाता है तथा बलींद्र उत्तर तरफ की नीचे की बांह को उठाता है। शेष भुवनपति, ज्योतिष्क और वैमानिक

द्र हाथ लगाते हैं। आकाश से देवता पचवर्ण के पुष्पों की वृष्टि करते हैं, देवदुदुभि बजाते हैं, वे अपनी २ योग्यता क अनुसार पालखी को उठाते हैं। फिर शक्रेंद्र और ईशानेंद्र उन बांहो को छोड़ कर प्रभु को चामर ढोलते हैं। इस प्रकार जब प्रभु पालखी में बैठ कर दीक्षा लेने जा रहे हैं तब अनेकानेक देव देवियों से आकाशतल शरद् ऋतु में पद्म सरोवर के तुल्य, प्रफुल्लित अलसी के वन समान, कलियर के वन सरीखा, चपा के बगीचे सदृश, तथा पुष्पित तिल क वन समान मनोहर शोभता था। निरन्तर बजते हुए भभा, भेरी, मृदंग, दुदुभि और शखादि के निनाद गगनतल में पसर रहे थे। उन निरन्तर बजनेवाले अनेक बाजों के सुन्दर शब्द सुनकर नगर की स्त्रियाँ अपने कार्यों को छोड़ कर वहाँ आती हुई अपनी विविध प्रकार की चेष्टाओं से मनुष्यों को आश्चर्यचकित करती थीं। कहा भी है स्त्रियों को तीन चीज अधिक प्यारी होती हैं एक तो क्लेश, दूसरा काजल और तीसरा सिंदूर। ऐसे ही ये तीन वस्तु भी प्यारी होती हैं एक दूध, दूसरा जमाई और तीसरा बाजा। उन की चेष्टायें निम्न प्रकार थीं–कितनीएक बालिकायें शीघ्रता के कारण अपने गालों पर काजल के अंक और आँखों में कस्तूरी डाल आईं। कितनीएक जल्दी की उत्सुकता से चित्त उधर होने से गले के आभूषण पैरों में और पैरों क गले में पहन आईं। कितनीएकने गले का हार तगड़ी की जगह पहना हुआ था और तगड़ी हार की जगह पहनी थी। गोशीर्ष चदन पैरों पर लगाया हुआ और मेंहदी शरीर पर लगाई थी। कोई अर्ध स्नान किये भीने ही कपड़ों से पानी टपकाती आ रही थी। कोई खुले केश पगली सी हुई दौड़ती

आ रही थी। वे ऐसी अवस्था में आती हुई किस मनुष्य को प्रथम त्रास और जाने के बाद हास्य न कराती थीं ? यहां तक किसी के शरीर से वस्त्र भी खिसक गये थे, किसीने हाथ में नाड़ा ही पकड़ा हुआ था। ऐसी परिस्थिति होने पर भी उन्हें जरा भी शरम नहीं लगी, क्यों कि सब लोग प्रभु को देखने के ध्यान में मग्न थे। कितनीएक स्त्रियाँ तो प्रभु का दीक्षा महोत्सव देखने की उत्सुकता में यहाँ तक बेभान हो गई थी कि अपने रोते हुए बच्चों को छोड़ कर पास में खड़े बिल्ली के बच्चों को ही अपना बच्चा समझ गोद में उठा लाई थीं। कोई २ स्त्री प्रभु के दर्शन कर मन में कहती–अहा ! कैसा सुन्दर रूप है ? कैसा तेज है ? अहा शरीर का सौभाग्य कैसा है !! मैं विधाता की चतुराई पर वारफेर करूँ जिसने ऐसा सुन्दर रूप बनाया है ! विकसित कपोलवाली कितनीएक स्त्रियाँ प्रभु के मुख को देखने में ऐसी तल्लीन हुई थीं कि उन के शरीर से सुवर्ण के आभूषण निकल पड़ने पर भी उन्हें मालूम नहीं होता था। कोई २ चंचल नेत्रवाली स्त्री तो अपने हस्तकमलों से प्रभु की ओर मोती फेंकती थी, कितनीएक बाजों की तान में आकर मधुर स्वर में गाने लगीं और कई एक आनन्द में आकर नाचने लग गईं।

इस प्रकार नगर के नारियों द्वारा जिसका दीक्षा महोत्सव देखा जा रहा है ऐसे प्रभु के आगे प्रथम रत्नमय अष्टमंगल चलते हैं, जिनके नाम ये हैं–स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्ययुगल और दर्पण उसके बाद पूर्ण कलश, झारी, चामर, बड़ी पताका, छत्र, मणि और स्वर्णमय पादपीठ-

वाला सिंहासन फिर सवार रहित एकसो आठ हाथी, उतने ही घोडे, उतने ही घंटे और पताकाओं से मनोहर सजे हुए और शस्त्रों से भरे हुए रथ, उतने ही उत्तम पुरुष, फिर अनुक्रम से घोडे, हाथी, रथ तथा पैदल सेना, फिर एक हजार छोटी पताकाओं से मंडित एक हजार योजन ऊंचा महेन्द्र ध्वज, खड्गधारी, भालों को धारण करनेवाले, ढाल धारी, हास्य तथा नृत्य करनेवाले जय २ शब्द करते भाट चारण आदि चलते हैं। फिर बहुत से उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, क्षत्रीयकुल के राजा, कोतवाल, माडलिक, कौटुम्बिक, सेठ लोग, सार्थवाह, देव, देवीयां प्रभु के आगे चलते तत्पश्चात् स्वर्ग, मृत्यु लोक में रहनेवाले देव, मनुष्य और असुर चलते हैं। तथा आगे शंख बजानेवाले, चक्रधारी, हलधारी अर्थात् गले में सुवर्ण का हलके आकारवाला आभूषण धारी, मुख चाटु वचन बोलनेवाले, दूसरों को जिन्होंने अपने कंधे पर बैठाया हुआ है ऐसे मनुष्य, बिरुदावली बोलनेवाले, घंटा लेकर चलनेवाले रावलिये-इन सबसे वेष्टित प्रभु को कुल की वृद्ध नारियाँ इष्ट विशेषणोंवाले वचनों से अभिनन्दित करती हुई बोलती हैं कि " जय जय नन्दा, जय जय भद्दा भद्दते " अर्थात् हे समृद्धिमन्! हे भद्रकारक! आप जय पाओ। आपका भद्र हो तथा अजित इंद्रियों को अतिचार रहित ज्ञानदर्शनचारित्र से वश करो, वश किये हुए श्रमण धर्म को पालन करो। हे प्रभो! सर्व विघ्नों को जीत कर मोक्ष में निवास करो। रागद्वेष रूप मल्लों को नष्ट करो। हे प्रभो! उत्तम शुक्ल ध्यान से धैर्य में प्रवीण हो अष्ट कर्मरूप शत्रुओं का नाश करो। हे वीर! अप्रमत्त होकर तीन लोकरूप जो मल्ल

युद्ध का अखाड़ा है उसमें तुम विजय पताका ग्रहण करो, तिमिर रहित अनुपम केवलज्ञान को प्राप्त करो और पूर्व तीर्थंकरों द्वारा कथन किये हुए अकुटिल मार्ग से परिसहों की सेना को हण कर आप मोक्षरूप परम पद को प्राप्त करो। हे क्षत्रियों में वृषभ समान! आप जय प्राप्त करो, जय पाओ। हे प्रभो! आप बहुत से दिनों तक, बहुत से पक्षों तक, बहुत से महीनों तक, बहुतसी ऋतुओं तक, बहुसी छमासियों तक, और बहुत से वर्षों तक उपसर्गों से निडर होकर, बिजली, सिंहादि के भयों को, क्षमाशीलता से सहन करते हुए विजय प्राप्त करो। तथा आपके धर्ममें विघ्नों का अभाव हो। यों कहकर फिर जय जय के शब्द बोलने लगीं। अब श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी क्षत्रिय कुण्डनगर के मध्य से होकर हजारों नेत्र पंक्तियों द्वारा दीखते हुए, श्रेणिबद्ध मनुष्यों के मुख से वारंवार अपनी स्तुति सुनते हुए, हजारों ही हृदय पंक्तियों से आप जय पाओ, चिरकाल जीवोइत्यादि चिन्तवन कराते हुए, हजारों मनुष्यों के यह विचार करते हुए कि हम इनके सेवक भी बनजायें तो भी कल्याण हो, कान्ति रूप, गुणों से आकर्षित हो लोकसमूह जिसे अपना स्वामी बनाने की स्पृहा करते थे, जिसे हजारों मनुष्य अंगुलियाँ उठा उठा कर दिखला रहे थे कि भगवान वे जा रहे हैं। दाहिने हाथ से हजारों स्त्री पुरुषों के नमस्कार ग्रहण करते हुए हजारों ही मानव समूह के साथ आगे बढ़ते हुए, हजारों ही भवन पंक्तियों से आगे बढ़ते हुए, तथा बीणा, तलताल, गीत, वाजिंत्रों के एंव मधुर मनोज्ञ जय जय उद्‌घोषणा से मिश्रित हुए मनुष्यो के अति कोमल शब्दों से सावधान होते हुए। समस्त छत्रादि

राजचिह्न समृद्धि से युक्त तथा आभूषणादि की सर्व प्रकार के कान्ति सहित, हाथी, घोडा आदि सर्व प्रकार की सामग्री सहित, ऊंट, खचर शिविकादि सर्व प्रकार के वाहनों युक्त, सर्व महाजनों एव स्वजनों के मिलाप से, सर्व प्रकार के आदरपूर्वक, सर्व प्रकार की सपदा सहित, सर्व शोभायुक्त, सर्व हर्ष की उत्सुकतापूर्वक अठारह प्रकार की नगर में निवास करनेवाली प्रजाओ सहित सर्व नाटकों, सर्व तालाचरों, अन्तेउर सर्व पुष्प, गन्ध, माला और अलकारों की शोभा से, सर्व वाजों के एकत्रित शब्दों की ध्वनि से, बड़ी ऋद्धि, द्युति, सैन्य, बड़े समुदाय, तथा समकालीन बजते हुए शख, पटह, भेरी, झल्लरी, खरमुखी, हुडुक्क और देवदुदुभि के निकलते हुए शब्द के प्रतिरूप बड़े बड़े शब्दोंयुक्त ऋद्धि से दीक्षा ग्रहण करने को जाते हुए प्रभु क पीछे चतुरगी सेना से वेष्टित एव मनोहर छत्र चामरादि से सुशोभित नन्दिवर्धन राजा चलता है। उपरोक्त आडम्बरयुक्त भगवान् क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बीच से निकल कर ज्ञातखण्ड नामक उद्यान में अशोक नामक वृक्ष के नीचे जाते हैं। वहाँ जाकर प्रभु पालकी को ठहरवा देते हैं। भगवान पालकी से नीचे उतरते हैं, उतर कर अपने अंग से स्वय तमाम आभूषण उतार देते हैं। अगुलियों से सुवर्णमुद्रिकायें, हाथों से वीर वलय, भुजाओं से बाजुबन्ध, कठ से कुण्डल, एव मस्तक पर से मुकुट उतारते हैं। उन समस्त आभूषणों को कुल की महत्तरा हसलक्षणवाले वस्त्र में ले लेती है। लेकर वह "इक्खागकुलसमुप्पण्णे सि ण तुम जाया" हे पुत्र! तुम इक्ष्वाकु जैसे उत्तम कुल में जन्मे हो तुम्हारा काश्यप नामक उच्च गोत्र है ज्ञातकुलरूपी आकाश में पूर्णिमा के निर्मल चद्रमा के समान सिद्धार्थ राजा के और त्रिशला क्षत्रियाणी के तुम पुत्र हो, देवेन्द्रों और नरेन्द्रोंने भी

तुमारी स्तुति की है । हे पुत्र ! इस संयम मार्ग में शीघ्र चलना, गुरु का आलंबन लेना तलवार की धारा के समान महाव्रतों का पालन करना, श्रमण धर्म में प्रमाद न करना–इत्यादि आशीर्वाद देती है । फिर प्रभु को वन्दन कर वह एक तरफ हट जाती है । तब प्रभुने एक मुष्टि से दाढी मूछ के और चार मुठी से मस्तक के केशों का स्वयं लोच किया। फिर पानी रहित छठ्ठ की तपस्या कर के उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग आने पर, इंद्रद्वारा बाँये कंधे पर एक देवदूष्य को धारण कर अकेले ही रागद्वेष की सहाय विना ही, अद्वितीय अर्थात् जैसे ऋषभदेव प्रभुने चार हजार राजाओं सहित, मल्लिनाथ और पार्श्वनाथजीने तीन तीनसौ के साथ, वासुपूज्यजीने छहसौ के साथ तथा शेष तीर्थंकरोंने जैसे एक एक हजार के साथ दीक्षा ली थी त्यों वीर प्रभु के साथ कोई भी न था। इस लिए प्रभु अद्वितीय थे। द्रव्य से केशालुंचन कर के मुंडित हुए, भाव से क्रोधादि को दूर कर के मुण्डित हुए, घर से निकल कर आगारीपन को त्याग कर अनगारीपन साधुपन को प्राप्त हुए । दीक्षा की विधि निम्न प्रकार है–पंच मुठी लोच कर जब प्रभु सामायिक उचरने का विचार करते हैं तब इंद्र बाजे आदि बन्द करा देता है। प्रभु " नमो सिद्धाणं," कह कर " करेमि सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि " इत्यादि पाठ उच्चारण करते हैं, परन्तु भन्ते पाठ नहीं बोलते क्योंकि उनका आचार ही ऐसा है । इस प्रकार चारित्र ग्रहण करते ही प्रभु को चौथा मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ । अब इंद्रादि देव प्रभु को वन्दन कर नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा कर के अपने स्थान पर चले गये ।

इस तरह महोपाध्याय श्रीकीर्तिविजयगणि के शिष्योपाध्याय श्रीविनयविजयगणि की रची हुई कल्पसूत्र की सुबोधिका नाम की टीका का हिन्दी भाषा में पाँचवाँ व्याख्यान समाप्त हुआ।

छट्ठा व्याख्यान।

भगवान् का विहार

दीक्षा लेकर चार ज्ञान के धारक भगवान् बन्धुवर्ग की आज्ञा लेकर विहार कर जाते हैं। बन्धु वर्ग भी जब तक प्रभु नजर आते हैं तब तक वहाँ ही ठहर कर—

" त्वया विना वीर ! कथं व्रजामो ? गृहेऽधुना शून्यवनोपमाने।
गोष्ठीसुखं केन सहाचरामो ? भोक्ष्यामहे केन सहाथ बन्धो ! ॥ १ ॥
सर्वेषु कार्येषु च वीर वीरे-त्यामन्त्रणाद्दर्शनतस्तवार्य !।
प्रेमप्रकर्षाद भजाम हर्षं, निराश्रयाश्चाथ कमाश्रयाम ? ॥ २ ॥
अति प्रिय बान्धव ! दर्शनं ते, सुधाञ्जनं भावि कदास्मदक्ष्णोः।
नीरागचित्तोऽपि कदाचिदस्मान्, स्मरिष्यसि ? प्रौढगुणाभिराम ! ॥ ३ ॥ "

हे वीर ! अब हम आप के बिना शून्य वन के समान घर को कैसे जायँ ? हे बन्धो ! अब हम किसके साथ बातचीत कर सुख प्राप्त करेंगे ? हे बन्धो ! अब हम कीसके साथ बैठकर भोजन करेंगे ? आर्य ! सर्व कार्यों में

वीर वीर कहकर आप के दर्शन से तथा प्रेम के प्रकर्ष से हम अत्यानन्द प्राप्त करते थे, परन्तु निराश्रित हुए अब हम किसका आश्रय लेंगे ? तथा हे बान्धव ! हमारी आँखों को अमृतांजन के समान अति प्रिय आप का दर्शन अब हमें कब होगा ? हे प्रौढ गुणों से शोभनेवाले ! निराग चित्त होते हुए भी क्या आप कभी हमें याद करेंगे ? इस प्रकार बोलते हुए अश्रु पूर्ण नेत्र हो बड़े कष्ट से नन्दीवर्धन वापिस घर गये।

अब दीक्षा के समय देवोंने जो प्रभु की गोशीर्षचंदन और पुष्पादि से पूजा की थी उसकी सुगन्ध प्रभु के शरीर पर चार महीने से भी कुछ दिन अधिक रही थी। उस सुगन्ध से आकर्षित हो अनेक भ्रमर प्रभु के शरीर पर डंक मारते हैं। कितनेएक युवक प्रभु के पास आकर सुगन्ध गुटिकायें मांगते हैं परन्तु प्रभु तो मौन रहते हैं इससे वे प्रभु को उपसर्ग करते हैं। युवती स्त्रियाँ भी प्रभु को अत्यन्त रूपवान् और सुगन्धित शरीरवाला देख कामविवश होकर अनुकूल उपसर्ग करती हैं, परन्तु प्रभु मेरुपर्वत के समान निश्चल होकर सब कुछ सहन करते हुए विचरते हैं। उस दिन जब दो घड़ी दिन बाकी रहा था तब प्रभु कुमारग्राम में पहुँचे और वहाँ ही रात्रि को काउसग्ग ध्यान में रहे।

उपसर्गों की शुरूआत

उस समय जहाँ प्रभु खड़े थे वहाँ ही हल चलानेवाला एक ग्वाला सारा दिन हल चलाकर संध्यासमय बैलों को प्रभु के पास छोड़कर घर पर गायें दुहने चला गया। वापिस लौट कर उसने प्रभु से पूछा कि–हे

आर्य ! मेरे बैल कहाँ हैं ? प्रभु न बोले। यह समझ कर कि इन्हें मालूम नहीं है वह जगल में उन्हें ढूंढने लगा। बैल इधर उधर चर कर थोड़ीसी रात्रि रहने पर प्रभु के पास आ बैठे। रातभर भटक कर ग्वाला भी वहाँ आया और बैलों को देख वह विचारने लगा कि इसे खबर थी तथापि मुझे सारी रात भटकाया। इस विचार से क्रोधित हो रस्सा उठा कर प्रभु को मारने के लिए दौड़ा। उसी वक्त इन्द्रने अवधिज्ञान से जानकर ग्वाले को शिक्षा दी।

उस समय इन्द्रने प्रभु से प्रार्थना की-भगवन् ! आपको बहुत उपसर्ग होनेवाले हैं, अतः सेवा करने के लिए मैं आपके पास रहूँ तो ठीक। प्रभुने कहा कि-हे देवेंद्र ! ऐसा कदापि न हुआ, न होता है और न होगा, तीर्थंकर किसी देवेंद्र या असुरेंद्र की सहायता से केवलज्ञान प्राप्त नहीं करते, किन्तु अपने ही पराक्रम से प्राप्त करते हैं। तब इन्द्र मरणान्त उपसर्ग टालने के लिए प्रभु की मौसी के पुत्र सिद्धार्थ नामक व्यन्तर देव को प्रभु की सेवा में छोड़ गया।

फिर प्रात काल होने पर कोल्लाग नामक सन्निवेश में प्रभुन बहुलनामा ब्राह्मण के घर पात्र सहित धर्म की प्ररूपणा करनी है यह विचार कर प्रथम पारणा वहाँ गृहस्थके पात्रमे परमान्न (खीर) से किया।

उस समय देवोंने पांच दिव्य प्रकट किये-१ वस्त्रों की वर्षा की २ सुगंध जल से पृथ्वी सिंचन की ३ पुष्पवृष्टि की ४. देवदुंदुभि बजाई ५ अहोदानमहोदान की घोषणा की, बाद साडे बारह करोड सौनैया

की वर्षा की।

वहाँ से प्रभु विहार कर मोराकनामा सन्निवेश पधारे, वहाँ सिद्धार्थ राजा का मित्र दुइज्जंत तापस रहता था उसके आश्रम में पधारे। भगवान को देखकर तापस सामने आया, पूर्व परिचय के कारण उससे मिलने के लिए प्रभुने हाथ पसार दिये। उसकी प्रार्थना मे प्रभु एक रात वहाँ रहकर निरागचित्त होते हुए भी उसके आग्रह से वहाँ चातुर्मास रहने का मंजूर कर अन्यत्र विहार कर गये। आठ मास तक विचर कर फिर वहाँ आगये। कुलपति द्वारा दी हुई एक घास की कुटिया में चातुर्मास रहे। वहाँ पर बाहर घास न मिलने से अन्य तापसों द्वारा अपनी २ झोंपड़ी से निवारण की हुई गायें निःशंकतया प्रभु की झोंपड़ी का घास खाने लगीं। झोंपड़ी के स्वामीने कुलपति के पास फरयाद की। कुलपति आकर प्रभु को कहने लगा कि–हे वर्धमान! पक्षी भी अपने २ घौंसले का रक्षण करने में समर्थ होते हैं, फिर आप राजपुत्र होकर अपने आश्रम को रक्षण करने में क्यों असमर्थ हैं? प्रभुने विचारा कि मेरे यहाँ रहने से इसे अप्रीति होती है, यह विचार आषाढ शुदि पूर्णिमा से लेकर केवल पंद्रह दिन गये बाद वर्षाकाल में ही प्रभु पाँच अभिग्रह धारण कर अस्थिग्राम की ओर चले गये। वे पाँच अभिग्रह ये हैं।

जहाँ किसी को अप्रीति पैदा हो ऐसे स्थान मे न रहूँगा १. सदैव प्रतिमाधारी हो कर रहूँगा २, गृहस्थी का विनय न करूँगा ३, सदा मौन रहूँगा ४, और हमेशह हाथ में ही आहार करूँगा ५.।

श्रमण भगवन्त श्रीमहावीरस्वामी एक वर्ष और एक मास तक वस्त्रधारी रहे, इसके बाद वस्त्र रहित रहे एवं हाथ में ही आहार करते रहे, प्रभु का वस्त्र रहित होना निम्न प्रकार है।

प्रभु के दीक्षा लेने पर एक वर्ष और एक मास बीते बाद दक्षिण वाचाल नामा नगर के पास सुवर्णवालुका नामा नदी के किनारे काँटों में उलझ कर आधा देवदूष्य वस्त्र गिर जाने पर प्रभुने सिंहावलोकन से पीछे दृष्टि की। यहाँ कितनएक कहते हैं कि प्रभुने ममता से पीछे देखा था, कितनेएक कहते हैं कि वह वस्त्र शुद्ध भूमि पर पड़ा या अशुद्ध पर यह जानने के लिये उन्होंने पीछे देखा था। कितनएक कहते हैं कि हमारी संतति में वस्त्र पात्र सुलभ होगा या दुर्लभ यह जानने के लिए पीछे देखा था। कई का मत है कि वस्त्र काँटों में उलझने से अपना शासन कंटकबहुल होगा यह विचार स्वयं निर्लोभी होने से वह अर्ध वस्त्र उन्होंने फिर वापिस नहीं लिया।

वह अर्ध वस्त्र प्रभु के पिता का मित्र एक ब्राह्मण उठा ले गया। आधा वस्त्र प्रभुने प्रथम ही उसे दे दिया था, वह वृत्तान्त इस प्रकार है-वह ब्राह्मण दरिद्री था और जब प्रभुने वर्षीदान दिया तब परदेश गया हुआ था। दुर्भाग्यवश परदेश से खाली हाथ आया, तब उसकी स्त्रीने तर्जना की कि हे-दुर्भाग्यशिरोमणि! जब श्रीवर्धमानने सुवर्ण की वृष्टि की तब तू परदेश चला गया और वहाँ से भी अब खाली हाथ आया? अतः मेरे सामने से दूर चला जा, मुझे मुख न दिखला, अथवा जा अब भी उसी जंगम कल्पवृक्ष के पास जा कर याचना

कर। जिसने प्रथम दान दिया है वही अब भी देने मे समर्थ है, क्योंकि पानी के अर्थी जब सूखी हुई नदी खोदते हैं तब वह भी उन्हें पानी देती है। इस तरह स्त्री के वचनों से प्रेरित हो वह ब्राह्मण प्रभु के पास आकर प्रार्थना करने लगा–हे प्रभो! आप जगत के उपकारी हैं, आपने समस्त जगत का दारिद्र्य दूर किया है। मैं निर्भागी उस समय यहाँ नहीं था और मुझे परदेश में भटकते हुए को भी कुछ नहीं मिला। इस लिए पुण्यहीन, अनाश्रित और निर्धन मैं जगत को वांछित देनेवाले प्रभो! आप के शरण आया हूँ। संसार का दारिद्र्य दूर करनेवाले को मेरा दारिद्र्य दूर करना क्या बडी बात है? क्यों कि–संपूरिता शेषमहीतलस्य, पयोधरस्याद्भुतशक्तिभाजः। किं तुम्बपात्रप्रतिपूरणाय, भवेत्प्रयासस्य कणोपि नूनम् ॥ १ ॥ जिसने सारे महीतल को भर दिया ऐसे अद्भुत शक्तिशाली मेघ को एक तुंबा भरने में क्या पयास करना पड़ेगा? इस प्रकार प्रार्थना करते हुए उस ब्राह्मण को करुणावन्त भगवन्तने आधा देवदूष्य वस्त्र दे दिया। यहाँ पर कितनेएक आचार्यों का मत है कि ऐसे दानेश्वरी भगवानने बिना प्रयोजन वस्त्र का भी जो आधा भाग दान दिया सो प्रभु की संतति में होनेवाली वस्त्र पात्र पर मूर्च्छा को सूचित करता है। दूसरे कहते हैं–प्रथम जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे उसीका यह संस्कार है।

अब उस ब्राह्मणने वह अर्ध वस्त्र ले कर उसके किनारे ठीक करने के लिए एक रफूकार को दिखलाया। उस रफूकारने कहा हे विप्र! तू भी उसी प्रभु के पास जा वह निर्मम और करुणावान् प्रभु शेष आधा वस्त्र भी

तुझे दे देंगे और फिर मैं इसे ऐसा रफूकर दूँगा कि जिस से वे मालूम नहीं होने से उसका एक लाख सुवर्णमोहरें जितना मूल्य मिल जायगा। अपने दोनों आधा २ बाँट लेंगे इससे दोनों सुखी हो जायेंगे। इस तरह रफूकार से प्रेरित हो कर वह ब्राह्मण फिर प्रभु के पास आया, परन्तु लज्जावश माग न सका और साल भर तक प्रभु के पीछे पीछे फिरता रहा। जब वह अर्ध वस्त्र स्वय गिर पड़ा तब वह उसे उठा कर ले गया। इस प्रकार प्रभुने सवस्त्र धर्म कथन करने के लिये एक वर्ष और एक मास तक वस्त्र धारण किया। इसके बाद जीवन पर्यन्त प्रभु वस्त्र और पात्र बिना ही रहे हैं।

सामुद्रिक शास्त्री का प्रसग।

एक दिन गगा के किनारे विहार करते हुए सूक्ष्म मिट्टीवाले कादव में प्रतिबिम्बित हुई प्रभु की पदपक्तियों में चक्र, ध्वज, अंकुश आदि लक्षणों को देख कर पुष्प नामक सामुद्रिक विचारने लगा कि–यहाँ से कोई चक्रवर्ती नगे पैर चला जा रहा है अत मैं शीघ्र ही आगे जा कर उसकी सेवा करूँ जिस से मेरा भी अभ्युदय हो। यह सोच कर वह शीघ्र ही चल कर पद चिन्हों के अनुसार प्रभु के पास आ पहुँचा। प्रभु को मुडित देख विचारने लगा कि–अहो! मैंने तो व्यर्थ ही कष्ट उठा कर सामुद्रिक शास्त्र पढा। ऐसे लक्षणोंवाला भी मुण्डित हो कर व्रत कष्ट महन करता है? सामुद्रिक शास्त्र असत्य है, इसे अब नदी में ही फैंक दूँ। इतने ही में अवधि-ज्ञान से जान कर तुरन्त ही वहाँ पर इद्र आया। उसने प्रभु को नमस्कार कर पुष्पक से कहा कि–हे सामुद्रिक

वेत्ता ! तूं खेद न कर, तेरा शास्त्र सत्य ही है। इन लक्षणों से ये प्रभु तीन जगत् के पूजनीय और वन्दनीय हैं, ये सुरासुरों के स्वामी और सर्व प्रकार की संपदाओं के आश्रयभूत तीर्थंकर होंगे। इनका शरीर पसीने के मैल से रहित है, श्वासोश्वास सुगन्धवाला है, रुधिर और मांस गाय के दूध समान सुफेद। इत्यादि इनके बाह्य और अभ्यन्तर सुलक्षणों को कौन गिन सकता है? इत्यादि कह कर उसे मणि, सुवर्णादि से समृद्धिवान् करके इंद्र अपने स्थान पर चला गया। यह सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता भी हर्षित हो अपने देश गया।

श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु बारह वर्ष से कुछ अधिक समय तक कायाको नित्य वोसरा कर एवं शरीर पर से ममता को तज कर रहते हैं। उन्हें जो कोई उपसर्ग होता है उसे निश्चलता से सहते हैं। अर्थात् देवकृत, मनुष्यकृत, भोगप्रार्थनारूप अनुकूल उपसर्ग, ताड़नादि प्रतिकूल उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं क्रोध और दीनता रहित सहते हैं। प्रभुने जो देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्ग सहन किये सो कहते हैं।

शूलपाणि का उपसर्ग तथा भगवान् के दश स्वप्न

प्रभुने प्रथम चातुर्मास के सिर्फ १५ दिन मोराक नामक सन्निवेश में व्यतीत कर शेष साढ़े तीन महिने अस्थिक ग्राम में व्यतीत किये। वहां शूलपाणि यक्ष के चैत्य में रहे। वह यक्ष पूर्वभव में धनदेव नामक व्यापारी का बैल था। उस व्यापारी की नदी उतरते समय पाँचसौ बैलगाड़ियाँ कीचड़ में फस गईं। उल्लसित

वीर्यवान् उस बैलने बाँई धुरा म जुड़कर तमाम गाड़ियाँ निकाल दी। उस परिश्रम से उस बैल की साँधायें टूट गई और वह अशक्त होगया। उसे अशक्त समझ कर धनदेव व्यापारीने वर्धमान ग्राम म जाकर ग्राम के मुखियों को उसके लिए घास पानी के वास्ते द्रव्य देकर उसे वहाँ ही छोड दिया। परन्तु गांव के उन आगे वानोंने उस बैल की बिलकुल मारसभाल न की और वह भूख प्यास से पीडित हो शुभ अध्यवसाय से मरकर व्यन्तरजाति का देव होगया। पूर्वभव का वृत्तान्त यादकर उसने क्रोध से गाव म मारी फैलाकर अनेक मनुष्यों को मार डाला। कितनों का सस्कार किया जाय? यों ही मुरदे पडे रहने से उनकी हड्डियों के समूह से उस गांव का अस्थिक ग्राम नाम पड गया। शेष बचे हुए लोगोंने उसकी आराधना की उससे प्रत्यक्ष होकर उसने अपना मंदिर और मूर्ति बनवाई। डरके मारे लोग उसकी पूजा करते थे। प्रभु उसे प्रतिबोध करने के लिए उसके चैत्य में पधारे। लोगोंने कहा कि—इसके चैत्य में जो रात को रहता है उसे यह मार डालता है। इस तरह लोगों के निवारण करने पर भी प्रभु रात को वहा ही रहे। उसने प्रभु को डराने के लिए पृथवी फट जाय ऐसा अट्टहास्य किया। फिर हाथी और सर्प का रुप धारण कर दुःसह उपसर्ग किया। तथापि प्रभु जरा भी क्षोभित न हुए। यह देख उसने दूसरे के प्राण जायें ऐसी प्रभु के मस्तक में, कान में, नासिका म, नेत्रों में, पीठ में नखों आदि सुकुमार स्थानों म घोर वेदना शुरू की। ऐसा करने से भी प्रभु को निष्प्रकंप देख कर बोध को प्राप्त हुआ। उसी समय सिद्धार्थ व्यन्तर देव वहा आकर कहने लगा कि—हे निर्भागी दुष्ट शूलपाणि! तुने यह क्या

किया ? जो इंद्र के भी पूज्य की आशातना की ? यदि इंद्र इस बात को जान लेगा तो तेरे इस स्थान का भी नाश कर देगा । सुनकर भयभीत हो प्रभु को पूजने लगा, गानतान सहित नाचने लगा । यह सुनकर लोगोंने विचारा कि दुष्टने प्रभु को मार डाला है और इस लिए गाता तथा नाचता है ।

प्रभुने कुछ कम रात्रि के जो चारों पहर तक वेदना सही थी उससे प्रातःकाल उन्हें क्षणवार निद्रा आगई। प्रभात होने पर लोग इकठे हुए, उस वक्त वहाँ उत्पल और इंद्रशर्मा नामक अष्टांग निमित्त को जानेवाले नैमित्तक भी आये । उन सबने प्रभु को दिव्य, गन्ध, पुष्पादिक से पूजित देख हर्षित हो नमस्कार किया ।

उत्पल बोला–हे प्रभो ! आपने रात्रि के अन्त में जो दश स्वप्न देखे हैं उनका फल आप तो जानते ही हैं तथापि मैं कहता हूँ । जो आपने तालपिशाच को मारा इससे आप थोड़े ही समय में मोहनीय कर्म को नष्ट करेंगे । जो आपने सेवा करता श्वेत पक्षी देखा इससे आप शुक्लध्यान को ध्यायेंगे । जो आपने सेवा करते हुए चित्रकोकिल को देखा इससे आप द्वादशांगी का अर्थ विस्तारित करेंगे। जो आपने सेवा करते गायों को देखा है इससे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चतुर्विध संघ आप की सेवा करेगा। जो आपने समुद्र तरना देखा है इससे संसारसागर तरेंगे । जो आपने उदय होता सूर्य देखा इससे आप शीघ्र ही केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे । जो आपने अपनी आँतों से मानुषोत्तर पर्वत को वेष्टित देखा है इससे आपकी तीन लोक में कीर्ति व्याप्त होगी । जो आपने अपने को मंदराचल के शिखर पर चढ़ा देखा इससे आप सिंहासन पर बैठकर देव

और मनुष्यों की परिषदा में धर्मदेशना दीजै। आपने जो स्वप्नों में अलंकृत गणधरोंद्वारा गूंथा हुआ भारी सिद्धान्त देखा, आप की सेवा करके और आपने जो मालायुगल देखा उसका अर्थ मुझे मालूम नहीं होता। तब भगवान्ने कहा कि उत्पल! जो मैंने दो माला देखी हैं उनसे मैं दो प्रकार का धर्म कथन करूंगा, एक साधु धर्म और दूसरा श्रावक धर्म। फिर उत्पल भी प्रभु को वन्दन कर चला गया। यहाँ पर चार अर्ध मासक्षपण द्वारा चातुर्मास पूर्ण कर प्रभु मोराक सन्निवेश में गये। वहाँ प्रतिमा धारण कर रहते हुए प्रभु की महिमा बढ़ाने के लिए सिद्धार्थ व्यन्तरने उनके शरीर में प्रवेश किया। निमित्त बतलाने से प्रभु की महिमा बढ़ती। इस तरह प्रभु की महिमा देख ईर्षा से वहाँ रहते हुए अच्छंदक नामा एक नैमित्तिकने प्रभु से तृण छेद के विषय में प्रश्न करने पर सिद्धार्थने कहा कि—यह छेदन नहीं होगा। यों कहने पर ज्यों ही वह तृण छेदन करने लगा त्योंही उपयोगपूर्वक यहाँ आकर इन्द्र उसकी अंगुली छेदन कर दी। फिर जब कुपित सिद्धार्थने लोगों से कहा कि—यह निमित्तिया चोर है। प्रमाण पूछने पर कहा कि इसने वीरघोष कर्मकर का दश पल प्रमाणवाला बटलोहा चुराकर खजूर के वृक्ष नीचे दबाया हुआ है। तथा इन्द्रशर्मा का बकरा भी यही खागया है और उसकी हड्डियाँ इसने अपने घर के बाड़ेवाली बेरी के नीचे दबा दी हैं। इसका दूसरा दूषण तो मुख से कहा नहीं जासकता, वह इसकी स्त्री ही सुनायगी। मनुष्यों ने उसके घर जाकर स्त्री से पूछा तो वह बोली—हे मनुष्यो! जिसका मुख भी न देखना चाहिये ऐसा यह दुष्ट है। क्यों कि यह अपनी भगिनी को भी भोगता है। सिद्धार्थने उस दिन

११

अपने पति से लड़ी हुई थी । इस बनाव से अत्यन्त लज्जित हो वह नैमित्तिक एकान्त में प्रभु के पास आकर बोला–प्रभो! आप तो विश्वपूज्य हो और सर्वत्र पूजा पाओगे परन्तु मेरी आजीविका तो यहाँ ही है। प्रभु उसकी अप्रीति जान वहाँ से विहार कर गये ।

चंडकौसिक का उपसर्ग

वहां से श्वेताम्बनगरी की तरफ जाते हुए लोगों के निषेध करने पर भी कनखल नामक तापस के आश्रम में प्रभु चंडकौशिक को प्रतिबोध करने के लिए पधारे ।

वह चंडकौसिक पूर्वभव में महातपस्वी साधु था। पारने के दिन गोचरी जाते हुए मेंडकी की विराधना होगई थी, उसका प्रायश्चितपूर्वक प्रतिक्रमण करने के लिए ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण के समय, गोचरी प्रतिक्रमण के वक्त और संध्या प्रतिक्रमण के समय एवं तीन दफा किसी छोटे शिष्यने याद करा देने से क्रोधित हो वह उस छोटे शिष्य को मारने के लिए दौड़ा । परन्तु बीचमें एक स्तंभ से टकरा कर मरके ज्योतिष देवतया उत्पन्न हुआ । वहाँ से चवकर उस आश्रम में पाँच सौ तापसों का चंडकौसिक नामा महन्त बना । वहाँ पर भी आश्रम के फलों को तोड़ते हुए राजकुमारादिकों को देख गुस्से होकर उन्हें मारने के लिए हाथ में कुल्हाड़ी लेकर पीछे दौड़ा, परन्तु रास्ते के एक कुवे में पड़जाने से क्रोध युक्त मरकर उसी आश्रम में पूर्वनामवाला दृष्टिविष सर्प बना । वह सर्प प्रभु को ध्यानस्थ अपने बिल पर खड़ा देख क्रोधायमान हो सूर्य की ओर देख देखकर प्रभु

पर दृष्टिज्वालायें फेंकने लगा और दृष्टिज्वाला फेंककर इस विचार से कि इसके गिरने पर मैं दब न जाऊं, पीछे हट जाता है। परन्तु प्रभु को निश्चल ध्यानस्थ देख कर अत्यन्त क्रोधातुर हो उसने प्रभु को डंक मारा तथापि प्रभु को अव्याकुल और उनके पैर से दूध के समान सुफेद खून निकला देखकर तथा "बुज्झ बुज्झ चंड कौसिया" ऐसे प्रभुवचन सुनकर विचार करते हुए उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। अब वह प्रभु को तीन प्रदक्षिणा देकर अहो! करुणासागर प्रभुने मुझे दुर्गतिरूप कूपमें से निकाल लिया इत्यादि विचार करता हुआ अनशन कर एक पक्ष तक अपने बिलमें मुख डालकर शान्त रह गया। उस मार्गमें जाती हुई घी बेचनेवाली स्त्रियोंने उस पर घीके छांटे डालकर उसकी पूजा की। उस घी आदि की सुगन्ध के कारण वहाँ आई हुई अनेकानेक चींटियों से अत्यन्त पीडित होता हुआ, पर प्रभु की दृष्टिरूप अमृत से सिंचित हो मृत्यु पाकर वह सहस्रार देवलोक में देव बना।

प्रभु वहाँसे अन्यत्र विहार कर गये। उत्तर वाचाला में नागसेनने प्रभु को क्षीर से पारणा कराया। वहाँ पर पंच दिव्य प्रगट हुए। वहाँ से श्वेताम्बी नगरमें परदेशी राजाने प्रभु की महिमा की वहां से सुरभिपुर जाते हुए प्रभु को पांच रथयुक्त नैयका गोत्रवाले राजाओंने वंदन किया वहांसे प्रभु सुरभिपुर गये। वहाँ गंगा नदी के किनारे सिद्धयात्र नाविक लोगों को नाव पर चढ़ा रहा था, प्रभु भी उस नाव में चढ़ गये। उस वक्त उल्लू का शब्द सुनकर क्षेमिल नामक निमित्तियेने कहा कि आज हमें मरणांत कष्ट आयगा परन्तु (प्रभु की तरफ इशारा करके) इस महापुरुष के प्रभावसे उस संकट का नाश होगा। गंगा नदी उतरते समय

प्रभु के त्रिपृष्ठ के भवमें मारे हुये सिंह के जीवने सुदंष्ट्र नामक देवने नाव को डबो देने का प्रयत्न किया, परन्तु कंबल, शंबल नामक नागकुमार देवोंने आकर उस विघ्न को दूर किया। उन कंबल शंबल की उत्पत्ति इस प्रकार है—

मथुरा नगरी में साधुदासी और जिनदास नामक स्त्री भरतार रहते थे। वे परम श्रावक थे, पाँचवें व्रत में उन्होंने चौपद पशु सर्वथा न रखने का परित्याग किया था। एक ग्वालन उनके घर हमेशह दूध दही देजाती थी, साधु दासी उसकी एवज में यथोचित द्रव्य दे देती थी, इस प्रकार उनमें अत्यन्त प्रेमभाव होगया। एक दिन उस ग्वालन के घर विवाह प्रसंग आगया अतः उसने उन दोनों को निमंत्रण दिया। उन्होंने कहा कि हम ब्याह में तो तेरे घर नहीं आ सकते, परन्तु ब्याह में जो सामग्री चाहिये सो हमारे घर से लेजाना। उनसे मिले हुए चंद्रवा, वस्त्र, आभूषणादिसे उस ग्वालन का विवाह अच्छा उत्कृष्ट होगया। इससे ग्वाला और ग्वालनने प्रसन्न होकर अत्यन्त मनोहर और समान उम्रवाले दो बाल वृषभ–बछड़े लाकर उन्हें दे दिये। उनके अनेकवार इन्कार करने पर भी वे जबरदस्ती उनके घर बाँध गये। जिनदासने विचारा कि यदि अब इन्हें वापस देदूंगा तो खस्सी करने और भार ढोने आदिसे ये वहाँ दुःख ही पायेंगे। इस विचार से वह प्रासुक तृण जल आदि से उनका पोषण करने लगा। उनके बाँधने की जगह के पास ही पोशाल थी। जब अष्टमी आदि पर्व के दिन जिनदास पौषध लेकर पुस्तक पढ़ता तब वे भी सुनते और इससे वे भद्रिक बन गये। अब जब कभी वह श्रावक उपवास कर के पौशाल में बैठता है तब उस दिन वे बैल भी चारा नहीं खाते। इससे जिनदास को उन-पर अधिक प्रेम हो गया। एक दिन

जिनदास को घर पर न देख उसकी आज्ञा विना ही उसका एक मित्र उन्हें अति बलवान् और सुन्दर समझ कर भाण्डीरवन यक्ष की यात्रार्थ गाड़ी में जोडने के लिए लेगया। उन बैलोंने आज तक कभी गाड़ी का जुआ देखा भी न था। उसने अधिक भार भर गाड़ी में जोड़कर उन्हें मार पीटकर ऐसे हाँके कि जिससे अनहिल बछड़ों की साँधे टूट गई। यात्रा कर चुपचाप ही उन्हें जिनदास के घर बाँध गया। जिनदासने आकर देखा तो उनकी आँखों से पानी पड़ता था। यह देख जिनदास की भी आँखों में आँसु निकल आये। अन्तिम समय जान कर जिनदासने उन्हें आहार पानी का परित्याग करा कर नवकारादि से उनकी निर्यापना करी। वे वहाँ से मृत्यु पाकर नागकुमार देव बने। वे नये ही उत्पन्न हुए थे, अवधिज्ञान से पूर्वोक्त वृत्तान्त जान तुरन्त आकर एकने नाव का रक्षण किया और दूसरेने उस सुदंष्ट्र नामक देव को निवारण किया। फिर प्रभु के गुणगान करते तथा नाचते हुए महोत्सवपूर्वक सुगन्ध जल वृष्टि एवं पुष्पवृष्टि करके वे अपने स्थान पर चले गये।

दूसरा चातुर्मास भगवान्ने राजगृह नगर में नालन्दा नामक महल्ले में एक जुलाहे की शाला के एक भाग में उसकी आज्ञा लेकर प्रथम मासक्षपण तप करके किया। वहाँ पर मंखलि नामक मंख (चित्रकला जाननेवाले भिक्षाचरविशेष) की सुभद्रा नामा स्त्री की कुक्षी से बहुल नामक ब्राह्मण की गोशाला में पैदा होने से गोशालक नामधारी मंखकिशोर प्रभु के पास आया। वहाँ पर प्रभु को मासक्षपण के पारणे में विजय नामक सेठने कूर आदि विपुल भोजन विधि से बहराया, इससे वहाँ प्रकट हुए पंच दिव्यादि महिमा को देख

उस गोशालकने प्रभु से कहा कि मैं आपका शिष्य हूँ। फिर दूसरे पारणे में नन्दसेठने पक्वान्न आदि से, तीसरे पारणे में सुनन्दा सेठने परमान्न (खीर) आदि से प्रभु को आहार कराया। चौथे पारणे को प्रभु कोल्लाग सन्निवेश में पधारे। वहाँ बहुल नामक ब्राह्मणने प्रभु को खीर से पारणा कराया। वहाँ भी पंच दिव्य प्रकट हुए।

अब गोशाला प्रभु को उस जुलाहे की शाला में न देख मारे राजगृह नगरमें उन्हें ढूँढता फिरा। कहीं पर भी न मिलने पर ब्राह्मणों को उपकरण देकर और मुख तथा मस्तक मुँडवा कर भगवान से कोल्लागमें जामिला और "अब से मुझे आपकी दीक्षा हो" यों कह कर प्रभु के साथ ही रहने लगा। प्रभु भी उस शिष्य के साथ सुवर्णखिल गाँव की ओर चले। मार्ग में ग्वाले एक बड़ी हाँडी में खीर पका रहे थे। यह देख गोशाला प्रभु से बोला कि यहाँ ही भोजन करके चलेंगे। सिद्धार्थने कहा कि इन की हँडिया फूट जायगी, गोशालेने उन से कह दिया अतः उन के अनेक प्रयत्न करने पर भी हाँडी फूट गई। इस से गोशालाने यह मत निश्चय कर लिया कि होनहार होती ही है। वहाँ से प्रभु ब्राह्मणग्राम में गये। वहाँ नन्द और उपनन्द इन दो भाईयों के नाम से दो मुहल्ले थे। प्रभुने नन्द के मुहल्ले में प्रवेश किया, प्रभु को नन्दने बहराया। गोशाला उपनन्द के महल्ले में गया था, वहाँ उसे उपनन्दने बासी अन्न खिलाया, इस से क्रोधित हो गोशालाने शाप दिया कि यदि मेरे धर्माचार्य का तपतेज हो तो इस का घर जल जाय। प्रभु की महिमा देखने के लिए समीपवर्ती देवोंने उसका घर जला दिया।

तीसरा चातुर्मास—वहां से प्रभु चंपा नगरी में पधारे। वहाँ द्विमासक्षपण करके तीसरा चातुर्मास रहे। अन्तिम द्विमास का पारणा चंपा के बाहर करके कोल्लाग सन्निवेश में गये। वहाँ एक शून्य घर में ध्यानस्थ रहे। गोशालाने भी उसी घर में रह कर सिंह नामक एक ग्रामणी पुत्र को विद्युन्मती नामा दासी के साथ क्रीड़ा करते देख उसकी हंसी की। उसने भी गोशाला को पीटा। फिर वह प्रभु से कहने लगा—आपने मुझे पिटते हुए को क्यों न छुड़ाया? सिद्धार्थने कहा कि फिर ऐसा न करना, फिर प्रभु पात्तालक तरफ गये। वहाँ भी एक शून्य घर में रहे। वहा भी गोशालाने स्कंदक को अपनी दासी स्कंदिला के साथ क्रीडा करते देख हंसी की और पूर्वोक्त प्रकार से मार खाई। फिर प्रभु कुमारक सन्निवेश में आकर चंपारमणीय नामक उद्यान में ध्यानस्थ रहे। वहां श्री पार्श्वनाथ प्रभु के शिष्य मुनिचंद्र मुनि बहुत से शिष्य परिवार सहित एक कुमार की शाला में रहे हुए थे। उनके साधुओं को देख गोशालाने पूछा कि तुम कौन हो? उन्होंने कहा हम निर्ग्रन्थ हैं। गोशाला बोला—कहा हमारा धर्माचार्य और कहा तुम निर्ग्रन्थ? उन्होंने कहा जैसा तू है वैसा ही तेरा धर्माचार्य होगा। गोशाला गुस्से होकर बोला—मेरे धर्माचार्य के तप तेज से तुम्हारा आश्रम जल जाय। वे बोले—हमें इस बात का डर नहीं है। फिर उसने प्रभु के पास आकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। सिद्धार्थने कहा कि मुनियों का आश्रम नहीं जला करता। रात्रि को जिनकल्प की तुलना करते काउसग्ग में रहे हुए मुनिचंद्र को कुमारने चोर की बुद्धि से मार डाला। मुनिचंद्र अवधिज्ञान प्राप्तकर मृत्यु पाकर स्वर्ग में गये। उसकी

महिमा के लिए देवोंने वहां प्रकाश किया । तब गोशाला बोला कि देखो अब उनका उपाश्रय जल रहा है । सिद्धार्थने उसे फिर सत्य घटना सुनाई तो वह उनके शिष्यों को वहां धमका कर आया । प्रभु फिर चौरों की ओर गये । वहां पर प्रभु और गोशाला को जासूस समझकर पकड लिया । प्रथम गोशाला को अभी हवालत में डाला ही था कि इतने में ही वहांपर उत्पल नामक नैमित्तिये की सोमा और जयन्ती नामा बहनें आ गई, जो संयम लेकर पालने में असमर्थ हो परिव्राजिका बन गई थी । उन्होंने प्रभु को देख पहिचान लिया और उस संकट से बचाया । वहां से प्रभु पृष्टचंपा तरफ गये ।

चौथा चातुर्मास–भगवानने चार मासक्षपण तप करके पृष्टचम्पा में किया । प्रभु को पारणा कराने के लिए जीर्ण सेठ भावना भाता था परंतु पूर्ण सेठ के यहां पारणा हुआ । चौमासा बीतने पर प्रभु कायंगल सन्निवेश में जाकर श्रावस्थी नगरी में पधारे । वहां बाहर के भाग में कायोत्सर्ग ध्यान में रहे । वहां सिद्धार्थने गोशालासे कहा कि आज तूं मनुष्य मांसभक्षण करेगा । गोशाला भी इसका निवारण करने को भिक्षा के लिए बनियों के घर में गया । वहां एक पितृदत्त नामा वणिक रहता था । उसकी स्त्री सदैव मृतक बच्चे को जन्म देती थी । उसे शिवदत्त नामक निमित्तियेने बच्चे जीने का उपाय बतलाया कि तुम्हारे मृतक बालक का मांस खीर में मिलाकर किसी भिक्षुक को खिलाना । उसने उसी विधिपूर्वक गोशाला को खिलाया और घर जला देनेके डरसे घर का दरवाजा भी बदला दिया । गोशाला जब उस बनिये के घर भोजन

कर प्रभु के पास आया तब सिद्धार्थने उसे सब वृत्तान्त सुनाया। विश्वास करने के लिए उसने वमन किया, सही मालूम होने से क्रोधित हो उसका घर जलाने को चल पड़ा। घर न मिलने से प्रभु के नामसे वह मुहल्ला ही जला दिया। वहाँ से प्रभु हरिद्र सन्निवेश से बाहर हरिद्र वृक्ष के नीचे ध्यानमुद्रा में रहे। वहाँ ही कितने एक राहगीर ठहरे हुए थ, उन्हों ने प्रभु के पैरों को चुल्हा बनाकर आग जला कर उस पर खीर पकाई। प्रभु ध्यानमुद्रामें अचल रहने से उनके पैर जल गये। यह देख कर गोशाला वहाँसे भाग गया। वहाँ से प्रभु मगलानामा गाँवमें गये और वासुदेव के मंदिर में ध्यान लगा कर रहे। वहाँ बालकों को डराने के लिए आँखे फाड़ कर चेष्टा करते हुए गोशाला को उनके मावापोंने खूब पीटा और मुनिपिशाच समझ कर छोड़ दिया। वहाँसे प्रभु आवर्त्त ग्राममें बलदेव के मंदिर में ध्यान मुद्रा से रहे। वहाँ पर गोशाला बालकों को डराने के लिए मुखविकार करने लगा, उनके मावापोंने सोचा कि यह पागल है इसको मारने से क्या फायदा? इसके गुरु को ही मारना चाहिये। यह विचार कर जब वे प्रभु को मारने आये तब तुरन्त ही बलदेव की मूर्ति हल उठा कर सामने होगई। इस चमत्कार से वे सब के सब प्रभु के चरणों में पड़ गये। वहाँ से प्रभु चोराक सन्निवेश में पधारे। वहाँ एक मंडपमें भोजन पक रहा था, यह देख गोशाला बारबार नीचे नमकर देखने लगा, तब उन लोगोंने उसे चोर समझकर पीटा। गोशालाने क्रोधित हो प्रभु के नामसे उनका मंडप जला दिया। वहाँसे प्रभु कलम्बुका सन्निवेश प्रति गये। वहाँ पर मेघ और कालहस्ति नामा दो भाई रहते थे। कालहस्तिने प्रभु को

उपसर्ग किया और मेघने उन्हें यह जान कर प्रभुसे क्षमा माँगी। फिर प्रभु क्लिष्ट कर्मों की निर्जरा के लिए लाट देश की ओर पधारे। वहां हिलनादि बहुतसे उपसर्ग मनुष्यों की तरफ से हुए। फिर पूर्णकलश नामा अनार्य ग्राममें जाते हुए मार्ग में प्रभु को दो चोर मिले। वे प्रभु को देख अपशुकन की बुद्धि से तरवार से मारने को दौड़े। उसी वक्त इंद्रने उपयोगसे यह देख उसका निवारण किया।

पांचवा चौमासा—भगवान्‌ने भद्रिका नगरी में किया। और वहां पर चार मासक्षपण का तप किया। चौमासा व्यतीत होने पर क्रमसे तम्बाल ग्राममें पधारे। वहाँ मे पार्श्वनाथ प्रभु के संतानीय नन्दिषेण नामक आचार्य बहुत से परिवार सहित काउस्सग ध्यान से रहे हुए थे। रात्रि के समय कोतवाल के पुत्रने उन्हें चोर समझ कर भालेसे मार दिया। वे अवधिज्ञान प्राप्त कर देवलोक में गये वहां पर भी गोशाला का वृत्तान्त पूर्वोक्त मुनिचंद्र के समान ही समझ लेना चाहिये। वहां से प्रभु कूपिक सन्निवेश पधारे। वहां जासूस की शंकासे कोतवालोंने उन्हें पकड लिया। परन्तु पार्श्वनाथ प्रभु की शिष्या जो बादमें परिव्राजिका होगयी थी विजया और प्रगल्भाने प्रभु को पहचान लेने से छुडाया। वहाँ से गोशाला प्रभु से जुदा होकर दूसरे मार्ग से कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे पांचसौ चोरोंने मामा मामा कह कर पकड लिया और बारीबारी से उसके कंधे पर चढने लगे। थक कर उसने विचारा कि इस से तो प्रभु के ही साथ रहना ठीक था। अब वह फिर प्रभु को ढूंढने लगा। प्रभु भी वैशाली नगरी में जाकर एक शून्य पडी लुहार की शाला में ध्यानस्थ हो खड़े रहे। लुहार छह महीने बीमार

पकड़कर उठा था, उसी दिन औजार लेकर शालामें आया, वहां प्रभु को देख अपशकुन बुद्धि से घण उठा कर उन्हें मारने को लपका तब अवधिज्ञान से जान कर इन्द्रने तुरत वहाँ आकर उसी घण से लुहार को मार डाला। वहां से प्रभु ग्रामाक सन्निवेश में गये। वहां उद्यान में बिभेलक यक्षने प्रभु की महिमा की। वहां से शालीशीर्ष नामक ग्राम के उद्यान में माह मास में ध्यानस्थ रहे हुए प्रभु को त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में अपमानित हुई सी जो व्यन्तरी हुई थी वह तापसीका रूप धारण कर जल से भरी हुई जटाओं द्वारा अन्य से सहन न हो सके एसा शीत उपसर्ग करने लगी। परन्तु फिर भी प्रभु को निश्चल देख कर शान्त हो उनकी स्तुति करने लगी। छठ के तप द्वारा उपसर्ग को सहन करते हुए और विशुद्ध होते हुए प्रभु को उस वक्त लोकावधि ज्ञान उत्पन्न हुआ।

छट्ठा चौमासा–भगवानने भद्रिका नगरी में किया। उस में चौमासी तप किया अर्थात् लगातार चार महिने की तपश्चर्या की। उस समय उन्होंने अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण किये। अब छ मास के बाद फिर से गोशाला आ मिला। प्रभु बाहर के भाग में पारणा कर फिर ऋतुबद्ध मगध भूमि में उपसर्ग रहित विचरे।

सातवाँ चौमासा–भगवान आलभिका में विराजे और चौमासी तप किया। बाहर पारणा कर कुण्डग नामा सन्निवेश में ध्यानस्थ हो वासुदेव के चैत्य में रहे। वहाँ गोशाला भी वासुदेव की मूर्ति से पराङ्मुख हो गुह्य प्रति अभिष्ठान करके खड़ा रहा, इस से लोगोंने उसे खूब पीटा। वहाँ से प्रभु मर्दन नामक गाम में जाकर

ध्यानस्थ हो बलदेवके चैत्य में रहे। वहाँ भी गोशाला बलदेवके मुख में मेहन रख खडा रहा इस से वहाँ भी उसे खूब मार पडी। दोनों जगहों में उसे लोगोंने मुनि जान कर छोड दिया। क्रमसे प्रभु उन्नाग सन्निवेश में गये। मार्ग में सम्मुख आते हुए एक दंतुर पति पत्नी युग्मको देख गोशालाने उनकी हँसी की कि देखो विधाता कैसा चतुर है-दूर देश में वसनेवाली को भी उसके योग्य ही ढूंढ कर जोडी मिला देता है। इस से खिज कर उन दोनोंने उसे पकड कर खूब पीटा और अन्त में हाथ पैर बांध उसे बाँसों की जाल में डाल दिया। बाद में उसे प्रभु का छत्र धरनेवाला समझ कर बन्धन मुक्त कर दिया। वहां से प्रभु गोभूमि तरफ गये।

प्रभुने आठवां चातुर्मास राजगृह में किया। तथा चौमासी तप किया। बाहर पारणा कर फिर अनार्य देश में पधारे।

नववां चातुर्मास वहां किया और चौमासी तप भी किया। प्रभु को वहां नहोत उपसर्ग हुए। फिर दो मास तक प्रभु वहां ही विचरे। वहांसे कूर्मग्राम तरफ जाते हुए मार्ग में एक तिल के पौदे को देखकर गोशालाने प्रभु से पूछा कि यह पौदा सफल होगा या नहीं? प्रभुने कहा कि इसमें रहे हुए पुष्पों के सातों ही जीव मरकर इसी की एक फली में तिलके रूप में पैदा होंगे। यह सुनकर प्रभु का वचन मिथ्या करने के लिए उसने उस तिल के पौदे को उखेड कर एक तरफ रख दिया। उस वक्त नजीक में रहे हुए व्यन्तर देवोंने विचारा कि प्रभु का वचन मिथ्या न होना चाहिये, अतः उन्होंने वहां पर वृष्टि की इससे उस भीगी हुई जमीनमें उस पर

गायका पर आने से वह पौदा स्थिर हो गया। प्रभु कूर्म ग्राम में गये। वहाँ पर वैश्यायन तापसने आतापना ग्रहण करने के लिए अपनी जटायें खुली की हुई थी। उनमें बहुतसी जूवें देखकर गोशालाने उसे "जूओं का घर" कहकर उसकी बारबार हँसी की। इससे उस तापसने क्रोधित हो गोशाला पर तेजोलेश्या छोडी। दयारमके सागर प्रभुने शीतलेश्या द्वारा गोशाले का रक्षण किया।

फिर मखलीपुत्र गोशालेने उस तापस की तेजोलेश्या को देखकर प्रभु से पूछा कि-भगवन्! यह तेजोलेश्या किस तरह प्राप्त होती है? प्रभुने भी अवश्यभावी भाव के योग से सर्प को दूध पिलाने के समान अनर्थ करनेवाली तेजोलेश्या का विधि उसे शिखलाया-हमेशाह आतापनापूर्वक छट्ठ छट्ठ का तप करके एक मुट्ठी उड़द के उबाले हुए दानों से तथा गरम पानी की एक अञ्जलि से पारणा करना चाहिये। इस प्रकार नित्य करनेवाले को छह महिने के बाद तेजोलेश्या प्राप्त होती है। अब वहाँ से सिद्धार्थ नगरको जाते हुए मार्ग में वहीं स्थान आने से गोशालेने कहा-वह तिल का पौदा सफल नहीं हुआ। प्रभुने कहा-देख सामने वही पौदा है, वह सफल हुआ है। गोशालाने प्रभु वचनों पर श्रद्धा न रखते हुए उस तिल की फली को फाड़कर देखा, सचमुच ही उसमें सात तिल के दाने देख 'उसी शरीर में वेही प्राणी फिरसे परावर्तन कर पैदा होते हैं, ऐसी मति और नियति उसने निश्चय करली। गोशाला अब प्रभु से जुदा हो श्रावस्थी नगरी में एक कुँभार की शाला में रहकर प्रभु के बतलाये हुए उपाय से तेजोलेश्या को साध कर और दीक्षा छोड़े हुए श्रीपार्श्वनाथसंतानीय

शिष्य के पास से कुछ अष्टांग जानकर अहंकार से लोगों में अपने आपको सर्वज्ञ प्रसिद्ध करने लगा ।

दशवां चौमासा प्रभुने श्रावस्थी नगरी में किया और वहाँ पर उन्होंने विचित्र प्रकार का तप भी किया ।

संगम देवता के घोर उपसर्ग ।

इस प्रकार अनुक्रम से प्रभु बहुत म्लेच्छोवाली दृढभूमि में पधारे । वहाँ पेढाल ग्राम के बाहर पोलास के चैत्य में अठ्ठम तपपूर्वक प्रभु एक रात्रि की प्रतिमा ध्यान लगा कर रहे । इस समय इंद्रने अपनी सभा में देवों के समक्ष प्रभु की प्रशंसा करते हुए कहा कि—वीरप्रभु के चित्त को चलायमान् करने के लिए तीन लोक के निवासी भी समर्थ नहीं हैं । इस तरह प्रभु की प्रशंसा सुनकर संगम नामक मिथ्यादृष्टि सामानिक देव ईर्षा से इंद्र के सामने प्रतिज्ञा करने लगा कि—मैं उन्हें क्षणवार में चलायमान् कर दूंगा । यह प्रतिज्ञा कर उसने तुरन्त ही प्रभु के पास आकर प्रथम तो धूल की वृष्टि की जिस से प्रभु के आँख, नाक, कान आदि के विवर–छिद्र बन्द हो जाने से वे श्वास लेने को भी असमर्थ हो गये । फिर वज्र के समान तीक्ष्ण मुखवाली चींटियाँ बनाकर प्रभु के शरीर पर छोड़ी । उन्होंने प्रभु का शरीर छलनी के समान छिद्रवाला कर दिया । एक तरफ से प्रवेश कर दूसरी ओर से निकलने लगीं । इसी प्रकार फिर तेज मुखवाले डाँस, तीक्ष्ण मुखवाली घीमेलिका, (कीडियां) बिच्छु, न्योले, सर्प, चूहे आदि के भक्षण से, फिर हाथी, हथनियाँ बनाकर उनके सूँड द्वारा आघातों से

गरा पैरों के मर्दन से, फिर पिशाचादि का रूप कर उस के अट्टहास्य से, सेर के रूप धारण कर नखों के विदारण आदि से, सिद्धार्थ और त्रिशला के रूपद्वारा करुणाजनक विलाप करने आदि से उसने अनेक अत्यन्त घोर उपसर्ग किये। सैन्य बनाकर प्रभु के चरणों पर बरतन रख नीचे अग्नि सुलगा कर रसोई करने से, चाण्डालों द्वारा प्रभु के कानों और भुजाओं की जड़ में तीक्ष्ण चोंचवाले पक्षियों के पिंजरे लटकाये, ये प्रभु को चोंच मार कर भक्षण करते हैं। फिर ऐसा पवन चलाया कि पर्वतों को भी उखाड़ फेंके, वह प्रभु को उछाल उछाल कर फेंकता है। गोल पवन चलाया जो प्रभु को चक्र के समान भ्रमाता है। फिर उसने प्रभु पर हजार भार प्रमाणवाला कालचक्र छोड़ा कि-जिससे मेरुपर्वत के शिखर भी चूर्ण हो जायें। प्रभु उस से गोडों तक जमीन में धस गये। फिर उसने प्रभातकाल बनाकर कहा-हे देवार्य ! आप अभीतक क्यों खड़े हैं ? प्रभु तो ज्ञान से जानते थे कि अभी रात्रि बाकी है। फिर देवऋद्धि बनाकर कहा-हे महर्षे ! आप को स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा हो तो माँग लो। इस से भी प्रभु को निश्चल देख उसने देवांगनाओं के हावभावद्वारा उपसर्ग किया। इस प्रकार उसने एक रात्रि में बीस उपसर्ग किये, परन्तु उनसे प्रभु जरा भी विचलित न हुए। यहाँ कवि कहते हैं कि " बल जगद्ध्वंसन रक्षणक्षमं, कृपा च सा सङ्गमके कृतागसि। इतीव सञ्चित्य विमुच्य मानसं, रुषेव रोष स्तव नाथ ! निर्ययौ ॥ १ ॥ हे प्रभो ! आप का बल जगत का नाश और रक्षण करने में समर्थ है तथापि अपराधी संगम देव पर जो आप की ऐसी दया रही इसी कारण मानो आप पर रोष करके

आप के अन्दर से क्रोध निकाल कर चला गया। उसने छह महीनों तक प्रभु को शुद्ध आहार न मिलने दिया। छह मास बीतने पर अब संगम देव चला गया होगा यह समझकर एक दिन वज्र नामक ग्राम के गोकुल में गौचरी गये। परन्तु वहाँपर भी उस देवकृत अनेषणीय आहार प्रभु ज्ञान से जानकर वापिस लौट आये और ग्राम बाहर ध्यानस्थ मुद्रा में रहे। फिर इतने दिन पीछे पड़ने पर भी उस देवने अवधिज्ञान से लेशमात्र भी प्रभुको विचलित न देख तथा विशुद्ध परिणामवाले देख खिसियाना होकर शक्रेंद्र के डर से प्रभु को वन्दन कर सौधर्म देवलोक का रस्ता पकड़ा। उसी गोकुल में फिरते हुए प्रभु को एक बुढ़िया ग्वालनने खीर का आहार दान दिया इस से वहाँ पंच दिव्य प्रगट हुए।

इधर जबतक प्रभु को उपसर्ग हुए तबतक सौधर्म देवलोक में रहनेवाले समस्त देव और देवियाँ आनन्द एवं उत्साह रहित रहे। इंद्र भी गीत नाटकादि तजकर "इन उपसर्ग का मैं ही कारण बना हूँ क्यों कि मेरी की हुई प्रभुप्रशंसा सुनकर ही इस दुष्ट संगमने प्रभु को उपसर्ग किये हैं" यह विचार कर अत्यन्त दुःखितवाला हो हाथ पर मुख रखकर दीनदृष्टि युक्त उदासीनता में बैठा रहा। अब भ्रष्ट प्रतिज्ञा तथा श्याममुखवाले नीच संगम को आता देख इंद्रने पराङ्मुख होकर देवों से कहा—हे देवो! यह दुष्ट कर्मचाण्डाल पापी आरहा है, इसका दर्शन भी महापापकारी है, इसने हमारा महान् अपराध किया है, क्यों कि इसने हमारे पूज्यस्वामी की कदर्थना की है, वह पापात्मा हमसे तो न डरा परन्तु पाप से भी न डरा इस लिए ऐसे दुष्ट और अपवित्र देव

को शीघ्र ही स्वर्ग से बाहर निकाल दो। इस प्रकार इद्र की आज्ञा होने से सुभट देवोंने निर्दयतयापूर्वक मुष्टी यष्टी से ताड़ना–तर्जना कर तथा दूसरे देवों द्वारा अगुली मोड़ने आदि के आक्रोश को सहन करता हुआ, चोर के समान शकित होकर इधर उधर दखता हुआ, बुझे हुए अगार के समान निस्तेज होकर परिवार रहित एकला हड़काये हुए कुत्ते के समान देवलोक में से निकाल दिया हुआ सगम दव मेरुपर्वत क शिखर पर अपना शेष एक सागरोपम का आयु पूर्ण करेगा। उसकी अग्रमहिषियां भी इद्र की आज्ञा से दीनमुख होकर अपने स्वामी के पीछे चली गई। फिर आलभिका नगरी में हरिकान्त तथा श्वेताम्बिका में हरिसह नामक दो विद्युतकुमार के इद्र प्रभु को कुशल पूछने आये। श्रावस्ती नगरी में इद्रन स्कदक की प्रतिमा म प्रवेश कर प्रभु को नमस्कार किया, इससे प्रभु की बड़ी महिमा हुइ। वहाँ से कोशाम्बी नगरी में प्रभु को वन्दन करने के लिए सूर्य चद्रमा आये। वाणारसी में इद्र, राजगृही में ईशानेंद्र तथा मिथिला नगरी म जनक राजाने और धरणेंद्रने प्रभु को कुशल पूछा।

ग्यारवा चौमासा प्रभु का वैशाली नगरी मे हुआ। वहाँ भूतेंद्रने प्रभु को कुशल पूछा। यहाँ से प्रभु सुसुमार नामक नगर की ओर गये। वहाँ चमरेंद्र का उत्पात हुआ। वहाँ स क्रम से प्रभु कोशाम्बी नगरी में गये। वहाँ पर शतानिक नामक राजा था, उसकी मृगावती नामा रानी थी, विजया नामा प्रतिहारी थी, वादी नामक धर्मपालक था, गुप्त नामा अमात्य था, उसकी नन्दा नामकी स्त्री थी, वह श्राविका थी और मृगावती की सखी थी। वहाँ प्रभुने पोष शुदि प्रतिपदा क दिन अभिग्रह धारण किया।

भगवान का विलक्षण अभिग्रह

द्रव्य से छाज के कौने में पड़े हुए उड़द के बाँकले हों, क्षेत्र से देनेवाले के पैर देहली के अन्दर और एक पैर देहली से बाहर रखकर खड़ी हों, काल से जब सब भिक्षाचर निवृत्त होचुके हों, भाव से राजपुत्री पर दासपन प्राप्त हुआ हो, उसका मस्तक मुंडित हुआ हो, पैरों में बेड़ी पड़ी हों, रुदन करती हो और जिसे अट्ठम का तप भी हो यदि ऐसी कोई स्त्री आहार देगी तो ग्रहण करूंगा। ऐसा घोर अभिग्रह लेकर प्रभु रोज भिक्षा के लिए जातेहैं परंतु अमात्यादियों के उपाय करने पर भी अभिग्रह पूर्ण नहीं होता।.

उस वक्त शातानिक राजाने चंपानगरी का भंग किया, वहाँके दधिवाहन राजा की धारिणी नामा रानी और उसकी पुत्री वसुमती इन दोनों को किसी एक सुभटने कैद कर लिया। धारिणी को जब उसने यह कहा कि तुझे मैं अपनी पत्नी बनाऊंगा तब वह तो जीभ को चबाकर मृत्यु को प्राप्त हो गई, परन्तु वसुमती को पुत्री कह आश्वासन दे कौशाम्बीमें लाकर चौराहमें रख बेचनी शुरु की। वहाँ के धनावह नामक सेठने उसे मोल खरीद कर और चंदना नाम रखकर पुत्रीतया रक्खी। एक दिन चंदना सेठ के पैर धुला रही थी, उस वक्त उसकी चोटी पृथ्वी पर लटकती थी, सेठने अपने हाथ से उठाकर उसके केश ठीक कर दिये। यह देख मूलानामा सेठानीने विचारा कि मैं अब बूढी होने आई हूँ इस लिए यह युवती बालिका इस घर की सेठानी बनेगी। इस विचार से उसने चंदना का मस्तक मुंडाकर, पैरों में बेड़ी डालकर, उसे गुप्त स्थान में तालेके अन्दर

रख आप कहीं चली गई। खोज करने पर भी मुश्किल से सेठ को चौथे दिन चदना का पता चला। वह ताला खोल उसी प्रकार उसको देहली पर बैठाकर तथा एक छाज म पड़े हुए उड़द के बाँकले खाने क लिए देकर उसके पैरों की बेड़ी कटवान क वास्ते लुहार को बुलाने चला गया उस वक्त कुलीन चदनाने विचारा–यदि इस वक्त कोई भिक्षाचर आजावे और उसे कुछ देकर खाऊ तो ठीक हो। पुण्योदय से उसी वक्त अभिग्रहधारी श्री वीरप्रभु पधारे। चदना हर्षित हो बोली–प्रभो! ग्रहण करो। परन्तु प्रभु अभिग्रह म सिर्फ रोना न्यून देख वापिस चले। चदना प्रभु को वापिस लौटते देख इस विचार से कि प्रभु यहाँ तक आकर भी कुछ लिये बगैर ही पीछे जा रहे हैं खेदपूर्वक रोन लगी। फिर प्रभुने अपना अभिग्रह सपूर्ण हुआ देख वापिस फिर क चदना क हाथ से उड़द क बाँकुल ग्रहण किये। इसतरह पाच दिन कम छ महिन में भगवान का पारण हुआ। यहाँ पर कवि कहता है कि—

चदना सा कथ नाम, बालेति प्रोच्यते बुद्धै'। मोक्षमादत्त कुल्मापैर्मंहावीर प्रतार्यया ॥ १ ॥

पडित लोग चदना को बाला क्यों कहते हैं? क्यों उसने तो उड़द क बाँकुलों द्वारा प्रभु वीर को ठगकर मुक्ति ले ली। उसवक्त वहाँ पच दिव्य प्रगट हुए, इन्द्र भी आया, देवता नाचने लगे, चदनाके मुडित मस्तक पर केश होगये, पैर की बेड़िया ही झाझर बन गईं, मृगावती मौसीभी वहा आमिली। तथा सम्बन्ध मालूम होने से वसुधारा म पड़ा हुआ धन शतानीक लेने लगा उसको निवारण कर चदना की आज्ञा से धनावह को

वह धन देकर और यह वीर प्रभु की प्रथम साध्वी होगी यों कहकर इंद्र चला गया । फिर अनुक्रम से जृंभिका ग्राम में इंद्रने प्रभु को नाट्यविधि दिखलाकर कहा आपको अब इतने दिन में केवलज्ञान की उत्पत्ति होगी । मेंढिक नामा ग्राम में चमरेंद्रने प्रभु को कुशल पूछा । वहां से प्रभु चम्पानगरी में पधारे ।

— अंतिम उपसर्ग —

बहारवां चौमासा प्रभु षण्मास नामक ग्राम जाकर बाहर उद्यान में ध्यान लगाकर खड़े रहे । प्रभु के पास एक ग्वाल अपने बैल छोड़कर ग्राम में चला गया । फिर आकर उसने प्रभु से पूछा कि–हे देवार्य ! मेरे बैल कहाँ हैं ? प्रभु के मौन रहने से क्रोधित हो उसने प्रभु के कानों में बाँस की सलाकायें ऐसी ठोक दी जिस से वे अन्दर परस्पर एक दूसरी से मिल गईं और बाहर से अग्रभाग कतर देने से बेमालूम कर दीं । प्रभुने त्रिपृष्ट के भव में जो शय्यापालक के कानों में तपा हुआ सीसा डालकर कर्म उपार्जन किया था वह अब वीर के भव में उदय आया था । वह शय्यापालक भी अनेक भव कर के यह ग्वाला बना था । वहाँ से प्रभु मध्यम अपापा में गये । वहाँपर सिद्धार्थ नामक वणिक के घर भिक्षा के लिए आये हुए प्रभु को देख खरक नामा वैद्यने उन्हें शल्यसहित जाना । फिर उस वणिकने वैद्य को उद्यान में साथ लेजाकर उन सलाकाओं को प्रभु के कानों में से संडासी से खेंच निकालीं । उनके निकालते समय प्रभुने ऐसी आराटी की जिस से सारा उद्यान भयंकर-सा बन गया । वहाँपर लोगोंने एक देवमंदिर भी बनवाया । फिर प्रभु संरोहिणी नामक

औषधि से निरोगी हो गये। तथा वह वैद्य और वह वणिक मरकर स्वर्ग में गये। ग्वाला मरकर सातवीं नरक में गया। इस प्रकार ग्वाले से ही उपद्रव शुरू हुए और ग्वाले से ही समाप्त हुए।

पूर्वोक्त उपसर्गों में जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट विभाग हैं। कटपूतना का शीतोपसर्ग जघन्य से उत्कृष्ट समझना चाहिए, कालचक्र मध्यम में उत्कृष्ट जानना और कानों से सलाकाओं का निकालना उत्कृष्ट में उत्कृष्ट समझना चाहिए उन सब उपसर्गों को श्रीवीरप्रभुने सम्यक् प्रकार से सहन किया। अब श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु अणगार हुए, ईर्यासमिति-गमनागम में उत्तम प्रवृत्तिवाले हुए। भाषासमितिवाले तथा एषणा समिति-बैतालिस दोष रहित भिक्षा ग्रहण करने में उत्तम प्रवृत्तिवाले हुए। आदानभंडमतनिक्षेपणा समिति-उपकरण, वस्त्र, मिट्टी के बरतन, पात्र वगैरह ग्रहण करने, रखने उठाने आदि में उपयोगयुक्त प्रवृत्ति वाले। पारिष्ठापनिका समिति-विष्टा, मूत्र, शुक, श्लेष्म, शरीर का मैल इत्यादि को त्यागने में सावधान हुए। यद्यपि प्रभु को मल और श्लेष्म आदि न होने से यह सम्भवित नहीं तथापि पाठ अखण्डित रखने के लिए ऐसा कहा गया है। इस प्रकार प्रभु मन, वचन और शरीर की उत्तम प्रवृत्तिवाले हुए। इस गुप्त एव गुप्तेंद्रिय तथा वसति आदि नव वाडों स सुशोभित ब्रह्मचर्य को पालते हैं। अत गुप्त ब्रह्मचारी हुए, तथा क्रोध, मान, माया और लोभ रहित एव अन्तर वृत्ति से शान्त, बहिर्वृत्ति से प्रशान्त और दोनों वृत्तियों से उपशान्त तथा तथा सर्व प्रकार सताप से रहित हुए। हिंसादि आश्रवद्वार की विरति से पापकर्मबन्धनों से रहित हुए। ममता

रहित तथा द्रव्यादि से रहित, छिन्नग्रंथ–सुवर्णादि कि ग्रंथि से रहित हुए। द्रव्य भावरूप मल के निर्गमन से निरुपमेय हुए, उस में द्रव्यमल–शरीर से उत्पन्न होनेवाला मैल तथा भावमल–कर्म से उत्पन्न होनेवाला मल उन दोनों से रहित हुए। जिस तरह काँसी का पात्र पानी से मुक्त रहता है वैसे ही प्रभु भी स्नेहादि जल से विमुक्त रहता है। शंख के समान रागादि से न रंगे जाने के कारण निरंजन हुए। जीव के समान सब जगह स्खलना रहित गति करनेवाले, आकाश के समान निरालम्बन, वायु के समान अप्रतिबद्ध विहारी, शरद् ऋतु के जल के समान निर्मल, विशुद्ध हृदयवाले, कमलपत्र पर जैसे लेप नहीं लगता त्यों प्रभु को भी कर्म लेप नहीं लगता। कछवे के समान गुप्तेंद्रिय, गेंडे के सींग के समान मात्र एकले ही, पक्षी के समान परिवार रहित, भारंड पक्षी के समान प्रमाद रहित, भारंड पक्षी के युग्म का एक ही शरीर होता है परन्तु दो मुख होने से दोही गरदन होती है, पैर तीन होते हैं, मनुष्य की भाषा बोलनेवाला होता है, दोनों मुख से खाने की इच्छा होने से उसकी मृत्यु होजाती है अतः वह अत्यन्त अप्रमादी सावधान रहकर जीता है। हाथी के समान कर्मरूप शत्रुओं को हणने में समर्थ, वृषभ के समान अंगीकृत व्रतभार को वहन करने में समर्थ परिषहादिरूप पशुओं से अजित सिंह के समान, मेरुपर्वत के समान अचल, समुद्र के समान गंभीर, हर्ष शोक के प्रसंगों में समानभावधारी, चंद्रमा के समान शीतल, सूर्य के समान देदीप्यमान तेजस्वी, पृथ्वी के समान सहनशील। घी आदि से भली प्रकार सिंचित किये हुए अग्नि के समान तेज से जाज्वल्यमान हुए प्रभु को

किसी भी जगह पर प्रतिबन्ध नहीं है, यह प्रतिबन्ध निम्न चार प्रकार का होता है—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। उसमें भी द्रव्य से सचित्त, अचित्त और मिश्र यह तीन प्रकार का होता है। सचित्त द्रव्य—स्त्री आदि। अचित्त द्रव्य—आभूषणादि तथा मिश्र द्रव्य—आभूषणादि से युक्त स्त्री आदिक। क्षेत्र से—किसी ग्राम में, नगर में, अरण्य—जंगल में, धान्य उत्पन्न होनेवाले क्षेत्र में, खल—धान्य को छिलके से जुदा करने के स्थान में, घर, या घर के आंगन में अथवा आकाश मे, काल से—समय जैसे अतिसूक्ष्म काल में, आवली—असंख्य समयोंवाली आवली मे, तथा श्वासोश्वासवाले काल में, स्तोक—सात उच्छ्वासप्रमाणवाले काल में, क्षण—घड़ी के छठवें भाग प्रमाणवाले काल में, लव—सात स्तोकप्रमाणवाले काल में, एवं मुहूर्त, रात्रि, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन अथवा वर्ष पर्यन्त तकके काल में, तथा युगादि दीर्घकाल में, अब भाव से क्रोध में, मान मे, माया में, लोभ में, भय में, हास्य में, प्रेम में, द्वेष में, क्लेश में, मिथ्याकलंक देने में, चुगली में, दूसरों की निन्दा में, मोहनीय के उदय से पैदा होती हुई रति अरति में, कपटसहित मृषावाद में, तथा मिथ्यात्वरूपी अनेक दुःखोंके हेतुरूप शल्य में। इस प्रकार पूर्वोक्त स्वरूपवाले द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में, प्रभुको कहीं पर भी प्रतिबन्ध नहीं था।

श्री महावीर प्रभु वर्षाकाल के चार मास छोड़कर शेष आठ मास में ग्राम में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि तक रहते थे। प्रभु कुहाड़े का घाव और चंदन का लेप करनेवाले पर भी समानभाव रखनेवाले थे। तृण, मणि, सुवर्ण और पत्थर में एक समान दृष्टि रखनेवाले थे, सुख दुःख में भी समान दृष्टिवाले, इस लोक

परलोक में प्रतिवन्ध रहित, एवं जीवित और मरण में इच्छा रहित थे। तथा संसाररूप समुद्र के पारको पाये कर्मरूप शत्रुओं का नाश करने के लिए उद्यमवान् होकर प्रभु विचर रहे थे।

इस प्रकार विचरते हुए अनुपम ज्ञान से, अनुपम दर्शन से, अनुपम चारित्र से, आलय-स्त्री, नपुंसकादि के संसर्ग से रहित स्थान में रहने से, अनुपम विहार से, अनुपम पराक्रम से, अनुपम सरलता से, अनुपम निरभिमानता से, अनुप लाघवता से, अनुपम क्षमाशीलता से, अनुपम निर्लोभता से, अनुपम मनोगुप्ति आदि से, अनुपम संतोष से, एवं सत्य संयम तथा बारह प्रकार के तपाचरण से और अनुपम मोक्षमार्ग से, अर्थात् पूर्वोक्त गुणों के समूह से आत्मा का ध्यान करते हुए प्रभु महावीर को बार वर्ष बीत गये। इतने समय में प्रभुने जो तप किया वह इस प्रकार था।

छ मासी तप १	छ मासी तप १ पाच दिन न्यून	चार मासी तप ९	तीन मासी तप २	ढाई मासी २	दो मासी ६	डेढ़ मासी २
मासक्षपण १२	पक्षक्षपण ७२	भद्र प्रतिमा दिन दो २	महाभद्र प्रतिमा दिन ४	सर्वतोभद्र प्रतिमा दिन १०	छट्ठ २२९	अट्ठम १२
पारणा दिन ३४९	दीक्षा दिन १	सर्वाग्रं वर्ष १२ मास ६ दिन १५				

उपरोक्त सर्व तप प्रभुने पानी रहित किया था और उस साढ़े बारह वर्ष के दरम्यान एक उपवास या

नित्यप्रति भोजन भी प्रभुने नहीं किया था। अब केवलज्ञान का वर्णन करते है।

भगवान् को केवलज्ञान की प्राप्ति

जब भगवान की दीक्षा का तेरहवां वर्ष चल रहा था। तब ग्रीष्मकाल के दूसरे महिने में चौथे पक्ष में वैशाख शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन पूर्व दिशा की तरफ छाया जाने पर प्रमाण को प्राप्त हुई, पिछली पोरसी के समय, सुव्रत नामा दिन में, विजय नामा मुहूर्त्त में, जृम्भिक नामा ग्राम नगर के बाहर, ऋजुवालुका नामा नदी के किनारे, व्यावृत्त नामक एक पुराणे व्यन्तर के मंदिर के बहुत दूर भी नहीं और अति नजदीक भी नहीं, श्यामक नामा कौटुम्बिक के खेतमें, शाल नामा वृक्ष के नीचे, जैसे गाय दूहने बैठते हैं उस तरह के उत्कटिक आसनसे बैठकर आतापना लेते हुए, जलरहित छट्ठ की तपस्या करते हुए, तथा चन्द्रमा के साथ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग आजानेपर, ध्यानान्तर में वर्तमान अर्थात् शुक्लध्यान के जो चार भेद हैं– प्रथम पृथक्त्ववितर्कवाला सविचार, दूसरा एकत्ववितर्कवाला अविचार, तीसरा सूक्ष्मक्रियअप्रतिपाति तथा चौथा उच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति, इनमें से प्रथम के दो भेदोंवाले ध्यान को ध्याते हुए प्रभुको अनन्त वस्तु विषयक अनुपम, आवरणरहित सपूर्ण तथा सर्व अवयवोंसहित केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुए।

इस प्रकार केवलज्ञान उत्पन्न होने पर श्रमण भगवान श्रीमहावीर प्रभु अर्हन् हुए अर्थात् अशोकवृक्षादि प्रातिहार्यसे पूजने योग्य हुए। राग द्वेष को जीतनेवाले जिन हुए। कवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए। दव,

मनुष्य और असुर सहित लोक के पर्यायों के जानने तथा देखनेवाले हुए, तथा सर्व लोकमें रहे हुए सर्व प्राणियों की गति, आगति, उत्पत्ति, तथा सर्व जीवोंद्वारा मनसे चिन्तन किया, वचनसे बोला हुआ और कायासे आचरण किया हुआ, भोजन फलादि, चोरी आदि कार्य, मैथुनसेवनादि गुप्त कार्य, तथा प्रगट कार्य, सो सब जीवों का सब कुछ जानते हुए भगवान विचरते हैं। तीन लोक के सर्व पदार्थ हाथ में लिए हुए आंवले के फल के समान देखनेवाले होने के कारण उनके सामने कोई ऐसी वस्तु या भाव नहीं कि जिसे वे न जानते हों। कमसे कम करोड देव उनकी सेवामें रहने से जो एकान्त के वास को कभी प्राप्त नहीं होते ऐसे प्रभु, मन, वचन, काया के योगोंमें यथायोग्य तथा प्रवर्तमान संसार के समस्त प्राणियों के सर्व भावों को जानते हुए और देखते हुए विचरते हैं। तथा सर्व अजीव-धर्मास्तिकाय आदि के भी सर्व पर्यायों को प्रभु जानते हैं।

गणधर देवों की दीक्षा

उस समय एकत्रित हुए देव मनुष्य असुरों के प्रति पत्थरवाली जमीन पर पड़े हुए वर्षात के समान क्षण वार निष्फल देशना देकर प्रभु आपापापुरी के महसेन नामक उद्यान में पधारे। वहाँ यज्ञ करते हुए सोमिल नामा ब्राह्मण के घर पर बहुत से ब्राह्मण एकत्रित हुए थे। उनमें इंद्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीन सगे भाई थे। वे चौदह विद्या में प्रवीण थे। अनुक्रमसे उनमें पहले को जीव का, दूसरे को कर्म का तथा तीसरे को

वही नीव और वही शरीर का सदेह था। उनके प्रत्येक के साथ पाँचसौ पाँचसौ शिष्यपरिवार था। इसी तरह व्यक्त और सुधर्मा नामा दो ब्राह्मण उतने ही परिवारवाले एव वैसे ही विद्वान थे। क्रमसे पहले को पचभूत हैं या नहीं ? और दूसरे को जो जैसा है वह वैसा ही होता है। उन्हें भी ये सदेह थे। वैसे ही विद्वान् मडित और मौर्यपुत्र दो भाइ थे। उनके प्रत्येक का साढे तीन सौ साढे तीनसौ शिष्यपरिवार था। क्रमसे उनमें पहले को बन्ध मोक्ष का और दूसरे को देवों के सम्बन्ध में सदह था। इसी तरह अकपित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास नामक चार ब्राह्मण थे उनका प्रत्येक का तीनसौ तीनसौ परिवार था। अनुक्रम से उनमें नारकी का, दूसरे को पुण्य का, तीसरे को परलोक का तथा चौथे को मोक्ष का सदेह था। इस प्रकार उन उन ग्यारह ही विद्वानों को हरएक को एक एक सदेह था। परन्तु अपने सर्वज्ञपन के अभिमान की क्षति के भय से एक दूसरे को पूछते न थे। ऐसे उनके परिवार के चौवालीस सौ ब्राह्मण तथा अन्य भी उपाध्याय, शकर, ईश्वर, शिवजी, जानी, गगाधर, महीधर, भूधर, लक्ष्मीधर, पण्ड्या, विष्णु, मुकुन्द, गोविन्द, पुरुषोत्तम, नारायण, दुवे, श्रीपति, उमापति, गणपति, जयदेव, व्यास, महादेव, शिवदेव, मूलदेव, सुखदेव, गगापति, गौरीपति, त्रिवाड़ी, श्रीकठ, नीलकठ, हरिहर, रामजी, बालकृष्ण, यदुराम, राम, रामाचार्य, राउल, मधुसूदन, नरसिंह, कमलाकर, सोमेश्वर, हरिशकर, त्रिकम, जोशी, पूनो, रामजी, शिवराम, देवराम, गोविन्दराम, रघु राम और उदयराम आदि बहुत से ब्राह्मण वहीं एकत्रित हुए थे।

उस वक्त प्रभु को वन्दन करने के लिए आते हुए सुर और असुरों को देखकर वे ब्राह्मण विचारने लगे कि अहो ! इस यज्ञ की महिमा कैसा है ? ! जहाँ पर साक्षात् देवता आ रहें हैं। परन्तु यज्ञमंडप तजकर उन्हें वाह्योद्यान में प्रभु की तरफ जाते देख उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। मनुष्यों से यह सुनकर कि वे सब सर्वज्ञ प्रभु को वन्दन करने जा रहे हैं। इंद्रभूति क्रोधित हो विचारने लगा–मेरे सर्वज्ञ होते हुए क्या दूसरा भी कोई अपने आपको सर्वज्ञ कहलाता है !!! कान से न सुनने योग्य ऐसा कटु वचन मुझ से कैसे सुना जाय ? कदाचित् कोई मूर्ख मनुष्य तो धूर्त्त से ठगा जासकता है परन्तु इसने तो देवताओं को भी ठग लिया है जो वे देव यज्ञमंडप और मुझ सर्वज्ञ को छोड़कर वहाँ जा रहे हैं! देवो, तुम क्यों भ्रान्ति में पड़ गये; जो तीर्थजल को त्यागनेवाले कौवों के समान, तालाव को त्यागनेवाले मेंडक के समान, चंदन को त्यागनेवाली मक्खियों के समान, श्रेष्ठ वृक्ष को त्यागनेवाले ऊँटों के समान, खीरान्न को त्यागनेवाले सूवरों के समान और सूर्यप्रकाश को त्यागनेवाले उल्लुओं के समान यज्ञ को त्याग कर वहाँ चले जा रहे हो ! अथवा जैसा वह सर्वज्ञ होगा वैसे ही ये देव हैं अतः समान ही योग मिल गया है। कहा भी है कि भ्रमर आम्रवृक्ष के मौर पर गुंजारव करता है और कौवे आतुर होकर नीम के मौर पर जाते हैं। तथापि मैं उसके सर्वज्ञपन के आरोप को सहन न करूँगा। क्या आकाश में दो सूर्य रह सकते हैं ? या एक म्यान में दो तलवार रह सकती हैं ? इसी तरह मैं और वह दोनों सर्वज्ञ कैसे रह सकते हैं ?

फिर उसने प्रभु को वन्दन कर वापिस लौटते हुए मनुष्यों को हँसीपूर्वक पूछा–अरे लोगो ! तुमने उस सर्वज्ञ को देखा ? वह कैसा रूपवान् है ? उसका क्या स्वरूप है ? लोगोंने कहा कि—

"यदि त्रिलोकी गणनापरा स्या–त्तस्या समाप्तिर्यदि नायुष स्यात् ।
पारेपरार्द्धं गणितं यदि स्याद्गणेय निःशेषगुणोऽपि स स्यात् ॥ १ ॥"

यदि तीन लोक के मनुष्य गिनने लगें, उनके आयु की समाप्ति न हो और यदि परार्धसे ऊपर गिनती हो जाय तो वह उस सर्वज्ञ के गुणों को गिन सकता है, अन्यथा नहीं । यह सुनकर इन्द्रभूति विचारने लगा–सचमुच ही यह तो कोई महाधूर्त है, कपट का मंदिर है, अन्यथा इतने लोगों को भ्रम में नहीं डाल सकता । अब मैं इस सर्वज्ञ को क्षणभर भी सहन नहीं कर सकता । अन्धकार के समूह को दूर करनेके लिए सूर्य किसी की प्रतीक्षा नहीं कर सकता । अग्नि हाथ के स्पर्श को, क्षत्रिय शत्रु के आक्षेप को, सिंह अपनी केशावली पकड़नेवाले को कदापि सहन नहीं कर सकता । मैंने वादियों के बहुतसे इन्द्रों को बोलते बंद कर दिया है तो यह बेचारा घरमें ही अपने को शूर माननेवाला मेरे सामने क्या चीज है ? जिस अग्निने बड़े २ पर्वतों को भस्म करडाला उसके सामने वृक्ष क्या चीज है ? जिसने हाथियों को गिरा दिया ऐसे प्रचण्ड पवन के सामने रुई की पूनी क्या वस्तु है ? तथा मेरे भय से गौड़ देश में जन्मे हुए पंडित दूर देशों में भाग गये, तथा गुजरात के पंडित तो मेरे भय से जरजरित हो त्रासित हो गये हैं, मालव देश के पंडित तो नाम सुनकर ही भाग गये, तैलंग देश के

पंडित तो मेरे डर से कृश शरीरवाले हो गये हैं, लाट देश के पंडित मारे डर के विचारे कहीं दूर भाग गये तथा द्राविड़ देश के चतुर पंडित मेरी प्रशंसा सुनकर ही लज्जातुर होगये हैं! अहो आश्चर्य! जब मैं वादियों का इच्छातुर बना हूं तब मेरे लिये जगत में वादियों का दुष्काल पड़ गया! फिर मेरे सामने यह कौन चीज है जो अपने सर्वज्ञपन के मान को धारण करता है? ये विचार कर जब वह प्रभु के पास आनेको उत्सुक हुआ तब उसे अग्निभूतिने कहा–हे बन्धु! उस वादी कीट के पास आपको जाने की क्या आवश्यकता है? मैं वहाँ जाता हूं। क्यों कि एक कमल को उखेड़ फेंकने के लिए क्या हाथी जोड़ने की जरुरत होती है? इंद्रभूति बोला–यद्यपि उसे मेरा एक शिष्य भी जीत सकता है तथापि वादी का नाम सुनकर यहाँ रहा नहीं जाता। जैसे पीलते हुए कोई एक तिल का दाना रहजाता है, दलते हुए अनाज का एक दाना रहजाता है, ज्यों अगस्ति द्वारा समुद्र पीते हुए सरोवर रह जाय तथा काटते हुए कोई छिलका रह जाय वैसे ही यह मेरे लिए हुआ है। तथापि मैं व्यर्थ सर्वज्ञ वादी को सहन नहीं कर सकता। इस एक के न जीतने पर मेरी जीत ही नहीं गिनी जासकती। सती स्त्री एक दफा भी अपने शीलव्रत से भ्रष्ट होवे तो वह सदैव असती ही कही जाती है। आश्चर्य है कि तीन जगत में मैंने हजारों वादीयों को जीत लिया है परन्तु खिचड़ी की हँड़िया में जैसे कोई कोकडु मूंग का दाना रह जाता है त्यों यह एक वादी रह गया है। यदि मैं इसे न जीतूं तो जगत को जीतने से प्राप्त किया मेरा यश भी नष्ट हो जायगा। क्यों कि शरीर में रहा हुआ एक शल्य शरीर के नाश का हेतु बनता है। क्या जहाज में पड़ा

हुआ छिद्र उस डबो नहीं देता ? त्यों ही एक ईंट निकालने से मारा मकान गिर जाता है। इत्यादि विचार कर मस्तक पर द्वादश तिलक धारण कर, सुवर्ण के यज्ञोपवीत से विभूषित हो, पीत वस्त्र पहन कर, हाथ में पुस्तक धारण करनेवाले बहुत से शिष्यों को साथ लेकर, तथा जिन के हाथ में कमडलू हैं ऐसे शिष्यों से वेष्टित हो और जिनके हाथ म दर्भ क आसन हैं कितनेक ऐसे शिष्यों सहित इद्रभूति वहाँ से प्रभु की ओर चलता है। उस वक्त उसके शिष्य उसकी प्रशसा के नारे लगाते हुए चलते हैं कि-*हे मरस्वतीकठाभरण! हे वादी विजयलक्ष्मी क शरण समान! हे वादियों क मद को उतारनेवाले! हे वादीरूप हाथियों के मदको उतारने वाले! हे वादियों क ऐश्वर का नाश करनेवाले! हे वादीरूप सिंहों को अष्टापद क समान! हे वादियों के समूह क राजा! ह वादियों के सिर पर काल समान! ह वादीरूप कले को कृपाण के तुल्य! हे वादीरूप अंधकार क प्रति सूर्य समान! हे वादीरूप गद्गम को पीसने म चक्की क समान! हे वादीमदमर्दन करनेवाल!

---

* कवि की पद्य रचना दिखाने के लिये इस मूल पाठ नीचे दिया जाता ह।

हे मरस्वतीकठाभरण! वादिविजयलक्ष्मीशरण! वादिमदगजन! वादिमुखभजन! वादिगजसिंह! वादीश्वरश्रीह! वादिसिंह अष्टापद! वादिविजयविजय! वादिवृन्दभूमिपाल! वादिशिर काल! वादिकदलीकृपाण! वादितमोभान! वादिगोधूमघट्ट! मर्दितवादिमरट्ट! वादिघटमुद्गर! वादिघूकभास्कर! वादिसमुद्रागस्ति! वादितरून्मूलनहस्ति! वादिसुरसुरेन्द्र! वादिगरुडगोविन्द! वादिजनराजा! वादिकसकाहन! वादिहरिणहरे! वादिज्वरधन्वन्तरे! वादियूथमल्ल! वादिहृदयशल्य! वादिगणजीपक! वादिशलभदीपक! वादिचक्रचूडामणे! पण्डितशिरोमणे! विजितानेकवाद! मरस्वतीलब्धप्रसाद!

हे वादीरूप घड़े के लिए मुद्गर समान ! हे वादीरूप उल्लुओं के लिये सूर्य तुल्य ! हे वादीरूप समुद्र के लिए अगस्ति के समान ! हे वादीरूप वृक्ष को उखाड़ फेंकने में हाथी के समान ! हे वादीरूप देवों में इंद्र के समान ! हे वादीरूप गरुड़ के प्रति गोविन्दक समान ! हे वादीरूप मनुष्यों के राजा ! हे वादीरूप कंस को मारने में कृष्ण के समान ! हे वादीरूप मृग के लिए सिंह के समान ! हे वादीरूप ज्वर के प्रति धन्वन्तरी वैद्य के समान ! हे वादियों के समूह में मल्ल के समान ! हे वादियों के हृदय के शल्य समान ! हे वादीरूप पतंगों को दीपक समान ! हे वादी-समूह के मुकुट समान ! हे अनेक वादों को जीतनेवाले पंडितशिरोमणि ! हे सरस्वती का प्रसाद प्राप्त करनेवाले तेरी जय हो ! इस प्रकार विरुदावली के नारों से जिन्होंने आकाश तल को गुंजायमान कर दिया है, उन पाँचसौ शिष्यों द्वारा परिवेष्टित इंद्रभूति प्रभु के पास जाते हुए रास्ते में विचारता है—भला इस दुष्टने यह क्या किया ? कि जो मुझे सर्वज्ञ मिथ्याआडम्बरसे क्रोधित किया ! ! यह तो मेंडक काले नाग को लातें मारने के लिए तैयार हुआ है या चूहा अपने दाँतों से बिल्ली के दाँत तोड़ने को तैयार हुआ है । अथवा बैल अपने सींगों से इंद्र के हाथी को मारने की इच्छा करता है ! अथवा हाथी अपने दाँतों से पर्वत को गिरा देने का प्रयत्न करता है ! या खरगोश सिंह की केशराओं को खेंचना चाहता है कि जो यह मेरे सामने लोक में अपना सर्वज्ञपन प्रसिद्ध करता है ! शेष नाग के मस्तक पर रहे हुए मणि को लेने के लिए इसने हाथ बढाया है, क्यों कि इसने मुझे सर्वज्ञ के अभिमान से कोपायमान किया है । पवन के सन्मुख होकर इसने दावानल सुलगाया है । अथवा

इमने शरीरसुख की इच्छासे कौंच की फली को आलिंगन किया है। खैर इन विचारोंसे क्या ? मैं अभी जाकर उसे निरुत्तर कर देता हूं, क्यों कि जब तक सूर्य नहीं ऊगता तब तक ही खद्योत–खटवीजने और चद्रमा गर्जते हैं, परन्तु सूर्योदय होने पर वे स्वय फीके पड़ जाते हैं। हे हरिण, हाथी, घोडों के समूहो ! तुम शीघ्र ही इस जगल में से दूर भाग जाओ, क्यों कि आटोप सहित कोप से स्फुरायमान केशरावोंवाला यहाँ पर केशरीसिंह आ रहा है। मेरे भाग्य से ही यह वादी यहाँ आ पहुँचा है अत सचमुच ही मैं आज उसकी जीभ की खुजली दूर करूँगा। लक्षणशास्त्र में तो मेरी दक्षता है ही, साहित्य शास्त्रमें भी मेरी बुद्धि तीक्ष्ण है, तर्कशास्त्र में तो मैंने निपुणता प्राप्त की है। इस लिए वह शास्त्र ही कौनसा है जिसमें मैंने परिश्रम नहीं किया। पडितो के लिए कौनसा रस अपोषित है ? चक्रवर्ती के लिए क्या अजेय है ? वज्र के लिए क्या अभेद्य है ? महात्माओं के लिए क्या असाध्य है ? भूखों के लिए क्या अखाद्य है ? खल मनुष्यों के लिए कौनसा वचन अवाच्य है ? कल्पवृक्ष के लिए न देने लायक क्या है ? वैरागी के लिए क्या त्याज्य है ? इसी प्रकार तीन लोक को जीतनेवाले तथा महापराक्रमी ऐसे मेरे लिए विश्व में क्या अजेय है ? अत अभी जाकर उसे जीत लेता हूं। इत्यादि विचारों में इद्रभूति समवसरण के दरवाजे पर आ पहुँचा।

प्रथम पौड़ी पर ठहर कर प्रभु को देख इद्रभूति विचार में पड़ गया कि–क्या यह ब्रह्मा, विष्णु, या सदाशिव शकर है ? नहीं सो नहीं है, क्यों कि ब्रह्मा तो वृद्ध है, विष्णु श्याम है और शकर पार्वती सहित है।

तो क्या यह चंद्रमा है ? नहीं वह तो कलंक युक्त है। तो क्या सूर्य है ? नहीं वह भी नहीं क्यों कि सूर्य तो तीव्र कान्तिवाला है। तो क्या मेरु है ? नहीं वह तो नितान्त कठिन है। तो क्या यह कामदेव है ? नहीं कामदेव तो शरीर रहित है। हाँ अब मैंने जाना यह दोष रहित और सर्वगुणसंपन्न अन्तिम तीर्थंकर है। सुवर्ण सिंहासन पर बैठे इंद्रो से पूजित श्रीवीरप्रभु को देखकर इंद्रभूति सोचने लगा कि-अब मैं पूर्वोपार्जन किया महत्व किस तरह रख सकूंगा ? एक कीलिका के लिए मैंने महल को गिराने की इच्छा की। एक को न जीतने से मेरी क्या मानहानि होती थी ? मैं जगत को जीतनेवाला हूँ ऐसा नाम अब कैसे रख सकूँगा ? अहो मैंने यह विचार रहित कार्य किया है जो मैं मन्दबुद्धि इस जगदीश के अवतार को जीतने आया हूँ ? अब मैं किस तरह इसके पास जाऊँ और कैसे बोल सकूंगा ? अब मैं संकट में पड़ा हूँ। अब तो शिवजी ही मेरे यश की रक्षा करेंगे। यदि कदाचित् भाग्योदय से मेरी यहाँ जीत हो जाय तो मैं विश्वभर में पंडित शिरोमणि कहलाऊँ। इस प्रकार विचार करते हुए इंद्रभूति को प्रभुने उसका नाम और गोत्र उच्चारणपूर्वक अमृत तुल्य मीठी वाणी से बुलाया-हे गौतम इंद्रभूति ! तू यहाँ सुखपूर्वक आया है ने ? प्रभु का यह वचन सुन वह सोचने लगा-अरे ! यह क्या ! ? यह तो मेरा नाम भी जानता है ! ! ! अथवा तीन जगत में विख्यात मेरा नाम कौन नहीं जानता ? क्या सूर्य किसी से छिपा रहता है ? यदि यह मेरे मनमें रहे हुए गुप्त संदेहों को कह बतलावे तो मैं इसे सर्वज्ञ मानूँ। इस तरह विचार करते हुए इंद्रभूति को श्री महावीर प्रभुने कहा-क्या तेरे

मन में जीव के विषय म सदेह है ? तू वेद पदों के अर्थ को ठीक तरह नहीं विचारता। उन वेदपदों को सुन। फिर प्रभु द्वारा उच्चारण किये गये वेदपदों का ध्वनि मथन करते समुद्र के समान, अथवा गगापूर के समान, या आदि ब्रह्म की वाणी के समान शोभता था। वेद क पद नीचे मुजब थे।

"विज्ञानघन एतेभ्यो भूतेभ्य समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्यसज्ञास्तीति"

प्रथम तो तू उन पदों का ऐसा अर्थ करता है कि "विज्ञानघन"–गमनागमन की चेष्टावाला आत्मा "एतेभ्यो भूतेभ्य"–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पाँचों भूता से मद्याग म मदशक्ति के समान उत्पन्न होकर उन भूतों क साथ ही नाश पाता है, अर्थात् पानीमें बुलबुले के समान उन्हीम लीन होजाता है। इस लिए पच भूतों से भिन्न आत्मा न होनेके कारण प्रेत्यसज्ञा नहीं है। अर्थात् मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म नहीं है। परन्तु यह अर्थ अयुक्त है। हमारे कहे मुजब अब तू उनका ठीक अर्थ सुन। "विज्ञानघन" इस पद का क्या अर्थ है? 'विज्ञान'–ज्ञान दर्शन का उपयोगात्मक चिह्न आत्मा भी तन्मय होनसे विज्ञानघन कहा जाता है। क्यों कि आत्मा के प्रत्येक प्रदेश के प्रति ज्ञान के अनन्त पर्याय हैं। अब वह विज्ञानघन उपयोगात्मक आत्मा कथचित् भूता से या भूतों के विकाररूप घटादिसे उत्पन्न होता है। घटादिक जानसे

१ इस रीचा का सार यह है–मनुष्य जिस वस्तु को सामन देखता है उसम उसका आत्मा तल्लीन होजाता है उस वस्तु को हटा लेनसे मनुष्य का ख्याल दूसरी तर्फ लग जानसे पहले का ज्ञान बदल कर दूसरी चीज का ज्ञान होजाता है पहली सज्ञा नहीं रहती।

परिणत जो उपयोगात्मक आत्मा है वह हेतुभूत घटादि से ही उत्पन्न होता है, क्यों के परिणाम को घटादिक का सापेक्षपन रहा हुआ है, इस तरह भूतरूप घटादिक वस्तुओं से उनका उपयोगात्मक जीव पैदा होकर उनमें ही विलीन होजाता है, अर्थात् उन घटादिवस्तुओं के नाश होजाने पर उनके निमित्तसे उत्पन्न हुआ उपयोगात्मक आत्मा भी नष्ट होजाता है और दूसरे उपयोगतया उत्पन्न होता है। इस कारण प्रेत्यसंज्ञा नहीं रहती। अर्थात् घटादि वस्तुओं के आकार नष्ट होकर किसी दूसरे रूपमें परिवर्तित होने पर तज्जन्य उपयोगात्मक आत्मा भी नष्ट होकर किसी दूसरे रूपमें परिवर्तित होजाता है, इस लिए घटादि के उपयोगरूप पहली संज्ञा नहीं रहती। क्यों कि वर्त्तमान उपयोगतया घटादि की संज्ञा नष्ट होचुकी है। तथा यह आत्मा ज्ञानमय है और जो दम, दान, एवं दया इन तीनों दकारों को जाने वह जीव–आत्मा, तथा भोग्य और भोक्ता भाव से भी शरीर भोग्य और आत्मा उसका भोक्ता है। जैसे चावल भोग्य है तो उसका भोक्ता भी है। इत्यादि अनुमान से भी आत्मा सिद्ध होता है। तथा जैसे दूध में घी, तिल में तेल, काष्ठमें अग्नि, पुष्प में सुगन्ध और चंद्रकान्त में अमृत रहता है त्यों यह आत्मा भी शरीर में पृथक् रहता है। इस प्रकार प्रभुवचनों से संदेह नष्ट होजाने पर इंद्रभूतिने पाँचसो शिष्यों सहित प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण करली। उसी वक्त प्रभु के मुखसे "उपन्नेइ वा, विगमेइ वा और धुवेइ वा" यह त्रिपदी प्राप्त कर उन्होंने द्वादशांगी की रचना की।

इति प्रथम गणधर समाधान।

अब उनके दूसरे भाइ अग्निभूतिने अपने भाइ को दीक्षित हुआ सुनकर विचारा कि कदाचित् पर्वत पिघले, बरफ जल उठे, अग्नि शीतल हो जाय और वायु स्थिर हो जाय तथापि मेरा भाई किसी से हार जाय यह सभव नहीं होता। इस बात पर विश्वास न रखकर उसने बहुत से लोगोंसे पूछा, निश्चय होजाने पर उसने विचार किया-मैं अभी जाकर उस धूर्त को जीत कर अपने भाइ को वापिस लाता हूँ। यह विचार कर वह भी शीघ्र प्रभु के पास आया। प्रभुने भी उसे उसके गोत्रनामपूर्वक बुलाया और उसके मनमें रहे हुए सदेह को प्रगट कर के कहा-हे गौतमगोत्रीय अग्निभूति! क्या तेरे मनमें कर्म का सदेह है? क्या तू वेद के तत्वार्थ को भली प्रकार नहीं जानता? सुन, वह इस प्रकार है। "पुरुष एवेदं ग्निं सर्वं यद्भूतं यच भाव्य इत्यादि" इस प्रकार तेरे मन में ऐसा अर्थ भासित है। जो अतीत काल में हो गया है और जो आगामी काल में होगा वह सब "पुरुष एव" आत्मा ही है। यहा एवकार पद कर्म, ईश्वर आदि के निषेध में है। इस वचन से जो मनुष्य, देव, तिर्यंच, पृथवी, पर्वत आदि देख पड़ते हैं, सो सब कुछ आत्मा ही है और इस से कर्म का प्रगट ही निषेध होता है। तथा अमूर्त आत्मा को मूर्त कर्म के द्वारा लाभ और हानि किस तरह समर्पित होसकते हैं? जिस प्रकार आकाश को चदनादि का लेप नहीं होसकता, तलवारादिसे उसे काटा नहीं जासकता इसी

१ इस टीका का सार यह है कि-कोई कोई वचन ऐसे होते हैं जिनमें किसी एक ही वस्तु की तारीफ की जाती है जैसे गीताजी में कृष्ण की स्तुति की है इससे दूसरी इन चीजों का अभाव नहीं समझना चाहिये।

प्रकार अमूर्त आत्मा भी मूर्त कर्म से लाभ या हानि नहीं उठा सकता, इस तरह कर्म का अभाव प्रतीत होता है, यह तेरे मन में है, परन्तु हे अग्निभूति ! यह अर्थ युक्त नहीं है; क्यों कि वेद के वे पद पुरुष की स्तुति के हैं, वेद के पद तीन प्रकार के होते हैं, जिन में कितनेएक विधि प्रतिपादन करनेवाले हैं, जैसे कि स्वर्ग की इच्छा करनेवाले मनुष्य को अग्निहोत्र करना चाहिये, इत्यादि । कितनेएक अनुवादसूचक होते हैं, जैसे कि बारह मास का एक वर्ष होता है, इत्यादि । और कितनेएक पद स्तुतिरूप होते हैं, जैसे कि उपरोक्त पद तेरे संदेहवाला है, इत्यादि । इस पद से पुरुष की अर्थात् आत्मा की महिमा दिखलायी है, परन्तु कर्मादि का निषेध नहीं किया, जैसे—

" जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके सर्वं भूतमयो विष्णु-स्तस्माद्विष्णुमयं जगत् ॥१

अर्थात् जल में विष्णु, स्थल में विष्णु, पर्वत के मस्तक पर विष्णु और सर्व भूतमय विष्णु है अतः यह जगत भी विष्णुमय ही है । इस वाक्य से विष्णु का महिमा कथन किया है परन्तु अन्य वस्तुओं का निषेध नहीं किया । तथा अमूर्तात्मा को मूर्त कर्म से लाभ और हानि क्योंकर होसकती है ? यह भी शंका ठीक नहीं है । क्यों कि मूर्तिमान् मद्यादिक से अमूर्त आत्मा को नुकसान होता है और ब्राह्मी आदि से लाभ होता देख पड़ता है । तथा यदि कर्म न हों तो एक सुखी, दूसरा दुःखी, एक श्रीमान् शेठ, दूसरा गरीब नोकर इत्यादि संसार की प्रत्यक्ष विचित्रता कैसे संभवित होसकती है ? प्रभु के ये वचन सुनकर अग्निभूति का भी संदेह दूर

होगया और उसने भी दीक्षा ग्रहण करली। यह दूसरे गणधर हुए।

अब वायुभूतिने उन दोनों को दीक्षित हुआ सुनकर विचार किया–जिस प्रभु के इन्द्रभूति और अग्निभूति जैसे समर्थ शिष्य बने हैं वह मेरे लिये भी पूजनीय हैं, अतः मुझे भी उनके पास जाकर अपनी शंका दूर करनी चाहिये। यह विचार कर वह भी प्रभु के पास आया एवं सभी आये और प्रभुने सब को प्रतिबोधित किया। उसका क्रम इस प्रकार है।

अब "तज्जीव तच्छरीर" अर्थात् वही जीव और वही शरीर है, ऐसी शंकावाले वायुभूति को प्रभुने कहा–क्या तू वेद का अर्थ नहीं जानता? क्यों कि–"विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः" इत्यादि वेद पदों से पंचभूतों से जीव पृथक् प्रतीत नहीं होता। तथा

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्य ज्योतिर्मयो हि शुद्धो य पश्यति धीरा यतयः संयतात्मानः, इत्यादि इन पदों का अर्थ इस प्रकार है। यह ज्योतिर्मय शुद्धात्मा सत्य, तप और ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्य है। यह इन वेद पदों से आत्मा की पृथक् प्रतीति होती है अतः तुझे यह संदेह है कि यह शरीर है सो ही आत्मा है या कोई दूसरा है? परन्तु यह शंका अयुक्त है, क्यों कि "विज्ञानघन" इत्यादि पदों से हमारे कथनानुसार आत्मा की सत्ता प्रगट ही है। यह तीसरे गणधर हुए।

२ इसका सारांश यह है कि–क्या शरीर है वही आत्मा है अथवा आत्मा कोई भिन्न वस्तु है? प्रभुने फरमाया कि शरीर से आत्मा जुदा है।

अब पंचभूतों[3] में शंकावाले व्यक्त नामक पंडित को प्रभुने कहा–क्या तुम भी वेद के अर्थ को नहीं जानते ? " येन स्वप्नोपमं वै सकलं इत्येष ब्रह्मविधि रंजसा विज्ञेयः " इस पद का तेरे मनमें ऐसा अर्थ भापित है कि सचमुच पृथवी आदि यह सब कुछ स्वप्न वस्तु के समान असत् है, और इन पदों से पहेले तो पंचभूतों का अभाव प्रतीत होता है, तथा " पृथवी देवता, आपो देवता " इत्यादि पदों से भूतों की सत्ता प्रतीत होती है। बस यही तेरे मनमें संदेह है, परन्तु यह अयुक्त है, क्यों कि–" येन स्वप्नोपमं वै सकलं " इत्यादि पद अध्यात्म संबन्धी चिन्तन में कनक कामिनी आदि के संयोगोंसे अनित्य सूचित करनेवाले हैं किन्तु पंचभूतों का निषेध नहीं करते। यह चोथे गणधर हुए।

फिर जो जैसा है वह वैसा ही होता है, ऐसी शंकावाले सुधर्मनामा पंडित को प्रभुने कहा–तू भी वेद के अर्थ को नहीं जानता ? क्यों कि–" पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते, पशवः पशुत्वं " इत्यादि पदों से भवान्तर का सादृश्य सूचित होता है, तथा " शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते " इत्यादि पदों से भवान्तर का वैसादृश्य सावित होता है यह तेरे मनमें संदेह है। परन्तु यह विचार सुन्दर नहीं है, क्यों कि–" पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते[4] " इत्यादि जो पद हैं उनका अर्थ तो यह है कि कोई मनुष्य मार्दव

३ इनको यह शंका थी कि पांच भूत हैं या नहीं ? प्रभुने उनको सिद्ध कर बताया।

४ पांचवें गणधर की शंका थी कि जो यहां मनुष्य है वह परलोक में भी मनुष्य रहता है अथवा और गति में भी जा सकता है प्रभुने उसका समाधान किया।

आदि गुण युक्त हो तो मनुष्य सम्बन्धी आयुकर्म बाँध कर फिर भी मनुष्यपन को प्राप्त होता है। परन्तु मनुष्य मनुष्य ही होता है ऐसा बतलानेवाले वे पद नहीं हैं। तेरे मनमें एक ऐसी युक्ति है कि जैसे चावल बोने से गेहूँ नहीं उगते, वैसे ही मनुष्य मरकर पशु या पशु मरके मनुष्य नहीं होसकता, परन्तु यह युक्ति ठीक नहीं है, क्यों कि गोबर आदि से बिच्छु वगैरह की उत्पत्ति प्रत्यक्ष देख पडती है, इस लिए कार्य का वैरूप्य भी साबित ही है। यह पचम गणधर हुए।

अब बन्धमोक्ष के विषय में शकावाले मडित नामक पडित को प्रभुने कहा–तू भी वेद का अर्थ नहीं जानता? "स एष विगुणो विभुर्न बध्यते ससरति वा मुच्यते मोचयति वा" इन पदों का अर्थ तु इस प्रकार करता है यह ससारवर्ती जीव विगुण–सत्वादिगुण रहित है और विभु–सर्वव्यापक है, वह बँधता नहीं, अर्थात् पुण्य पाप से नहीं जुड़ता, ससार में परिभ्रमण भी नहीं करता। बन्धका अभाव होने से वह कर्म से मुक्त भी नहीं होता एव अकर्तापन होने से दूसरे को भी कर्म से नहीं छुड़ाता। परन्तु यह अर्थ यथार्थ नहीं है, ठीक अर्थ सुनो–विगुण–छद्मस्थ गुणरहित और विभु केवलज्ञानस्वरूप से विश्वव्यापकपन होने से सर्वज्ञ आत्मा पुण्य पाप से लिप्त नहीं होता। यह छठे गणधर हुए।

अब देव विषय में शकावाले मौर्यपुत्र नामक पडित को प्रभुने कहा–तू भी वेद के अर्थ को नहीं जानता?

मण्डित की शका थी कि–आत्मा तो अरूपी है कर्म रूपी है। अरूपी को रूपी का सबध कैसे होजाता है? प्रभुने समाधान किया।

" को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इंद्रयमवरुणकुबेरादीन् " इन पदों से प्रत्यक्ष देवों का निषेध मालूम होता है, और " स एष यज्ञायुधी यजमानोंजसा स्वर्गलोकं गच्छति " इन पदों से देव सत्ता प्रतीत होती है, यही तेरे मनमें संदेह है, पर यह अयुक्त है। क्यों कि इस पर्षदा में बैठे हुए देवों को हम तुम सब ही प्रत्यक्ष देख रहे हैं। वेद में जो " मायोपमान् " पद कहा है वह देवों का भी अनित्यपन सूचित करता है अर्थात् देवता भी शास्वत नहीं है यह सप्तम गणधर हुए।

अब नारकी के विषय में शंकावाले अकंपित नामक पंडित को प्रभुने कहा–तुम भी वेदार्थ को नहीं जानते ? " नह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति " इत्यादि पदों सें नारकी का अभाव प्रतीत होता है, और " नारको वै एष जायते यः शुद्रान्नमश्नाति " इत्यादि पदों से नारकी का सद्भाव साबित होता है। यह तेरे मनमें शंका है। परन्तु " नह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति " इन पदों का अर्थ–परलोक में नारक भी मेरुपर्वत समान शाश्वते नहीं है, किन्तु जो पापाचरण करता है वह नारक होता है, या नारक मरकर फिर तुरन्त ही दूसरे भव में नारकतया उत्पन्न नहीं होता यह है। यह सुनकर अष्टम गणधर प्रतिबोधित हुए।

अब पुण्य के विषय में शंकावाले अचलभ्राता नामा पंडित को प्रभुने कहा–तू भी वेद का अर्थ नहीं

अकंपित को नारकी की शंका थी, प्रभुने उनका भी समाधान किया।
अचलभ्राता को पुन्य पाप की शंका थी।

जानता ? तेरे सदेह का कारण प्रथम–" पुरुष एवेद ग्नि सर्वं " इत्यादि अग्निभूतिने कहा था सो है, हमने पहले इसका उत्तर दिया है तुम्ह भी उसी प्रकार समझना चाहिये। तथा 'पुण्यः पुण्येन कर्मणा पाप पापेन कर्मणा' पुण्य कर्म से पुण्य होता है और पापकर्म से पाप होता है इत्यादि वेद पदों से पुण्य पाप की सिद्धि होती है। यह नवमे गणधर हुए।

अथ परभव मे शका रखनेवाले मेतार्य नामा पडित को कहा–तू भी वेदार्थ नहीं जानता ? तुझे भी इद्रभूतिने कहे हुए 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य' इत्यादि पदों द्वारा परलोक के विषय में सदेह है परन्तु इन पदों का अर्थ मेरे कथनानुसार विचार कि जिस से तेरा सदह दूर होजाय। यह दशमे गणधर हुए।

फिर मोक्ष के विषय में शकावाले प्रभास नामक पडित को प्रभु कहते हैं–तू भी वेदार्थ को नहीं जानता ? "जरामर्यं वा यदग्निहोत्र" इस पद से मोक्ष का अभाव प्रतीत होता है, क्यों कि जो अग्निहोत्र है वह 'जरामर्य' अर्थात् सदैव करना कहा है और अग्नि होत्र की क्रिया मोक्ष का कारण नहीं बन सकती, क्यों कि सदोष होने से कितनेएक को बध का कारण बनती है और कितनेएक को उपकार का। इससे मोक्ष साधक अनुष्ठान की क्रिया करने का काल नहीं बतलाया, इस कारण मोक्ष है नहीं, अर्थात् मोक्ष का अभाव

मेतार्य परलोक में शका रखते थे।

प्रभास को मोक्ष का सदेह था।

प्रतीत होता है। तथा अन्यत्र कहा है कि–"द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये, परमपरं च, तत्र परं सत्य ज्ञानं, अनन्तरं ब्रह्मेति" इत्यादि पदों से मोक्ष की सत्ता प्रतीत होती है। बस यही तेरे मनमें शंका है। किन्तु यह ठीक नहीं है। क्यों कि "जरामर्यं वा यदग्निहोत्रं" इस पद में 'वा' शब्द 'अपि' के अर्थ में है और वह भिन्न क्रमवाला है। एवं "जरामर्यं यावत् अग्निहोत्रं अपि कुर्यात्" अर्थात् स्वर्ग का इच्छुक हो उसे जीवन पर्यन्त अग्निहोत्र करना चाहिये और जो निर्वाण का अर्थी हो उसे अग्निहोत्र छोड़कर निर्वाणसाधक अनुष्ठान करना चाहिये, परन्तु नियम से 'अग्निहोत्र' ही करना ऐसा अर्थ नहीं है। इससे निर्वाण के अनुष्ठान का भी काल बतलाया है। यह ग्यारहवें गणधर हुए।

इस प्रकार चार हजार चार सौ ब्राह्मणोंने प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की। उनमें से मुख्य ग्यारहोंने त्रिपदी ग्रहणपूर्वक द्वादशांगी की रचना की और उन्हें प्रभुने गणधर पद से विभूषित किया। द्वादशांगी की रचना के बाद प्रभुने उन्हें उसकी अनुज्ञा की। इंद्र रत्नमय दिव्य स्थाल दिव्य चूर्ण से भरकर प्रभु के समीप खड़ा होजाता है, प्रभु रत्नमय सिंहासन से उठकर उस चूर्ण की संपूर्ण मुष्टि भरते हैं, गौतम आदि ग्यारह ही गणधर अनुक्रम से जरा गरदन नमाकर खड़े रहते हैं। उस वक्त देव भी वाद्य तथा गीतादि बन्द कर ध्यानपूर्वक सुनने लगे। फिर प्रभु बोले–"गौतम को द्रव्यगुण तथा पर्याय से तीर्थ की आज्ञा देता हूं" यों कहकर प्रभुने मस्तक पर चूर्ण डाला। फिर देवोंने भी उन पर चूर्ण, पुष्प और गन्ध की वृष्टि की। सुधर्मस्वामी को धुरीपद

पर स्थापित कर प्रभुने गण की अनुज्ञा दी। इस तरह गणधरवाद समाप्त हुआ।

अब उस काल और उस समय श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभुने प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम की निश्राय में किया। फिर तीन चातुर्मास चपा और पृष्ठचपा की निश्राय में किये। इसी तरह बारह चौमासे वैशाली नगरी और वाणिज्य ग्राम की निश्राय में किये। चौदह चातुर्मास राजगृह नगर और नालदा नामक पुरशाखा की निश्राय में किये। छह मिथिला में किये। दो भद्रिका नगरी में किये। एक आलभिका नगरी में किया। एक श्रावस्ती नगरी में किया। एक वज्रभूमि नामक अनार्य देश में किया। एक अन्तिम चातुर्मास प्रभुने अपापा नगरी में हस्तीपाल राजा के कारकूनों की पुरानी शाला में किया। प्रथम उस नगरी को अपापा कहते थे परन्तु वहाँ पर प्रभु का निर्वाण होने से देवोंने उसका नाम "पापानगरी" रक्खा। जिसको आज पावापुरी तीर्थक्षेत्र कहते हैं।

[भगवान का निर्वाण कल्याणक]

अब अन्तिम चौमासा करने प्रभु मध्यम पापानगरी में हस्तीपाल राजा के कारकूनों की शाला में पधारे। उस चातुर्मास मे वर्षाकाल का चौथा महीना, सातवाँ पक्ष, कार्तिक मास का कृष्णपक्ष, उस कार्तिक मास की अमावास्या के दिन जो अन्तिम रात्रि थी उस रात्रि को श्रमण भगवान् श्रीमहावीर प्रभु कालधर्म पाये। काय स्थिति और भवस्थिति पूर्ण कर निर्वाण को प्राप्त हुए। ससार से पार उतर गये। भली प्रकार ससार में फिर

कर फिर यहाँ न आना पड़े ऐसे ऊर्ध्व प्रदेश में गये। जन्म, जरा और मृत्यु के कारणरूप कर्मों को छेदन करनेवाले, सर्वार्थ को सिद्ध करनेवाले, तत्वार्थों को जाननेवाले, तथा भवोपग्राही कर्मो से मुक्त होनेवाले, सर्व दुःखों का अन्त करनेवाले, सर्व संतापों के अभाव से परिनिर्वृत्त होकर प्रभुने शारीरिक और मानसिक सर्व दुःखों का नाश कर दिया।

जिस वर्ष में प्रभु निर्वाण पद को प्राप्त हुए वह चंद्र नामक दूसरा संवत्सर था। उस कार्तिक मास का प्रीतिवर्धन नाम था। वह पक्ष नंदीवर्धन नामा था। उस दिन का नाम अग्निवेश्य था तथा दूसरा नाम उसका उपशम था। देवानन्दा उस अमावास्या की रात्रि का नाम था। उसका दूसरा नाम निरति था। प्रभु जब निर्वाण पाये तब अर्च नामक लव था। मुहूर्त नामक प्राण था। सिद्ध नामक स्तोक था, नाग नामा करण था। यह शकुनि आदि चार करणों में से तीसरा करण था, क्यों कि अमावास्या के उत्तरार्ध में वही करण होता है। सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त में स्वाति नामा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आजाने पर प्रभु कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त होगये।

अब संवत्सर, मास, दिन, रात्रि तथा मुहूर्त के नाम सूर्यप्रज्ञप्ति में निम्न प्रकार दिये हैं। एक युग में पाँच संवत्सर होते हैं, उनके नाम चंद्र, चंद्र, अभिवर्धित, चंद्र और अभिवर्धित। तथा अभिनन्दन, सुप्रतिष्ठ, विजय प्रीतिवर्धन, श्रेयान्, निशिर, शोबन, हैमवान्, वसन्त, कुसुम, संभव, निदाघ और वनविरोधी ये श्रावणादि

बारह महीनों के नाम हैं। तथा पूर्वांगसिद्ध, मनोरम, मनोहर, यशोभद्र, यशोधर, सर्वकामसमृद्ध, इंद्र, मूर्धाभिषिक्त, सोमनस, धनंजय, अर्थ, अर्थसिद्ध, अभिजित, रत्याशन, शतनय, तथा अग्निवेश्य। ये पंद्रह दिन के नाम हैं। तथा उत्तमा, सुनक्षत्र, इलापत्या, यशोधरा, सौमनसी, श्रीसभूता, विजया, विजयन्ती, अपराजिता, इच्छा, समाहारा, तेजा, अभितेजा, तथा देवानन्दा, ये पंद्रह रात्रियों के नाम हैं। तथा रूद्र, श्रेयान्, मित्र, वायु, सुप्रतीत, अभिचंद्र, माहेंद्र, बलवान्, ब्रह्मा, बहुसत्य, ऐशान, त्वष्टा, भावितात्मा, वैश्रवण, वारुण, आनन्द, विजय, विजयसेन, प्रजापत्य, उपशम गंधर्व, अग्निवेश्य, शतवृषभ, आतपवान्, अर्थवान्, ऋणवान्, भौम, वृषभ, सर्वार्थसिद्ध और राक्षस, ये तीस मुहूर्त्तों के नाम हैं।

जिस रात्रिमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर प्रभु कालधर्म पाये, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए वह रात्रि स्वर्ग से आते जाते देव देवियोंसे प्रकाशवाली होगई। तथा कोलाहलमयी जिस रात्रि को श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु कालधर्म पाये, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए उस रात्रि में गौतमगोत्रीय बड़े इंद्रभूति अणगार शिष्य को ज्ञातकुल में जन्मे हुए श्रीमहावीर प्रभु पर से प्रेमबन्धन टूट जाने पर अनन्त, अनुपम उत्तम केवलज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ। वह वृत्तान्त निम्न प्रकार है।

[गौतमस्वामी का विलाप और केवलज्ञान]

प्रभुने अपने निर्वाण समय गौतम को किसी ग्राम में देवशर्मा ब्राह्मण को बोध करने के लिए भेज दिया

था । उसे प्रतिवोध देकर वापिस आते हुए श्रीगौतमस्वामी वीरप्रभु का निर्वाण सुनकर मानो वज्र से हणे गये हों इस प्रकार क्षणवार मौन होकर स्तब्ध रह गये । फिर बोलने लगे–"अहो आज से मिथ्यात्वरूप अंधकार पसरेगा ! कुतीर्थरूप उल्लु गर्जना करेंगे तथा दुष्काल, युद्ध वैरादि राक्षसों का प्रचार होगा । प्रभो ! आपके विना आज यह भारतवर्ष राहू से चंद्र के ग्रस्त होजाने पर आकाश के समान है तथा दीपकविहीन भवन के समान शोभा रहित होगया। अब मैं किसके चरणों में नम कर वारंवार पदों का अर्थ पूछूंगा ? हे भगवन् हे भगवन् ऐसा अब मैं किसको कहूँगा और मुझे भी अब आदरवाणी से हे गौतम ! ऐसा कहकर कौन बुलायगा ? हा ! हा ! हा ! वीर ! यह आपने क्या किया ? जो ऐसे समय मुझे आपसे दूर कर दिया ! ! ! क्या मैं बालक के समान आपका पल्ला पकड़ कर बैठता ? क्या मैं आपके केवलज्ञान में से हिस्सा माँगता ? यदि आप साथ ही लेजाते तो क्या मोक्षमें भीड़ होजाती ? या आपको कुछ भार मालूम होता था ? जो आप मुझे तज कर चले गये ! ! इस प्रकार गौतमस्वामी के मुख पर वीर ! वीर ! यह शब्द लग गया । फिर कुछ देर बाद–'हाँ मैंने जान लिया, वीतराग तो निःस्नेही होते हैं । यह तो मेरा ही अपराध है जो मैंने उस वक्त ज्ञान में उपयोग न दिया । इस एकपाक्षिक स्नेह को धिक्कार है ! अब स्नेह से मरा । मैं तो एकला ही हूँ, संसार में न तो मैं किसीका हूँ और न ही कोई यहाँ मेरा है, इस प्रकार सम्यक्तया एकत्व भावना भाते हुए गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त होगया । " मोक्खमग्गपवण्णाणं, सिणेहो वज्जसिंखला । वीरे जीवन्तए जाओ, गोअमो जं न केवली ॥ १ ॥"

गुणसुन्दर एसे इस वर में जो दूषण पतलाया जाता है यह सचमुच ही दूध में पूरे पतलाने के समान है। फिर दोनों सखियाँ विनोदपूर्वक बोलीं—हे राजीमती ! प्रथम तो वर गौर वर्णवाला होना चाहिये, दूसरे गुण तो परिचय होने पर मालूम होते हैं, परन्तु वह गौरपन तो इसमें काजल के समान है।

यह सुनकर ईर्ष्या सहित राजीमती सखियों को कहने लगी—आज तक मुझे यह भ्रम था कि तुम दोनों चतुर हो, परन्तु आज वह भ्रम दूर होगया। क्यों कि सर्व गुणों का कारणरूप जो श्यामपणा है उसे भूषण होने पर भी तुम दूषणवत् कथन करती हो। अब तुम सावधान होकर सुनो, श्यामता और श्याम वस्तुओं का आश्रय करने में कैसे गुण रहे हुए हैं और केवल गौरपणे में कैसे दूषण होते हैं। पृथवी, चित्रावेल, अगर, कस्तूरी, मेघ, आँख की कीकी, केश, कसोटी, स्याही तथा रात्रि ये सब काली वस्तुयें महाफलवाली होती हैं। ये श्यामता में गुण पतलाये हैं। तथा कपूर में कोयला, चन्द्र में चिन्ह, आँख में कीकी, भोजन में काली मिरच, और चित्र में रेखा, ये वस्तुयें यद्यपि श्याम रंगवाली हैं तथापि सफेद वस्तुओं की शोभा बढ़ानेवाली हैं। यह श्यामता के आश्रय में गुण समझना चाहिये। अब सुफेद वस्तुओं के दूषण देखो—नमक खारा होता है, बरफ दहनकारी होता है, अति सफेद शरीरवाला रोगी होता है तथा चूना भी परवश ही गुणवाला है। क्योंकि वह पान में मिलने पर ही रंग देता है।

— पशुओं की पुकार और भगवन्त की करुणा —

जिस वक्त इन सखियों में यह वार्तालाप हो रहा था उस वक्त पशुओं की करुण पुकार सुनकर श्रीनेमिनाथ प्रभु तिरस्कार युक्त बोले—हे रथवान् ! यह कैसा आर्त्तनाद सुनाई देता है ? रथवान् बोला—महाराज ! आपके विवाह में भोजन के लिए एकत्रित किये पशुओं का यह वाड़ा है। सारथी की बात सुनकर प्रभु विचारने लगे—ऐसे विवाह महोत्सव को धिक्कार है जिसमें इन पशुओं का प्राण बलि हो। इधर उसी वक्त राजीमती का दाहिना नेत्र भी फुर्कने लगा और उसने अपनी सखियों से कहा। सखियाँ भी—तेरा अपमंगल दूर हो यों कहकर थू-थूकार करने लगीं।

उस वक्त नेमिनाथ प्रभुने रथवान् से कहा—हे सारथी ! तुम यहाँ से ही रथ को वापिस फिरा लो। इस वक्त नेमिनाथ प्रभु को देखकर वाडे में रहा हुआ एक हरिण अपनी गरदन एक हरिणी की गरदन पर रखकर खड़ा था, उस पर कवि घटना करता है—मानो प्रभु को देख हरिण कहता है—हे प्रभो ! मेरे हृदय को हरण करनेवाली इस हरिणी को मत मारो। हे स्वामिन् ! हमें अपने मरणसे भी अपनी प्रियतमा का विरह दुःख अति दुःसह है। प्रभु का मुख देख मानो हरिणी भी हरीण से कहती है—ये तो प्रसन्न मुखवाले तीन लोक के नाथ हैं, अकारण बन्धु हैं इस लिए हे वल्लभ ! इन्हें सर्व जीवों के रक्षण की विनती करो। तब मानो पत्नी से प्रेरित हरिण नेमिनाथ प्रभु को कहने लगा—हे प्रभो ! झरनों का पानी पीनेवाले, जंगल का घास

खानेवाले और जगल में ही रहनेवाले ऐसे हम निरपराधियों के जीवने का रक्षण करो। इस प्रकार समस्त पशुओंने प्रार्थना की। तब प्रभुने कहा—हे पशुरक्षको ! इन पशुओं को छोड़ दो, छोड़ दो। मैं विवाह न कराउँगा। प्रभु श्रीनेमिनाथ क वचन से पशुरक्षकोंने उन पशुओं को छोड़ दिया। सारथीने भी रथको वापिस फेर लिया। यहाँ पर भी फिर कवि कहता है—जो कुरग—हरिण चद्रमा के कलक में, राम सीता के विरह में तथा नमिनाथ प्रभुसे राजीमती के त्याग में कारणभूत बना सो सचमुच कुरग कुरग ही—रगमें भग करनेवाला है।

इधर समुद्रविजय और शिवादेवी आदि स्वजनोंने तुरन्त ही वहाँ आकर रथ को अटकाया। माता शिवादेवी आँखों में आँसु भरकर बोली—हे वत्स ! हे जननीवत्सल पुत्र ! मैं प्रथम प्रार्थना करती हूँ कि तू किसी तरह विवाह करके मुझे अपनी वहू का मुख दिखला द। नेमिकुमारने कहा—माताजी आप यह आग्रह छोड़ दो। मेरा मन अब मनुष्य सम्बन्धी स्त्रियों में नहीं है, परन्तु मुक्तिरूप स्त्री की उत्कठावाला है। जो स्त्रियाँ रागी पर भी राग रहित होती हैं उन स्त्रियों को कौन चाहे ? परन्तु मुक्तिरूप स्त्री जो विरक्त पर राग रखती है उसकी मैं चाहना करता हूँ।

उस वक्त राजीमती "हा दैव ! यह क्या हुआ ?" यों कह कर मूर्छित हो गइ। सहेलियों द्वारा शीतो पचार करने पर मुश्किल से सुध मे आइ और उच्च स्वर से रुदन करने लगी—हे यादवकुल में सूर्य समान ! ह निरुपम ज्ञानवाले ! ह जगत के शरणरूप तथा हे करुणाकर स्वामिन् ! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले ? फिर

अपने हृदय को कहने लगी—अरे धृष्ट, निष्ठुर, निर्लज्ज हृदय ! जब तेरा स्वामी दूसरी जगह रागवान् हुआ है तब तू अभीतक भी इस जीवन को किस लिए धारण करता है ? फिर निःश्वास डालकर अपने स्वामी को उपालंभ देकर बोली—हे धूर्त ! यदि तू सर्व सिद्धों की भोगी हुई वेश्या में रक्त हुआ था तो फिर इस तरह विवाह के बहाने तूने मेरी क्यों विडम्बना की ? सहेलियोंने उग्र से रोष में आकर कहा—हे सखी !

लोक पसिद्धी वत्तड़ी, सहिये एक सुनिज्ज । सरलो विरलो शामलो, चुकीय विहि करिज्ज ॥

अर्थात्–लोक प्रसिद्ध कहावत है कि श्याम रंग का आदमी सरल स्वभाववाला नहीं होता और कोई हो भी जाय तो यह माना जाता है कि विधाता की गलती से हो गया।

हे प्रिय सखी ! ऐसे प्रेमरहित पर क्यों प्रीति रखती है ? तेरे लिए कोई प्रेमपूर्ण वर ढूंढ निकालेंगे । यह बात सुनकर राजीमती अपने दोनों कानोंपर हाथ रखकर बोली—सखियो ! मुझे न सुनने के वचन क्यों सुनाती हो ? यदि सूर्य पश्चिम में उदय होने लगे, मेरुपर्वत चलायमान हो जाय; तथापि मैं नेमिकुमार को छोड़कर दूसरे को पति नहीं बनाऊंगी । फिर नेमिनाथ प्रभु को लक्षकर कहती है—हे जगत के स्वामी ! व्रत की इच्छा-वाले आप घर आये हुए याचकों को इच्छा से अधिक दोगे, परन्तु इच्छा रखनेवाली मुझ को तो आपने मेरे हाथपर अपना हाथ तक भी न दिया । अब विरक्त होकर बोलती है—हे प्रभो ! यद्यपि आपने अपना हाथ इस विवाहोत्सव में मेरे हाथ पर नहीं रक्खा तथापि दीक्षा महोत्सव में यह हाथ मेरे शिर पर होगा ।

इधर श्रीनेमिकुमार को परिवार सहित समुद्रविजय राजा कहने लगे—ऋषभदेव आदि जिनेश्वर भी विवाह करके मोक्ष गये हैं तो क्या हे कुमार ! तुम्हारा ब्रह्मचारी का पद कुछ उन से भी ऊंचा होगा ? यह सुन कर श्रीनेमिनाथने कहा—पिताजी ! मेरे भोगावली कर्म क्षीण हो गये हैं, तथा जिस में एक स्त्री के संग्रह में अनन्त जीव समूह का संहार होता है, जो संसार को दुःखमय बनाता है उस विवाह में आप को इतना आग्रह क्यों होता है ? यहाँ कवि उत्प्रेक्षा करता है—मैं मानता हूँ कि स्त्रियों से विरक्त श्रीनेमिनाथ प्रभु विवाह के बहाने से यहाँ आकर पूर्व के प्रेम से राजीमती को मोक्ष लेजाने का संकेत कर गये थे।

— प्रभु की दीक्षा और केवलज्ञान —

दक्ष श्रीनेमिनाथ प्रभु तीन सौ वर्ष तक कुमारपन में गृहस्थाश्रम में रहे। इतने में ही लोकान्तिक देवोंने आकर इस प्रकार की इष्ट वाणियों से कहा—हे कामदेव को जीतनेवाले, सर्व जीवों को अभयदान देनेवाले प्रभो ! आप जयवन्ते रहो और सर्व के कल्याण के लिए तीर्थ की प्रवृत्ति करो। प्रभु वार्षिक दान देकर दीक्षा लेंगे तीनों भुवन को आनन्द देवेंगे यों कहकर लोगोंने समुद्रविजय राजा आदि को उत्साहित किया। फिर सब संतुष्ट हुए, गोत्रियों को धन बांटकर दिया। संवत्सरी दानविधि श्रीवीर प्रभु के समान ही जान लेना।

इस वर्षाकालका पहला महीना था, दूसरा पक्ष था अर्थात् श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की छठ के दिन प्रथम पहर में उत्तरकुरा नामक पालकी में बैठे हुए जिस के सामने देव, मनुष्य और असुरों का समूह चल रहा है,

यावत् द्वारवती–द्वारिका नगरी के मध्यभाग में से निकल कर रैवत नामक उद्यान की ओर जाते हैं। वहाँ जाकर अशोक वृक्ष के नीचे पालकी ठहरा कर उससे नीचे उतरते हैं, फिर अपने हाथ से आभूषण उतारते हैं और अपने ही हाथ से पंचमुष्टि लोच कर, चौविहार छट्ठ की तपस्या कर के चित्रा नक्षत्र में चंद्र योग आजाने पर इंद्र का दिया एक देवदूष्य वस्त्र ले कर एक हजार पुरुषों के साथ गृह का त्याग कर श्री नेमिकुमार अणगारता को प्राप्त हो गये अर्थात् दीक्षित हो गये।

अर्हन् श्रीनेमिनाथ प्रभु चौपन अहोरात्र तक निरन्तर शरीर को कुशल कर रहे थे। पंचावनवें दिनरात्रि में वर्तते हुए, वर्षाकाल के तीसरे मास में, पांचवें पक्ष में, अर्थात् आश्विन मास की अमावास्या के दिन, दिन के पिछले पहर में, गिरिनार पर्वत के शिखर पर, वेतस नामक वृक्ष के नीचे चौविहार अट्ठम का तप किये हुए, चित्रा नक्षत्र में चंद्र योग आने पर शुक्लध्यान के प्रथम के दो भेदों का ध्यान करते हुए प्रभु को केवलज्ञान और केवलदर्शन पैदा हुआ। अब वे सर्व जीवों के भावों को जानते और देखते हुए विचरने लगे।

इस तरह जब प्रभु को रैवताचल पर सहस्राम्रवन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तब उद्यानपालकने श्रीकृष्ण देव के पास जाकर बधाई दी। सुन कर श्रीकृष्ण महाराज बड़े भारी आडम्बर से प्रभु को वन्दन करने आये। उस वक्त राजीमती भी वहाँ आई। प्रभु की धर्मदेशना सुनकर वरदत्त राजाने दो हजार राजाओं के साथ व्रत ग्रहण किया–दीक्षा ली। श्रीकृष्ण महाराज द्वारा राजीमती के स्नेह का कारण पूछने पर प्रभुने धनवती के भवसे

लेकर उसके साथ का अपना नव भव का सम्बन्ध कह सुनाया, जो इस प्रकार है —

पहले भवमें मैं धनकुमार नामा राजपुत्र था, तब यह धनवती नामक मेरी पत्नी थी। दूसरे भवमें हम दोनों पहले देवलोक में देव देवीतया पैदा हुए थे। तीसरे भवमें मैं चित्रगति नामक विद्याधर था तब यह रत्नवती नामा मेरी पत्नी थी। फिर चौथे भवमें हम दोनों चौथे देवलोक में देव हुए थे। पाँचवें भवमें मैं अपराजित नामक राजा था और यह प्रियतमा नामा मेरी रानी थी। छठे भवमें हम दोनों ग्यारवें देवलोक में देव हुए थे। सातवें भवमें मैं शंख नामक राजा था और यह यशोमती नामक मेरी रानी थी। आठवें भवमें हम दोनों अपराजित देवलोकमें देवतया पैदा हुए थे और नववें भवमें मैं नेमिनाथ हूँ और यह राजीमती है।

तत्पश्चात् प्रभु वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये। उस क्रमसे फिर रैवताचल पर आकर समवसर तब अनेक राजकन्याओं सहित राजीमती और प्रभु के भाई रथनेमिने प्रभु के पास दीक्षा ली। एक दिन राजीमती प्रभु को वन्दन करने जा रही थी, परन्तु मार्ग में वर्षा होनेसे वह एक गिरिगुफा में दाखल होगई। उसी गुफामें पहले से ही रहे हुए रथनेमि को न जानकर उसने भीगे हुए वस्त्र अपने शरीर पर से उतार कर सुखाने के लिए वहाँ फैला दिये।

देवांगनाओं के रूप को भी फीका करनेवाली साक्षात् कामदेव की रमणी के समान राजीमती को वस्त्र रहित देखकर मानो भाई के वैरसे ही कामदेव के बाणों से पीडित हुआ हुवा रथनेमि कुललज्जा छोड़ कर धैर्य पकड़ राजीमती को कहने लगा—हे सुन्दरी! सर्वांग भोगसंयोग के योग्य और सौभाग्य के निधानरूप इस तेरे कोमल शरीर

को तू तप करके क्यों सुकाती है ? इस लिए हे भद्रे ! तू इच्छापूर्वक यहाँ आ और हम दोनों अपना जन्म सफल करें । फिर अन्तमें हम तपविधि का आचरण कर लेंगे ।

महासती राजीमती यह सुन कर और उसे देख अद्भुत धैर्य धारण कर बोली—हे महानुभाव ! तू नर्क के मार्ग का अभिलाप क्यों करता है ? सर्व सावद्य का त्याग कर के फिरसे उसकी इच्छा करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? अगन्धन कुलमें जन्मनेवाले तिर्यंच सर्प भी जब वमन किये पदार्थ को नहीं इच्छते तब फिर क्या तू उनसे भी अधिक नीच है ?

इस प्रकार के राजीमती के वचनों को सुनकर बोध को प्राप्त हो रथनेमि मुनि भी श्री नेमिनाथ प्रभु के पास जाकर अपने अतिचारों की आलोचना कर घोर तपस्या कर के मोक्ष गये । राजीमती भी चारित्र आराधन कर अन्त में मोक्षशय्या पर आरूढ हो गई और बहुत समय से प्रार्थित श्रीनेमि प्रभु के शाश्वत संयोग को उसने प्राप्त कर लिया । राजीमती चारसौ वर्ष तक गृहवास में रही, एक वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रही और पाँचसौ वर्ष तक केवलीपर्याय पालकर मुक्ति गई ।

— प्रभु का परिवार —

अर्हन् श्रीनेमिनाथ प्रभु के अठारह गण और अठारह ही गणधर हुए । वरदत्त आदि अठारह हजार (१८०००) साधुओं की उत्कृष्ट संपदा हुई । आर्य यक्षिणी प्रमुख चालीस हजार (४००००) उत्कृष्ट

साध्वियों की संपदा हुई। नन्द प्रमुख एक लाख उणत्तर हजार (१६९०००) श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावक संपदा हुई। महासुव्रत आदि तीन लाख छत्तीस हजार (३३६०००) उत्कृष्ट श्राविकाओं की श्राविका संपदा हुई। केवली न होने पर भी केवली समान चारसो (४००) चौदह पूर्वियों की, पंद्रहसो (१५००) अवधिज्ञानियों की, पंद्रहसो (१५००) केवलज्ञानियों की, पंद्रहसो (१५००) वैक्रिय लब्धिधारी मुनियों की, एक हजार (१०००) विपुल मतिवाले मुनियों की, आठसो (८००) वादियों की और सोलहसो (१६००) अनुत्तर विमान में पैदा होनेवाले मुनियों की संपदा हुई। तथा पंद्रहसो (१५००) साधु और तीन हजार (३०००) साध्वियाँ मोक्ष गई।

अर्हन् श्रीनेमिनाथ प्रभु की दो प्रकार की अन्तकृत् भूमि हुई। एक युगान्तकृत् भूमि और दूसरी पर्याया न्तकृत् भूमि। प्रभु के बाद आठ पट्टधरों तक मोक्षमार्ग चलता रहा यह युगान्तकृत् भूमि और प्रभु को केवल ज्ञान हुए बाद दो वर्ष पीछे मोक्षमार्ग शुरू हुआ सो पर्यायान्तकृत् भूमि जानना चाहिये।

— परमात्मा का निर्वाण कल्याणक —

उस काल और उस समय अर्हन् श्रीनेमिनाथ प्रभु तीनसो वर्ष कुमारावस्था में रहे। चौपन दिन छद्मस्थ पर्याय पालकर, चौपन दिन कम सातसो वर्ष केवलीपर्याय पालकर, परिपूर्ण सातसो वर्ष चारित्र पर्याय पालकर एवं एक हजार वर्ष का सर्वायु पालकर वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म के क्षय हो जाने पर इसी

अवसर्पिणी में दुषमसुषमा नामक चौथा आरा बहुत बीत जाने पर, ग्रीष्मकाल के चौथे महीने में, आठवें पक्ष में अर्थात् आषाढ शुक्ला अष्टमी के दिन गिरनार पर्वत के शिखर पर पाँचसौ छत्तीस साधुओं सहित, चौविहार एक मासका अनशन कर के चित्रा नक्षत्र में चंद्र योग प्राप्त होने पर मध्यरात्रि के समय पद्मासन से बैठे हुए मोक्ष सिधारे। यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। अब श्रीनेमिनिर्वाण से कितने समय बाद पुस्तक लेखनादि हुआ सो बतलाते हैं।

अर्हन् श्रीअरिष्टनेमि निर्वाण पाये यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। उन्हें चौरासी हजार वर्ष बीतने पर पचासी हजारवें वर्ष के नवसौ वर्ष बीते बाद दशवें सैके का यह अस्सीवाँ वर्ष जाता है। अर्थात् श्री-नेमिनाथ के निर्वाण बाद चौरासी हजार वर्ष पीछे वीर प्रभु का निर्वाण हुआ और तिरासी हजार सातसौ पचास वर्ष पर श्रीपार्श्वनाथ निर्वाण हुआ यह अपनी बुद्धि से जान लेना चहिये। इस प्रकार श्रीनेमिचरित्र पूर्ण हुआ।

तीर्थंकर भगवन्तों का अन्तरकाल

१. श्रीपार्श्वनाथस्वामी के निर्वाण के बाद २५० वर्ष श्रीमहावीर देव का निर्वाण हुवा; बाद ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये।

२. श्रीनेमिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, बाद ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये।

३ श्रीनमिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है पश्चात् ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये ।

४ श्रीमुनिसुव्रतस्वामी के और श्रीमहावीर स्वामी के ११ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये ।

५ श्रीमल्लिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के एक हजार क्रोड ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये ।

६ श्रीअरनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के एक हजार क्रोड ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये ।

७ श्रीकुन्थुनाथ और श्रीमहावीरस्वामी के पल्योपम का चौथा भाग और ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है उसके बाद ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये ।

८ श्रीशान्तिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के पौन पल्योपम ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये ।

९ श्रीधर्मनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ३ सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, तदनन्तर ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये ।

१० श्रीअनन्तनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ७ सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, तत्पश्चात् ९८० वर्ष सिद्धान्त लिखे गये ।

११ श्रीविमलनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी

के १६ सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है; बाद ९८० वर्षे सिद्धात लिखे गये।

१२. श्रीवासुपूज्यस्वामी और श्रीमहावीरस्वामी के ४६ सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है; बाद ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये।

१३. श्रीश्रेयांसनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के १०० सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है; तत्पश्चात् ९८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये।

१४. श्रीशीतलनाथजी और महावीरस्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम १ क्रोड सागर का अन्तर है; तत्पश्चात् ९८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये।

१५. श्रीसुविधिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम १० क्रोड सागर का अन्तर है; तदनन्तर ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये।

१६. श्रीचन्द्रप्रभुजी और महावीरस्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम १०० क्रोड़ सागर का अन्तर है; तदनन्तर ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये।

१७. श्रीसुपार्श्वनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम एक हजार क्रोड सागर का अन्तर है; उसके बाद ९८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये।

१८. श्रीपद्मप्रभुजी और श्रीमहावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम १० हजार क्रोड सागर का अन्तर है; उसके बाद ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये।

१९. श्रीसुमतिनाथजी और महावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम एक लाख क्रोड़

सागर का अन्तर है, पश्चात् ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये।

२० श्रीअभिनन्दन स्वामी और महावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम १० लाख क्रोड सागर का अन्तर है, पश्चात् ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये।

२१ श्रीसम्भवनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम २० लाख क्रोड सागर का अंतर हैं, तदनन्तर ९८० वर्षे सिद्धात लिखे गये।

२२ श्रीअजितनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम ५० लाख क्रोड सागर का अन्तर है, पश्चात् ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये।

२३ श्रीऋषभदेव स्वामी और महावीर प्रभु के ४२ हजार ३ वर्ष ८॥ मास कम एक क्रोड़ा क्रोड़ी सागर का अंतर है, तत्पश्चात् ९८० वर्षे सिद्धात पुस्तकारूढ हुये।

इस तरह चौवीस तीर्थंकरों का अन्तर काल समाप्त हुआ।

श्रीऋषभदेव भगवान का जीवन चरित्र

उस काल और उस समय में अयोध्या नगरी में जन्मे हुए अर्हन् श्रीऋषभदेव प्रभु के चार कल्याणक उत्तरापाढ़ा नक्षत्र में हुए हैं और पांचवा कल्याणक अभिजित नक्षत्र में हुआ है सो इस प्रकार है—उत्तरापाढ़ा नक्षत्र में स्वर्ग से च्यवकर प्रभु गर्भ में आये, उत्तरापाढ़ा नक्षत्र में जन्म हुआ, उत्तरापाढ़ा में दीक्षा ली तथा उत्तरापाढ़ा में ही केवलज्ञान पाये और अभिजित नक्षत्र में प्रभु का निर्वाण हुआ।

प्रभु का च्यवन और जन्म कल्याणक

उस काल उस समय में अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु ग्रीष्मकाल के चौथे मास में, सातवें पक्ष में, आषाढ मास की कृष्ण चौथ के दिन तैतीस सागरोपम की स्थितिवाले सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान से अंतर रहित च्यवकर इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, इक्ष्वाकु भूमि में, नाभि नामक कुलकर की मरुदेवा नामा स्त्री की कुक्षि में मध्य रात्रि के समय दिव्य आहारादि का त्याग कर गर्भरूप से उत्पन्न हुए।

अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु गर्भ में भी तीन ज्ञान सहित थे। उसके द्वारा, मैं यहाँ से चवुंगा यह जानते थे। मरुदेवी माताने स्वप्न देखे सो गयवसह, इत्यादि गाथा कहकर, श्रीवीरप्रभु के चरित्र समान ही जान लेना चाहिये। परन्तु यहाँ इतना विशेष है कि मरुदेवी माताने प्रथम वृषभ को मुख में प्रवेश करते देखा और दूसरे जिनेश्वरों की माता प्रथम हाथी को देखती हैं। वीर प्रभु की माताने प्रथम सिंह को देखा था। मरुदेवीने स्वप्नों की हकीकत नाभिकुलकर से कही, क्यों कि उस समय स्वप्नपाठक नहीं थे। इस से नाभि-कुलकरने ही स्वयं स्वप्नों का फल कहा।

उस काल और उस समय अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु का ग्रीष्मऋतु के प्रथम मास में, पहले पक्ष में अर्थात् चैत्र मास की कृष्ण अष्टमी के दिन नव महीने परिपूर्ण होने पर यावत् उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्रयोग

१ कोशला–अयोध्या, वहां जन्मने से कौशलिक। २ गुजराती जेठ वदि ४।

प्राप्त होने पर जन्म हुआ।

इसके बाद का सर्व वृत्तान्त–देव देवियोंने वसुधारा की वृष्टि की वहाँतक, उसमें बन्दीजनों को छोड़ देने की, मानोन्मान के वर्धन की और दाण (महेसूल) छोड़ देने आदि कुलमर्यादा की हकीकत वर्ज कर बाकी का सब कुछ वृत्तांत पूर्वोक्त प्रकार से श्रीमहावीर प्रभु के जन्मसमय कहा है उस तरह कहना चाहिये।

अब देवलोक से च्यवकर अद्भुत रूपवान्, अनेक देव–देवियों से परिवृत, सकल गुणों द्वारा युगलिक मनुष्यों से अति उत्कृष्ट, अनुक्रम से वृद्धि प्राप्त करते हुए श्रीऋषभदेव प्रभु आहार की इच्छा होने पर देवताओं द्वारा अमृत रस से सिंचित की हुइ रसवाली अंगुली–अंगुष्ठ मुख में रख कर चूँसते थे। इसी तरह दूसरे तीर्थंकरों के लिए भी बाल्यकाल जानना चाहिये। दूसरे तीर्थंकरों की बाल्यावस्था बीतने पर वे अग्नि पर पके हुए आहार का भोजन करते थे, परन्तु श्रीऋषभदेव प्रभुने तो दीक्षा ली तब तक देवों द्वारा लाये हुए उत्तर कुरुक्षेत्र के कल्पवृक्ष के फलों का ही भोजन किया था।

इक्ष्वाकु वंश की स्थापना

अब प्रभु की उम्र एक वर्ष से कुछ कम ही थी तब " प्रथम जिनेश्वर के वंश की स्थापना करना यह इन्द्र का आचार है " ऐसा विचार कर और " खाली हाथसे प्रभु के पास कैसे जाऊँ " यह सोचकर इन्द्र एक बड़ा ईखका गन्ना लेकर नाभिकुलकर की गोद में बैठे हुए प्रभु के पास आकर खड़ा हुआ। उसवक्त ईख का गन्ना देख

हर्षित हो प्रभुने हाथ पसारा । आप गन्ना खायेंगे ? यों कह कर प्रभु के हाथ में गन्ना देकर " इक्षु के अभिलाप से प्रभु का वंश इक्ष्वाकु हो, और उनके पूर्वज भी इक्षु के अभिलापवाले थे अतः उनका गोत्र काश्यप हो " यों कहकर इंद्रने प्रभु के वंश की स्थापना की ।

प्रभु का विवाह और राज्याभिषेक

किसी युगल को उसकी माताने तालवृक्ष के नीचे रक्खा था, उस वक्त ताल का फल पड़ने से युगल में से पुरुष की मृत्यु होगई । इस तरह यह पहली ही अकाल मृत्यु हुई । जीवित रही उस कन्या के मातापिता की मृत्यु हुए बाद वह अकेली ही जंगल में फिरने लगी । उस सुन्दर स्त्री को देख युगलिये उसे नाभिकुलकर के पास ले गये । तब नाभिकुलकरने भी 'यह सुनन्दा नामा ऋषभदेव की पत्नी होगी,' यों जन समक्ष कह कर उसे अपने पास रख लिया । फिर सुनन्दा और सुमंगला के साथ बढ़ते हुए प्रभु युवावस्था को प्राप्त हुए । इंद्रने भी प्रथम जिनेश्वर का विवाह कृत्य कराना अपना कर्तव्य समझ कर करोड़ों देव देवियों सहित वहाँ आकर प्रभु का वर संबन्धी कार्य स्वयं किया और दोनों कन्याओं का वधू सम्बन्धी कार्य इंद्रानियों और देवियोंने किया । फिर उन दोनों स्त्रीयों के साथ भोग भोगते हुए प्रभु को छह लाख पूर्व बीतने पर सुमंगलाने भरत और ब्राह्मीरूप युगल को जन्म दिया, तथा सुनन्दाने बाहुबलि और सुन्दरीरूप युगल को जन्म दिया । फिर क्रमसे सुमंगलाने उनंचास पुत्रयुगलों को जन्म दिया ।

अर्हन् कौशलिक ऋषभदेव प्रभु काश्यप गोत्री के पाँच नाम इस प्रकार कहलाते हैं। ऋषभ, प्रथम राजा, प्रथम भिक्षाचर, प्रथम जिन और प्रथम तीर्थंकर। प्रथम राजा इस प्रकार हुए:—

कालप्रभाव के कारण अनुक्रम से अधिकाधिक कषायों का उदय होने से परस्पर विवाद करते हुए युगलियों के लिए उस वक्त इस तरह की दडनीति कायम की हुई थी। विमलवाहन और चक्षुष्मत् कुलकर के समय अल्प अपराध के लिए हकाररूप ही दडनीति थी। तथा यशस्वी और अभिचद्र के समय में अल्प अपराध के लिए हकाररूप और बड़े अपराध के लिए मकाररूप दडनीति थी, फिर प्रसेनजित, मरुदेवा और नाभिकुलकर के समय म जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट अपराध के लिए अनुक्रम से हकार, मकार, धिकाररूप दडनीति कायम हुई। इस प्रकार की नीति का भी उल्लघन होन पर भगवान को ज्ञानादि गुणों से अधिक जान कर युगलियों द्वारा उस बात का निवेदन करने पर प्रभुने कहा—“ नीति को उल्लघन करनेवालों को राजा ही सब तरह का दड कर सकता है और वह राजा राज्याभिषेक युक्त होता है, और मत्री सामन्तों सहित होता है।” प्रभु की यह बात सुनकर युगलिये बोले—“ हमारा भी ऐसा ही राजा हो ” प्रभुने कहा—“ ऐसे राजा के लिए नाभिकुलकर के पास जाकर प्रार्थना करो ” युगलियोंने नाभिकुलकर के पास जाकर प्रार्थना की।

१ हकार–हा! तुमने अनुचित किया। २ मकार–आयदा ऐसा मत करना ३ धिकार–धिक्कार है तुमको जो ऐसा अनुचित काम किया।

सातवां व्याख्यान.

नाभिकुलकरने कहा—" तुम्हारा राजा ऋषभ हो " फिर वे युगलिये हर्षित हो अभिषेक के लिए पानी लेने तालाब पर गये। उस वक्त सिंहासन कंपित होने से इंद्रने अपना आचार जानकर वहाँ आकर मुकुट कुंडल आभरणादि की शोभा करनेपूर्वक प्रभु का राज्याभिषेक किया। उस वक्त कमल के पत्तों में पानी लेकर आए हुवे युगलिये प्रभु को अलंकृत देख आश्चर्य में पड़ गये। थोड़ी देर विचार कर के उन्होंने वह पानी प्रभु के चरणों में डाल दिया। यह देख तुष्टमान हो इंद्र विचारने लगा कि—'अहो! ये लोग कैसे विनयवान् हैं!' यह विचार कर इंद्रने वैश्रमण को आज्ञा दी " यहाँ पर बारह योजन विस्तारवाली और नवयोजन चौड़ी विनीता नाम की नगरी बसाओ।" इस तरह आज्ञा सुन कर वैश्रमणने रत्न और सुवर्णमय घरों की पंक्तिवाली और चारों ओर किले से सुशोभित नगरी बनाई। फिर प्रभुने अपने राज्य में हाथी, घोडे एवं गाय आदि का संग्रह करनेपूर्वक उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रियरूप चार कुलों की स्थापना की। उसमें उग्रदंड करने के लिये उग्र कुलवाले आरक्षक के स्थान पर समझना चाहिये, भोग के योग्य होने से भोगकुलवाले वृद्ध–गुरुजन समझना चाहिये, समान वयवाले होने से राजन्य कुलवाले मित्रस्थानीय जानना चाहिये और शेष प्रधानादि क्षत्रियकुलवाले समझना चाहिये।

गृहस्थ कर्म की शिक्षा

अब काल की उत्तरोत्तर हानि होने से ऋषभकुलकर के समय में कल्पवृक्ष के फल न मिल सकने के कारण ॥

जो इक्ष्वाकु वंश के थे वे इक्षु–गन्ने खाते और दूसरे प्राय' अन्य वृक्षों के पत्र, पुष्प और फलादि खाते। इस प्रकार अग्नि के अभाव से कच्चे ही चावल वगैरह धान्य खाते थे। परन्तु काल के प्रभाव से वह न पचने के कारण थोड़ा थोड़ा खाने लगे। फिर वह भी न पचने से प्रभु के कहे मुनब चावल आदि को हाथ से मसल कर, उनका छिलका उतार कर खाने लगे। वह भी न पचने से प्रभु के उपदेश से पत्तों के दौने में पानी से भिगो कर चावलादि खाने लगे। इस तरह भी न पचने से कितने एक समय तक पानी में रखकर फिर हाथ में दबाया रखकर इत्यादि अनेक प्रकार से वे चावलादि अन्न खाने लगे। इस प्रकार गुजारा करते हुए एक दिन वृक्षों के परस्पर के संघर्षण से नवीन उत्पन्न हुए, पूर्ण बलती ज्वालावाले और तृणसमूह को ग्रास करते हुए अग्नि को देख "यह कोइ नवीन रत्न है" ऐसी बुद्धि से हाथ पसार कर के युगलिये उसे लेने लगे। हाथ जलजाने पर भयभीत हो प्रभु के पास जाकर फर्याद की। तब प्रभुने अग्नि की उत्पत्ति जान कर कहा–"हे युगलिको! यह अग्नि उत्पन्न हुआ है। अब तुम चावलादि अन्न उसमें डालकर खाओ जिससे तुम्हें सुख से पचेगा"। प्रभुने यह उपाय बतलाया तथापि पकाने का अभ्यास न होने से और उपाय अच्छी तरह न जानने के कारण वे युगलिये अग्नि में अन्न डाल कर फिर पहले जैसे कल्पवृक्ष से फल माँगा करते थे त्यों अग्नि से वापिस मागते हैं, परन्तु अग्निद्वारा उसकी राख हुइ देख "अरे! यह तो राक्षस के समान अतृप्त हो स्वयं ही सब कुछ भक्षण कर लेता है, हमें कुछ भी वापस नहीं देता अत. इसका अपराध प्रभु से कह कर इसे दंड दिलायेंगे" इस विचार

से वे प्रभु के पास जाते थे, इतने ही में प्रभु को मार्गमें ही हाथी पर बैठे सन्मुख आते देख उन्होंने प्रभु से सब बात कही। प्रभुने कहा किसी बरतन आदि में रख कर तुम्हें धान्यादि उस अग्नि पर रखना चाहिये। यों कह कर प्रभुने उन्हीं के पास मिट्टी का पिंड मंगवा कर उसे हाथी के कुंभस्थल पर थपवा कर महावत से उसका बरतन बनवा कर प्रभुने पहले पहल कुंभकार की कला प्रगट की और कहा–"इस प्रकार के बरतन बना कर उसे अग्नि में पका कर उसमें धान्य पकाओ" प्रभु की बतलाई हुई कला को ठीकतया ध्यान में रख कर वे युगलिक उसी तरह करने लगे। इस तरह पहले कुंभार की कला प्रगटी। फिर लुहार की, चित्रकार की, जुलाहे की और नापित की कलारूप चार कलाएँ प्रगट कीं। इन पाँच मूल कलाओं के प्रत्येक के बीस बीस भेद होने से एकसौ प्रकार का शिल्प होता है।

पुरुष की बहत्तर कलायें

दक्ष–सत्य प्रतिज्ञावाले, सुन्दर रूपवाले, सर्व गुणवाले, सरल परिणामवाले और विनयवान् अर्हन कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु बीस लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रहे। फिर त्रेसठ लाख पूर्व तक राज्यावस्था में रहते हुए लेखनादि तथा जिसमें गणित मुख्य है और अन्तमें पक्षियों के शब्द जानने की कलावाली पुरुष की उन्होंने बहत्तर कलाएँ बतलाईं। वे लेखनादि बहत्तर कलायें निम्न प्रकार हैं। लेखन १, गणित २, गीत ३, नृत्य ४, वाद्य ५, पठन ६, शिक्षा ७, ज्योतिष ८, छंद ९, अलंकार १०, व्याकरण ११, निरुक्ति १२, काव्य १३,

कात्यायन १४, निघट्ठ १५, गजारोहण १६, तुरगारोहण १७, उन दोनों की शिक्षा १८, शास्त्राभ्यास १९, रस २०, मत्र, २१, यत्र २२, विष २३, खन्य २४, गधवाद २५, सस्कृत २६, प्राकृत २७, पैशाचिकी २८, अपभ्रश २९, स्मृति ३०, पुराण ३१, उसका विधि ३२, सिद्धान्त ३३, तर्क ३४, वैदक ३५, वेद ३६, आगम ३७, सहिता ३८, इतिहास ३९, सामुद्रिक ४०, विज्ञान ४१, आचार्यक विद्या ४२, रसायन ४३, कपट ४४, विद्यानुवाद के दर्शन ४५, सस्कार ४६, धूर्त्तसयलक ४७, मणिकर्म, ४८, तरुचिकित्सा ४९, खेचरीकला ५०, अमरीकला ५१, इद्रजाल ५२, पातालसिद्धि ५३, यत्रक ५४, रसवती ५५, सर्वकरणी ५६, प्रासादलक्षण ५७, पण ५८, चित्रोपल ५९, लेप ६०, चर्मकर्म ६१, पत्रछेद ६२, नखछेद ६३, पत्रपरीक्षा ६४, वशीकरण ६५, काष्ठघटन ६६, देश भाषा ६७, गारुड ६८, योगाग ६९, धातुकर्म ७०, केवलिविधि ७१, और शकुनरुत ७२, ये पुरुष की बहत्तर कलायें समझनी चाहिये।

इसमें लेखन–लिखित हस लिपि आदि अठारह प्रकार की लिपि समझना चाहिये। उनका विधान प्रभुने दाहिने हाथ से ब्राह्मी को सिखलाया था। तथा एक, दश, सौ, हजार, अयुत–दश हजार, लाख, प्रयुत,–(दश लाख) कोटि, अर्बुद,–(दश कोटि) अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शकु, जलधि, अन्त्य, मध्य और परार्ध। इस प्रकार अनुक्रम से दश दश गुणी सख्यावाला गणित बाँये हाथ से प्रभुने सुन्दरी को सिखलाया। एव भरत को काष्ठ कर्मादि कर्म और बाहुबलि को पुरुषादि के लक्षण सिखलाये।

स्त्री की ६४ कला

स्त्रियों की चौसठ कला निम्न प्रकार हैं:—नृत्य १, औचित्य २, चित्र ३, वादित्र ४, मंत्र ५, तंत्र ६, धनवृष्टि ७, फलाकृष्टि ८, संस्कृतवाणी ९, क्रियाफल १०, ज्ञान ११, विज्ञान १२, दंभ १३, अंबुस्तंभ १४, गीतमान १५, तालमान १६, आकारगोपन १७, आरामरोपण १८, काव्यशक्ति १९, वक्रोक्ति २०, नरलक्षण २१, गजपरीक्षा २२, अश्वपरीक्षा २३, वास्तुशुद्धि २४, लघुवृद्धि २५, शकुनविचार २६, धर्माचार २७, अंजनयोग २८, चूर्णयोग २९, गृहिधर्म ३० सुप्रसादन कर्म ३१, कनकसिद्धि, ३२, वर्णिकावृद्धि ३३, वाक्पाटव ३४, करलाघव ३५, ललितचरण ३६, तैलसुरभिता करण ३७, भृत्योपचार ३८, गेहाचार ३९, व्याकरण ४०, परनिराकरण ४१, वीणावादन ४२, वितंडावाद ४३, अंकस्थिति ४४, जनाचार ४५, कुंभभ्रम ४६, सारिश्रम ४७, रत्नमणिभेद ४८, लिपिपरिच्छेद ४९, वैद्यक्रिया ५०, कामाविष्करण ५१, रंधन ५२, रसोई ५३, चिकुरबंध ५४, मुखमंडन ५५, कथाकथन ५६, कुसुमग्रंथन ५७, सर्वभाषाविशेष ५८, भोज्य ५९, यथास्थान आभरण धारण ६०, अंत्याक्षरिका ६१, प्रश्नप्रहेलिका ६२, शालिखंडन ६३ और वाणिज्य ६४। इत्यादि ये स्त्रियों की कलायें हैं।

कर्म से खेति, वाणिज्यादि और कुंभार आदि के प्रथम कथन किये कर्म सो शिल्प समझना चाहिये। इन शिल्पों का प्रभुने उपदेश किया। इसका तात्पर्य यह है कि जो बातें आचार्य अर्थात् गुरुद्वारा सिखी जाती है उनका नाम शिल्प है और जो बातें काम करते २ आ जाती है उनका नाम कर्म है। पुरुष की बहत्तर और स्त्रि-

योंकी चौसठ कला तथा सौ प्रकार का शिल्प, इन तीन वस्तुओं का प्रजा के हितार्थ प्रभुने उपदेश किया। उपदेश देकर सौ पुत्रों को सौ देश के राज्यों पर स्थापित किया। उसमें विनीता का मुख्य राज्य भरत को दिया। तथा बाहुबली को बहली देश में तक्षशिला का राज्य दिया। शेष अट्ठानवें पुत्रों को जुदे जुदे देश बांट दिये। ऋषभदेव प्रभु के सौ पुत्रों के नाम निम्न प्रकार हैं —

भरत १, बाहुबलि २, शंख ३, विश्वकर्मा ४, विमल ५, सुलक्षण ६, अमल ७, चित्रांग ८, ख्यातकीर्ति ९, वरदत्त १०, सागर ११, यशोधर १२, अमर १३, रथवर १४, कामदेव १५, ध्रुव १६, वत्स १७, नन्द १८, सूर १९, सुनन्द २०, कुरु २१, अंग २२, वंग २३, कौशल २४, वीर २५, कलिंग २६, मागध २७, विदेह २८, संगम २९, दशार्ण ३०, गंभीर ३१, वसुवर्मा ३२, सुवर्मा ३३, राष्ट्र ३४, सौराष्ट्र ३५, बुद्धिकर ३६, विविधिकर ३७, सुयश ३८, यशस्कीर्ति ३९, यशस्कर ४०, कीर्तिकर ४१, सूरण ४२, ब्रह्मसेन ४३, विक्रान्त ४४, नरोत्तम, ४५, पुरुषोत्तम ४६, चन्द्रसेन ४७, महासेन ४८, नभ सेन ४९, भानु ५०, सुकान्त ५१, पुष्पयुत ५२, श्रीधर ५३, दुर्द्धर्ष ५४, सुसुमार ५५, दुर्जय ५६, अजेयमान ५७, सुधर्मा ५८, धर्मसेन ५९, आनन्दन ६०, आनन्द ६१, नन्द ६२, अपराजित ६३, विश्वसेन ६४, हरिषेण ६५, जय ६६, विजय ६७, विजयन्त ६८, प्रभाकर ६९, अरिदमन ७०, मान ७१, महाबाहु ७२, मेघ ७३, सुघोष ७४, विश्व ७५, वराह ७६, सुसेन ७७, सेनापति ७८, कपिल ७९, शैलविचारी ८०, अरिंजय ८१, कुंजरबल ८२, जयदेव ८३, नागदत्त

८४, काश्यप ८५, बल ८६, वीर ८७, शुभमति ८८, सुमति ८९, पद्मनाभ ९०, सिंह ९१, सुजाति ९२, संजय ९३, सुनाभ ९४, नरदेव ९५, चित्तहर ९६, सुस्वर ९७, दृढरथ ९८, दीर्घबाहु ९९, और प्रभंजन १०० ।

अब राज्य या देशों के नाम निम्न प्रकार जानना चाहिये ।

अंग, वंग, कलिंग, गौड़, चौड़, कर्नाट, लाट, सौराष्ट्र, काश्मीर, सौवीर, आभीर, चीन, महाचीन, गुरजर, बंगाल, श्रीमाल, नैपाल, जहाल, कौशल, मालव, सिंहल, मरुस्थल इत्यादि ।

प्रभु का दीक्षा कल्याणक

अब जीत कल्पवाले लोकान्तिक देवोंने इष्टवाणी द्वारा प्रभु को प्रार्थना करने पर, दीक्षा समय जान कर शेष धन गोत्रीयों को बाँट दिया । वहाँ तक सब कुछ पूर्ववत् समझना चाहिये । जो ग्रीष्म काल का पहला मास था, पहला पक्ष था, चैत्र के कृष्णपक्ष में चैत्र वदि अष्टमी के दिन, दिन के पिछले पहर सुदर्शना नामा शिविका में बैठ कर जिनके आगे देव, मनुष्यों तथा असुरों का समूह चल रहा है ऐसे प्रभु विनीता नगरी के मध्य भाग से निकल कर सिद्धार्थवन नामक उद्यान में जहाँ अशोक नामा वृक्ष है वहाँ आये । शिबिका से उतर अशोक वृक्ष के नीचे स्वयं चार मुष्टि लोच करते हैं । चार मुष्टि लोच करने के बाद एक मुष्टि केश जब बाकी रहे तब वह भगवान् के सुवर्ण वर्णे शरीर पर इधर उधर चिकुराते हुए ऐसे सुंदर मालूम होने लगे कि जैसे सोने के कलश पर नील कमलों की माला हो । उसकी सुंदरता को देख कर इंद्र महाराजने प्रभु से प्रार्थना की कि इतने केश

ऐसे ही रहने दीजीये। भगवानने वैसा ही किया।

फिर चौविहार छठ का तप कर के उत्तराषाढा नक्षत्र में चन्द्रयोग प्राप्त होने पर उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय कुल के कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार पुरुष " जिन्होंने यह निश्चय किया हुआ था कि जैसा प्रभु करेंगे वैसा ही हम करेंगे" के साथ प्रभुने इन्द्र का दिया एक देवदूष्य वस्त्र लेकर दीक्षा ग्रहण की।

अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु एक हजार वर्षतक नित्य शरीर को वुसरा कर–उसका ममत्व छोड़ कर विचरे थे। दीक्षा लेकर प्रभु घोर अभिग्रह धारण कर ग्रामोग्राम विचरने लगे। उस समय लोगों के पास अत्यन्त समृद्धि होने के कारण भिक्षा क्या होती है ? यह कोई भी नहीं जानता था। इससे जिन्होंने प्रभु के साथ दीक्षा ली थी वे क्षुधापीड़ित होकर प्रभु से उपाय पूछने लगे। परन्तु मौन धारण किया होने से प्रभुने उन्हें कुछ भी उत्तर न दिया। इसलिए उन्होंने फिर कच्छ महाकच्छ से प्रार्थना की। वे बोले–आहार का विधि तो हमें भी मालूम नहीं है और आहार के विना कैसे रहा जाय ? हमने पहले प्रभु से इस विषय में कुछ पूछा भी नहीं। इस लिए विचार करने पर वनवास ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार विचार कर वे प्रभु का ही ध्यान धरते हुए गंगा के किनारे सडे हुए पत्ते वगैरह खानेवाले और साफ न किये हुए केश के गुच्छेवाले जटाधारी तापस बन गये।

इधर कच्छ और महाकच्छ के नमि विनमि नाम के दो पुत्र थे जो प्रभु के दीक्षासमय कहीं बाहर गये

हुए थे और जिन्हें प्रभुने अपने पुत्र समझ कर रक्खा हुआ था, वे जब देशान्तर से आये तब भरत उन्हें राज्य का हिस्सा देने लगा। परन्तु वे उसकी अवगणना कर पिता के वचनानुसार प्रभु के पास आये और प्रतिमा धारण कर रहे हुए प्रभु के आगे कमलपत्रों में पानी लाकर चारों तरफ भूमि को सिंचित कर तथा पुष्पों का ढेर लगा कर पंचांग नमस्कारपूर्वक "प्रभो! हमें राज्य दो" इस प्रकार सदैव प्रार्थना करने लगे। एक दिन प्रभु को वन्दन करने आये हुए धरणेंद्रने उनका ऐसा आचरण और प्रभु के प्रति अतिभक्ति देख संतुष्ट होकर कहा "अरे! प्रभु तो निःसंग हैं, उनके पास मत मांगो, प्रभु की भक्ति से तुम्हें मैं ही दूंगा" यों कह कर उन्हें अड़तालीस हजार विद्यायें दीं। उनमें गौरी, गांधारी, रोहिणी और प्रज्ञप्तिरूप चार महाविद्यायें पाठसिद्ध दीं। विद्यायें देकर कहा-इन विद्याओं द्वारा विद्याधर की ऋद्धि को प्राप्त कर तुम अपने सगे संबन्धियों को लेकर वैताढ्य पर्वत पर चले जाओ, वहां दक्षिण श्रेणि में गौरेय गांधार, प्रमुख आठ निकायों को तथा रथनुपुरचक्रवाल आदि पचास नगरों को और उत्तर श्रेणि में पंडक, वंशात आदि आठ निकायों को तथा गगनवल्लभादि नगरों को बसा कर रहो। फिर कृतार्थ होकर वे दोनों भाई अपने पिताओं और भरत को अपना सर्व वृत्तान्त सुना कर दक्षिण श्रेणि में नमि और उत्तर में विनमि जा रहे।

श्रेयांसकुमार का दान.

अब अन्न-जल देने में अकुशल समृद्धिवाले लोग प्रभु को वस्त्र, आभरण तथा कन्या आदि दान देने लगे,

परन्तु योग्य भिक्षा न मिलने पर भी अदीन मनवाले प्रभु विचरते हुए कुरुदेश के हस्तिनापुर नगर में पधारे। वहा पर बाहुबलि के पुत्र सोमप्रभ का पुत्र श्रेयास नामक युवराज था। उस श्रेयांसने रात्रि में ऐसा स्वप्न देखा कि-" मैंने श्यामवर्ण के मेरु को अमृत के कलशों से सिंचित किया जिससे वह अत्यन्त शोभने लगा।" वहां के सुबुद्धि नामक नगरसेठने भी ऐसा स्वप्न देखा " सूर्यमडल से खिसक पड़ी हुई हजार किरणों को श्रेयांसने फिर से वहां स्थापित कर दिया है इससे वह सूर्य शोभने लगा है। " वहा के राजा सोमप्रभने भी उस रात को ऐसा स्वप्न देखा कि " एक महापुरुष शत्रु सैन्य के साथ लड़ रहा है वह श्रेयास की सहायता से विजयी हुआ। " उन तीनोंसे सुबह राजसभा में एकत्रित होकर परस्पर अपने २ स्वप्न कहे। उन पर से आज श्रेयांस को कोई बड़ा लाभ होना चाहिये, राजाने यह निर्णय कर सभा विसर्जन की। श्रेयासकुमार अपने घर जाकर बारी में बैठा ही था कि इतने में ही " प्रभु कुछ भी नहीं लेते २ " लोगों को इस प्रकार कहते सुना। उसने उधर देखा तो प्रभु पर दृष्टि पड़ी। प्रभु को देखते ही उसके मन में तुरन्त यह विचार उत्पन्न हुआ कि " मैंने पहले ऐसा वेश कहीं पर देखा है " इस तरह इहापोह करते हुए श्रेयास को जातिस्मरण ज्ञान पैदा हुआ। अब उसने स्वय जान लिया कि " मैं तो पूर्वभव में प्रभु का सारथी(रथवान्) था और प्रभु के साथ मैंने दीक्षा ली थी। उस वक्त श्री वज्रसेन प्रभुने कहा था कि-यह वज्रनाभ भरतक्षेत्र में पहला तीर्थंकर होगा ' वही ये प्रभु हैं। इधर उसी समय कोई एक मनुष्य श्रेयास के वहा इक्षुरस के घडे भर कर भेट देने आया था।

उनमें से एक घड़ा उठा कर श्रेयांस प्रभु समक्ष हो कर बोला—"प्रभो! यह योग्य भिक्षा ग्रहण करो"। उस वक्त प्रभुने भी हाथ पसार दिये। श्रेयांसने घड़े का सारा रस बहरा दिया परन्तु एक भी बूंद नीचे नहीं गिरी। इसकी शिखा ऊपर को ही बढ़ती गई। कहा भी है कि 'जिसके हाथों में हजारों घड़े समा जायें या समुद्र समा जाय ऐसी लब्धि जिसे प्राप्त हो वही करपात्र होता है। एक बर्ष तक प्रभुने भिक्षा ग्रहण नहीं की उस पर कवि घटना करता है—प्रभुने अपने दाहिने हाथ से कहा—अरे! तू भिक्षा क्यों नहीं लेता? तब वह कहता है कि—हे प्रभो! मैं देनेवाले के हाथ नीचे किस तरह जाऊं? क्यों कि पूजा, भोजन, दान, शान्तिकर्म, कला, पाणि-ग्रहण, कुंभ स्थापना, शुद्धता, प्रेक्षणादि कामों में मैं वरता जाता हूं। यों कह कर जब दाहिना हाथ चुप रहा तब प्रभुने बांये हाथ को कहा—भाई! तूं ही भिक्षा ले। जवाब में बांया हाथ बोला—महाराज! मैं तो रणसंग्राम में सन्मुख होनेवाला हूं, अंक गिनने में और बांई करवट से सोना हो तब सहाय करनेवाला हूं। यह दाहिना हाथ तो जुए आदि व्यसनवाला है। फिर दाहिना बोला—'मैं पवित्र हूं, तूं पवित्र नहीं है। फिर प्रभुने दोनों को समझाया कि—तुमने दोनोंने मिलकर ही राज्यलक्ष्मी उपार्जन की है, तथा अर्थीजनों के समूह को दान देकर कृतार्थ किया है अतः तुम निरन्तर संतुष्ट हो तथा दान देनेवालों पर दया लाकर अब दान ग्रहण करो। इस प्रकार प्रभुने एक वर्षतक दोनों हाथों को समझा कर श्रेयांसकुमार से ताजा इक्षु रस ग्रहण किया। ऐसे श्री ऋषभप्रभु तुम्हारा रक्षण करो।

वाग् और मुष्टि तथा दण्डरूप यह चार प्रकार का युद्ध नियत किया। उसमें भी भरतचक्री का पराजय हुआ। फिर क्रोधांध होकर भरतने बाहुबलि पर चक्र छोड़ा, परन्तु एक गोत्री पर चक्र न चलने के कारण उस चक्रने उसका अनिष्ट न किया। उस वक्त क्रोधित हो भरत को मार डालने की इच्छा से मुक्का उठा कर सन्मुख दौड़ते हुए बाहुबलिने विचार किया " अरे! पिता तुल्य बड़े भाई को मारना मेरे लिए सर्वथा अनुचित है, और उठाया हुआ हाथ निष्फल भी न जाना चाहिये " यों विचार कर हाथ को अपने मस्तक पर रख कर केशलुंचन कर और सर्व सावद्य का त्याग कर दीक्षित हो वहाँ पर ही ध्यान लगा दिया। यह देख कर भरतने उनके पैरों में पड़कर अपने अपराध की क्षमा याचना की और फिर वे अपने घर चले गये। बाहुबलि भी " दीक्षापर्याय से बड़े छोटे भाईयों को कैसे नमूँ ? इस लिए जब केवलज्ञान होजायगा तब ही प्रभु के पास जाऊँगा " यों विचार कर एक वर्ष तक वहाँ पर कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े रहे। वर्ष के बाद प्रभु द्वारा भेजी गई अपनी बहिनोंने " हे भाइ! हाथी से नीचे उतरो " ऐसे कह कर प्रतिबोधित किया। फिर बाहुबलिने ज्यों पैर उठाया त्योंही उन्हें तुरन्त केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। वहाँ से प्रभु के पास जाकर लंबे समय तक विचर कर प्रभु के साथ ही मोक्ष पधारे। इधर भरत चक्रवर्ती भी बहुत समय तक चक्रवर्ती लक्ष्मी को भोग कर एक दिन सीसमहल में अंगूठी रहित अपनी अंगूली को देख अनित्यता की भावना भाते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर दश हजार राजाओं के साथ देवता द्वारा दिये हुए मुनिवेश को ग्रहण कर भरत राजा चिरकाल तक विचर कर मोक्ष सिधारे।

अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु के चौरासी गण और चौरासी ही गणधर हुए। ऋषभसेन आदि चौरासी हजार साधुओं की उत्कृष्ट साधुसंपदा हुई। ब्राह्मी सुन्दरी प्रमुख तीन लाख साध्वियों की उत्कृष्ट साध्वीसंपदा हुई। श्रेयांसादि तीन लाख और पाँच हजार श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावकसंपदा हुई। सुभद्रा आदि पाँच लाख चौपन हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविकासंपदा हुई। केवली नहीं किन्तु केवली के तुल्य चार हजार सातसौ पचास चौदहपूर्वियों की उत्कृष्ट संपदा हुई। नव हजार अवधिज्ञानियों की, वीस हजार केवलज्ञानियों की, वीस हजार और छह सौ वैक्रियलब्धिधारियों की, ढाई द्वीप और दो समुद्र के बीच संज्ञी पंचेंद्रिय जीवों के मनोगत भाव को जाननेवाले बारह हजार छह सौ पचास विपुलमतियों की, बारह हजार छह सौ पचास ही वादियों की उत्कृष्ट संपदा हुई। अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु के वीस हजार साधु मोक्ष गये। चालीस हजार साध्वियाँ मोक्ष गईं। अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु के अनुत्तर विमान में पैदा होनेवालों और आगामी मनुष्य गति से मोक्ष जानेवाले वीस हजार नवसौ मुनियों की उत्कृष्ट संपदा हुई।

अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु की दो प्रकार की अंतकृत्भूमि हुई। युगान्तकृत् और पर्यायान्तकृत्। भगवान् के बाद असंख्यात पुरुषयुग मोक्ष गये यह युगान्तकृत्भूमि और प्रभु को केवलज्ञान पैदा होने पर अन्तर्मुहूर्त्त में मरुदेवी माता अन्तकृत्केवली होकर मोक्ष गईं यह पर्यायान्तकृत्भूमि समझना चाहिये।

उस काल और उस समय में अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु वीस लाख पूर्व कुमारावस्था में

रह कर, त्रेसठ लाख पूर्व राज्यावस्था में रह कर तिरासीलाख पूर्व गृहस्थावस्था में रह कर एक हजार वर्ष छद्मस्थ पर्याय पाल कर, एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक केवलीपर्याय पाल कर, एक लाख पूर्व चारित्र पर्याय पाल कर और चौरासी लाख पूर्व का सर्वायु पाल कर वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म के क्षय होजाने पर इसी अवसर्पिणी में सुषमदुषम नामक तीसरा आरा बहुतसा बीत जाने पर-तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष रहने पर अर्थात् तीसरे आरे के नवासी पक्ष शेष रहने पर, शरद् ऋतु के तीसरे महीने और पाँचवें पक्ष में-माघ मास की कृष्ण त्रयोदशीके दिन अष्टापद पर्वत के शिखर पर दश हजार साधु ओंके साथ चौवीहार छह उपवास का तप कर के अभिजित् नामक नक्षत्र में चन्द्रयोग प्राप्त होने पर प्रातःसमय पल्यकासन से बैठे हुए निर्वाण को प्राप्त हुए। यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हो गये।

जिस वक्त श्रीऋषभदेव प्रभु मोक्ष सिधारे उस वक्त कंपितासन इन्द्र अवधिज्ञान से प्रभु का निर्वाण जान कर अपनी अग्रमहिषी सहित, लोकपालादि सर्व परिवार सहित प्रभु के शरीर के पास आकर तीन प्रदक्षिणा दे कर निरानन्द अश्रुपूर्ण नेत्र से न अति दूर और नही अति नजदीक रह कर हाथ जोड़ पर्युपासना करने लगा। इसी प्रकार प्रकंपितासन ईशानादि समस्त इंद्र प्रभु का निर्वाण जान कर अष्टापद पर्वत पर अपने परिवार सहित वहां आते हैं जहा प्रभु का शरीर था। पूर्ववत् निरानन्द हो हाथ जोड़ कर खड़े रहते हैं। फिर इन्द्रने भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों से नन्दनवन से गोशीर्षचंदन मगवा कर तीन

चितायें कराई । एक तीर्थंकर के शरीर के लिए, एक गणधरों के शरीर के लिए, और एक शेष मुनियों के लिए। फिर आभियोगिक देवों से क्षीरसमुद्र से जल मंगवाया। उस क्षीरसमुद्र के जल से इन्द्रने प्रभु के शरीर को स्नान कराया। ताजे गोशीर्षचंदन के द्रव से विलेपन किया, हंस लक्षणवाला वस्त्र ओढाया और सर्व अलंकारों से विभूषित किया। इसी तरह अन्य देवोंने गणधरों तथा मुनियों के शरीर को भी किया। फिर इन्द्रने विचित्र प्रकार के चित्रों से चित्रित तीन शिविकायें बनवाई। आनन्द रहित दीन मनवाले तथा अश्रुपूर्ण नेत्र-वाले इंद्रने प्रभु के शरीर को शिविका में पधराया। दूसरे देवोंने गणधरो और मुनियों के शरीरों को शिविका में पधराया। इंद्रने तीर्थंकर के शरीर को शिविका में से नीचे उतार कर चिता में स्थापन किया। दूसरे देवोंने गण-धरों और मुनियों के शरीरों को चिता में स्थापन किया। फिर इंद्र की आज्ञा से आनन्द और उत्साह रहित हो अग्निकुमार देवोंने चिता में अग्नि प्रदीप्त किया। वायुकुमारने वायु चलाया और शेष देवोंने उन चिताओं में कालागुरु, चंदनादि उत्तम काष्ठ डाला तथा सहत और घी के घडों से चिताओं को सिंचन किया। जब उनके शरीर की सिर्फ हड्डियाँ शेष रह गई तब इंद्र की आज्ञा से मेघकुमारने उन चिताओं को ठंडी कर दीं। सौधर्मेंद्रने प्रभु की दाहीनी तरफ की उपर की दाढ ग्रहण की। ईशानेंद्रने उपर की बाँई तरफ दाढ ग्रहण की। चमरेंद्रने नीचे की दाहिनी दाढ और बलींद्रने नीचे की बाँई दाढ ग्रहण की। अन्य देवोंने भी किसीने भक्तिभाव से, किसीने अपना आचार समझ कर और कितनेएकने धर्म समझ कर शेष रही हुई अंगोपांग अस्थियाँ ग्रहण की।

श्रेयांसकुमार के दान के समय नेत्र से आनन्द के आँसुओं की धारा, वाणीरूप दूध की धारा और इक्षु रस की धारा स्पर्धा से बढ़ती थी, उसी विशुद्ध भावनारूप जल से सिंचित धर्मरूप वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होने लगा। उस रस से प्रभुने वर्षी तप का पारणा किया। उस वक्त वसुधारा(धन) की वृष्टि १, चेलोत्क्षेप (वस्त्र की वृष्टि) २, आकाश में देवदुंदुभि ३, गंधोदक पुष्पवृष्टि, सुगंधमय जल और पुष्पों की वर्षा ४ और अहो दान अहो दान इस प्रकार की आकाश में घोषणा हुई ५। इस तरह पंच दिव्य प्रगट हुए। तब सब लोग वहाँ एकत्रित हुए। श्रेयांसकुमारने कहा–हे सज्जनो ! सद्गति की इच्छा से इस प्रकार साधुओं को शुद्ध आहार की भिक्षा दीजाती है। इस तरह इस अवसर्पिणी में प्रथम श्रेयांसकुमारने दान की प्रवृत्ति की। लोगोंने श्रेयांस से पूछा कि–तुमने कैसे जाना ऐसा दान देना चाहिये ? श्रेयांसने प्रभु के साथ अपना आठ भवों का सम्बन्ध कह सुनाया–जब प्रभु दूसरे देवलोक में ललितांग नामक देव थे तब मैं पूर्वभव की इनकी स्वयंप्रभा नामा देवी हुई थी, फिर जब ये पूर्वविदेहमें पुष्कलावती विजय में लोहार्गल नामक नगर में वज्रजंघ नामक राजा थे तब मैं श्रीमती नामा इनकी रानी थी। वहाँ से उत्तरकुरु में भगवान् युगलिक थे तब मैं इनकी युगलनी थी। वहाँसे पहले देवलोक में हम दोनों देव हुए। वहाँसे प्रभु पश्चिम महाविदेह में वैद्यपुत्र थे तब मैं केशव नामक जीर्ण शेठ का पुत्र इनका मित्र था। वहाँसे हम दोनों बारहवें देवलोक में देव हुए। वहाँसे पुंडरीकिणी नगरी में प्रभु वज्रनाभ नामा चक्रवर्ती थे उस वक्त मैं इनका सारथी था और वहाँसे हम दोनों २६ वें देवलोक में देव

हुए तथा यहाँ पर मैं प्रभु का प्रपौत्र हूँ । यह वृत्तान्त सुन कर सब लोग कहने लगे–" ऋषभदेव समान पात्र, इक्षुरस के समान निरवद्य दान और श्रेयांस के समान भाव, पूर्वकृत पूर्ण पुण्य से प्राप्त होता है " इत्यादि स्तुति करते अपने २ घर चले गये ।

प्रभु का कैवल्य कल्याणक

इस प्रकार दीक्षा के दिन से एक हजार वर्ष तक प्रभु का छद्मस्थ काल जानना चाहिये । उसमें सब मिलाकर प्रमाद काल सिर्फ एक रातदिन का था । इस तरह आत्मभावना भाते हुए एक हजार वर्ष पूर्ण होने पर जो शरद् ऋतु का चौथा महीना था, सातवाँ पक्ष–फाल्गुन मास की कृष्ण एकादशी के दिन सुबह के वक्त पुरिमताल नामक विनीता नगरी के शाखानगर से बाहिर शकटमुख नामक उद्यान में वड़ के वृक्ष के नीचे चौवीहार अट्ठम तप किये हुए उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्र योग प्राप्त होने पर ध्यानान्तर में वर्तते हुए प्रभु को अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । यावत् सर्व प्राणियों के भाव को जानते और देखते हुए विचरने लगे ।

इस तरह एक हजार वर्ष वीतने पर विनीता नगरी के पुरिमताल नामक शाखानगर में प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ उसी समय उधर भरत राजा को चक्ररत्न प्राप्त हुआ । उस वक्त विषयतृष्णा की विषमता के कारण 'प्रथम पिता की पूजा करूँ या चक्र की ?' भरत इस तरह के विचार में पड़ गये, परन्तु विचार से निश्चय किया कि इस लोक और परलोक में सुख देनेवाले पिता की पूजा करने से सिर्फ इस लोक में ही सुख देनेवाले

चक्र की पूजा तो हो ही गई, यू सोच कर प्रतिदिन प्रभु को देखने की इच्छावाली मरुदेवी माता को हाथी की अगाडी पर आगे बेठा कर आगे कर अपनी सर्व ऋद्धि सहित भरत राजा प्रभु को वन्दन करने चला। समवसरण पास आकर भरतने कहा कि–' माता ! आप अपने पुत्र की ऋद्धि तो देखो ' हर्ष से रोमांचित अंगवाली और आनन्द के अश्रुजल से निर्मल नेत्रवाली हुई मरुदेवी माता प्रभु की छत्र–चामरादि प्रातिहार्य की लक्ष्मी देख कर विचारने लगी कि–" अहो ! मोह से विह्वल हुए सर्व प्राणियों को धिक्कार है ! सब स्वार्थ के लिए ही स्नेह करते हैं, ऋषभ के दु ख से रुदन करते हुए मेरे नेत्र भी तेजहीन हो गये, परन्तु ऋषभ तो देव–देवेंद्रों से सेवित होने पर भी और ऐसी दिव्य समृद्धि प्राप्त करने पर भी मुझे कभी अपनी कुशलता का सदेश भी नहीं भेजता ! ऐसे स्नेह को धिक्कार है ! ऐसे एकत्व भावना भाते हुए मरुदेवी माता को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और उसी वक्त आयु क्षय होने से (अंतकृत्केवली होकर) मोक्ष को प्राप्त हो गई। यहाँ पर कवि घटना करता है ' जगत् में युगादि–ऋषभदेव समान पुत्र नहीं है, क्योंकि जिसने एक हजार वर्ष तक पृथ्वी पर भटक भटक कर जो केवलज्ञानरूप उत्तम रत्न प्राप्त किया था वह तुरत ही मातृस्नेह से माता को समर्पण कर दिया। मरुदेवी माता समान अन्य माता भी जगत् में नहीं है कि जो अपने पुत्र के लिए मुक्तिरूप कन्या को देखने वास्ते पहले ही मोक्ष में चली गई। प्रभुने भी समवसरण में बैठ कर धर्मदेशना दी। उस वक्त वहाँ पर भरत के ऋषभसेन आदि पाँचसो पुत्रोंने और सातसो पौत्रोंने दीक्षा ग्रहण की। उनमें से प्रभुने ऋषभसेन आदि चौरासी गणधर स्थापे।

ब्राह्मीने भी दीक्षा ली और वह मुख्य साध्वी बनी । भरत राजा श्रावक बना । यह स्त्रीरत्न बनेगी यह समझ कर सुंदरी को दीक्षा लेने से रोकी हुई सुन्दरी श्राविका बनी× । इस प्रकार चतुर्विध संघ की स्थापना हुई । फिर कच्छ और महाकच्छ के सिवा सर्व तापसोंने प्रभु के पास आकर दीक्षा ग्रहण की । इंद्र के प्रतिबोध से मरुदेवी माता का शोक निवारण कर भरत राजा अपने स्थान पर गया ।

अब भरत राजा चक्ररत्न की पूजा कर शुभ दिन में प्रयाण कर साठ हजार वर्ष में भरतक्षेत्र के छह खंडो को साध कर अपने घर वापिस आया । परन्तु चक्ररत्न आयुधशाला के बाहर ही रहा । कारण समझ भरतने अपने अठाणवें भाईयों को कहा कि–मेरी आज्ञा मानो । यह समाचार एक दूत के मुख से कहलवाया था । उन सबने एकत्रित होकर इस बात पर विचार किया कि–भरत की आज्ञा मानना या उसके साथ युद्ध करना । विचार कर सब के सब प्रभु की आज्ञानुसार वर्तने के लिए यह पूछने उनके पास आये । प्रभुने भी वैतालिक अध्ययन की प्ररूपणा द्वारा उन्हें प्रतिबोधित कर वहाँ ही दीक्षा दे दी । अब भरतने बाहुबलि पर भी दूत भेजा । वह भी क्रोध से अन्ध हो और अहंकार से उद्धुर हो अपना सैन्य साथ ले भरत के सामने आ डटा । बारह वर्ष तक भरत के साथ युद्ध करता रहा, परन्तु हार न खाई । जनसमूह का अधिक संहार होता देख इंद्रने आकर दृष्टि,

× सुन्दरीने प्रभु से जब यह सुना कि जो स्त्रीरत्न होता है वह नरकगामी होता है तो उसने भयभीत हो साठ हजार वर्ष तक आयंबिल की तपश्चर्या करके भरतचक्रवर्ती की आज्ञा ले कर दीक्षा ले ली थी ।

फिर इद्रने एक तीर्थंकर की चिता पर, एक गणधरों की चिता पर और एक शेष मुनियों की चिता पर एव तीन रत्नमय स्तूप करवाये। ऐसा करके शक्र आदि देव नन्दीश्वर द्वीप में अट्ठाई महोत्सव कर के अपने २ विमान में जाकर अपनी २ सभा में वज्रमय डब्बों में उन दाढा आदि को रख कर गधमालादि से उनकी पूजा करने लगे।

सर्व दुःख से मुक्त हुए अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु के निर्वाण बाद तीन वर्ष साढे आठ महीने बीतने पर—बैतालीस हजार वर्ष तथा तीन वर्ष और साढे आठ मास अधिक इतना काल कम एक सागरोपम कोटाकोटि बीतने पर श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु निर्वाण पाये। उसके बाद नवसौ अस्सी वर्ष पर पुस्तक वाचना हुई। यह श्री ऋषभदेव प्रभु का चरित्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार जगद्गुरु भट्टारक श्री हीरविजयसूरीश्वर के शिष्यरत्न महोपाध्याय श्री कीर्तिविजय गणि के शिष्योपाध्याय श्री विनयविजय गणि की रची हुई कल्पसूत्र पर सुबोधिका नाम की टीका में यह सातवाँ व्याख्यान समाप्त हुआ, एव जिनचरित्ररूप प्रथम वाच्य व्याख्यान पूर्ण हुआ।



आठवां व्याख्यान ।

अथ गणधरादि की स्थविरावलीरूप आठवाँ व्याख्यान कहते हैं ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु के नव गण और ग्यारह गणधर हुए । शिष्य पूछता है कि–हे भगवान ! आप किस हेतु से ऐसा कहते हैं कि श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु के नव गण और ग्यारह गणधर हुए ? क्यों कि–अन्य सब तीर्थंकरों के जितने गण उतने ही गणधर हुए हैं । शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कि–श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर के गौतम गोत्रवाले बड़े इंद्रभूति नामक अणगार पाँचसौ मुनियों को वाचना देते थे । (मतलब इतने उनके मुख्य शिष्य थे, सब जगह ऐसा ही समझना चाहिये) भारद्वाज गोत्रवाले आर्य व्यक्त नामा स्थविर पाँचसौ मुनियों को वाचना देते थे । अग्निवैश्यायन गोत्रवाले स्थविर आर्य सुधर्मा पाँचसौ मुनियों को वाचना देते थे । वासिष्ठ गोत्रवाले आर्य मंडितपुत्र साढ़े तीनसौ मुनियों को पाठ देते थे । काश्यप गोत्रवाले आर्य मौर्यपुत्र साढ़े तीनसौ मुनियों को वाचना देते थे । गौतम गोत्रवाले स्थविर अकंपित और हारितायन गोत्रवाले स्थविर अचलभ्राता ये दोनों तीनसौ तीनसौ मुनियों को पढ़ाते थे । कोडिन्य गोत्रवाले स्थविर मेतार्य और स्थविर प्रभास ये दोनों तीनसौ तीनसौ मुनियों को वाचना देते थे । इसी हेतुसे हे आर्य ! ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु के नव गण

और ग्यारह गणधर थे। क्यों कि अकंपित और अचलभ्राता की एक वाचना थी। तथा मेतार्य और प्रभास की भी एक वाचना थी, इसीसे नव गण और ग्यारह गणधर थे यह युक्तसिद्ध है।

इन्द्रभूति आदि जो श्रमण भगवन्त महावीर प्रभु के ग्यारह गणधर थे वे द्वादशांगी अर्थात् आचारांग से लेकर दृष्टिवाद पर्यन्त बारह अंगों को जाननेवाले थे। द्वादशांगी के ज्ञाता मात्र कहने से चौदहपूर्वी पन उसमें आही जाता है, तथापि उन अंगों में चौदह पूर्वों की प्रधानता बतलाने के लिए उन्हे पृथक् ग्रहण किया है। यह प्रधानता प्रथम रचना होने से, अनेक विद्या, मन्त्रादि के अर्थमय होने के कारण एवं उनका बड़ा प्रमाण होने से है। द्वादशांगीपन और चौदह पूर्वीपन तो सिर्फ सूत्र के ज्ञाता कहने से भी आजाता है। इस शंका को दूर करने के लिए कहा है कि-समस्त गणिपिटक को धारण करनेवाले थे, जिसका गण हो वह गणी अर्थात् भावाचार्य, और उसकी मानो पिटक कहने से पेटी ही हो। अर्थात् द्वादशांगीरूप गणिपिटक को धारण करने वाले थे। उस द्वादशांगी को भी स्थूलिभद्रजी* के समान देश से नहीं, किन्तु सर्व अक्षर के संयोग जानने के कारण उन्हें सूत्र और अर्थ से धारण करनेवाले थे। वे ग्यारह ही गणधर राजगृह नगर में चौविहार मासभक्त की तपस्या से याने एक मास तक भोजन का परित्याग करके पादोपगमन अनशन द्वारा मोक्ष को गये। यावत्

* श्री स्थूलिभद्रजी जिनशासन में छठे चौदहपूर्वधर कहे जाते हैं किन्तु वे दशपूर्व अर्थ सहित और चार मूल मात्र के ज्ञाता थे। इसका विशेष वर्णन इनके चरित्र में देखो।

सर्व दुःखों से मुक्त होगये । श्रीमहावीर प्रभु मोक्ष गये बाद स्थविर इंद्रभूति और स्थविर सुधर्मास्वामी ये दोनों मोक्ष गये । ग्यारह गणधरों में से नव तो प्रभु के जीतेजी ही मोक्ष पधार गये थे । इस वक्त जो साधु विचरते हैं उन सब को आर्य सुधर्मा अणगार के शिष्यसंतान समझना चाहिये । शेष गणधर शिष्यसंतान रहित हैं । क्यों कि वे अपने निर्वाण समय अपने २ गण को सुधर्मस्वामी को सौंप कर मोक्ष गये हैं । कहा है कि-सर्व गणधर समस्त लब्धियों से संपन्न, वज्रऋषभनाराच संहननवाले और समचतुरस्र संस्थानवाले, एक मास के पादोपगमन से मुक्ति गये ।

श्री सुधर्मास्वामी—श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु काश्यप गौत्रीय थे । उन काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवन्त महावीर प्रभु के अग्निवेश्यापन गोत्रवाले आर्य सुधर्मा स्थविर शिष्य थे । श्रीवीर प्रभु की पाट पर श्री सुधर्मास्वामी पाँचवें गणधर थे । उनका स्वरूप इस प्रकार है-कोल्लाग संनिवेश में× धम्मिल नामक ब्राह्मण के भद्दिला नामा स्त्री थी । उसकी कुक्षी से एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ जिसका नाम सुधर्म रक्खा गया । उसने चौदह विद्या के पारगामी होकर पचास वर्ष की वय में दीक्षा ली । तीस वर्ष तक वीर प्रभु की सेवा की । वीर प्रभु के निर्वाण बाद बारह वर्ष के अन्त में, जन्म के बाणवें वर्ष के अन्त में उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । फिर आठ वर्ष तक केवलीपर्याय पालकर सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर और अपनी पाट पर श्रीजम्बूस्वामी को स्थापित

× कोलापुर शहर ।

कर मोक्ष पधारे ।

श्री जम्बूस्वामी—अग्निवेश्यायन गोत्रीय आर्य (स्थविर) सुधर्मास्वामी के काश्यप गोत्रीय आर्य जम्बूनामक स्थविर शिष्य हुए। श्री जम्बूस्वामी का चरित्र इस तरह है–राजगृह नगर में ऋषभ और धारिणी के पुत्र जम्बू कुमारने श्रीसुधर्मास्वामी के पास धर्म सुनने पूर्वक शील और सम्यक्त्व प्राप्त करने पर भी माता पिता के दृढ़ आग्रह से कन्याओं से विवाह किया। परन्तु उनकी प्रेमगर्भित वाणी से मोहित न हुए। क्यों कि सम्यक्त्व और शीलरूप दो तूंबे जिनसे कि संसाररूप समुद्र तरा जासकता है उन दो तूंबों को धारण करनेवाले जम्बूकुमार स्त्रीरूप नदी में कैसे डूब सकते थे? विवाह की रात्रि को ही उन स्त्रियों को प्रतिबोध करते समय चोरी करने को आये हुए चारसो निन्नाणवें परिवारवाले प्रभव को भी प्रतिबोधित किया। सुबह पाँचसो चोर, आठ स्त्रियाँ, उन स्त्रियों के मातापिता और अपने मातापिता के साथ स्वयं पाँचसो सत्ताइसवाँ होकर निन्नाणवें करोड़ सुवर्ण त्याग कर जम्बूकुमारने दीक्षा धारण की। अनुक्रम से केवली हुए, सोलह वर्ष तक गृहवास में रहे, बीस वर्ष छद्मस्थावस्था में और चवालीस वर्ष केवलीपर्याय में रहकर सर्व आयु अस्सी वर्ष का पूर्ण कर और अपनी पाट पर श्री प्रभवस्वामी को स्थापन कर मोक्ष गये। यहाँ कवि घटना करता है कि–जम्बू समान अन्य कोई कोतवाल न हुआ और न होगा, जिसने चोरों को भी मोक्षमार्गी साधु बना दिया। प्रभव प्रभु भी जयवन्त रहो जिसने बाह्य धन की चोरी करते २ अभ्यन्तर धन रत्नत्रय को चुरालिया प्राप्त कर लिया।

श्रीवीर प्रभु के निर्वाण से आठ वर्ष पीछे गौतम स्वामी, वीस वर्ष पीछे सुधर्मास्वामी और चौंसठ वर्ष पीछे जम्बूस्वामी मोक्ष गये । उस वक्त दस वस्तु विच्छेद हो गई अर्थात् भारतवर्ष में से नष्ट हो गई । मनःपर्यव ज्ञान, १ परमावधि–जिसके होने पर अन्तर्मुहूर्त्त पीछे केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है २ पुलाकलब्धि जिससे मुनि चक्रवर्ती के सैन्य को भी चूर्ण कर देने के लिए समर्थ होता है ३ आहारक शरीर लब्धि ४ क्षपकश्रेणि ५ उपशमश्रेणि ६ जिनकल्प ७ संयमत्रिक,–परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात चारित्र ८ केवलज्ञान ९ और मोक्ष मार्ग १० यहाँ भी कवि कहता है–महामुनि जम्बूस्वामी का सौभाग्य लोकोत्तर है कि–जिस पति को प्राप्त कर के मुक्तिरूप स्त्री (भरतक्षेत्र से) अभीतक दूसरे स्वामी की इच्छा नहीं करती ।

श्रीप्रभवस्वामी—काश्यप गोत्रीय आर्य जम्बूस्वामी के कात्यायन गोत्रीय स्थविर आर्य प्रभव शिष्य हुए । कात्यायन गोत्रिय स्थविर आर्य प्रभव के वच्छ गोत्रिय मनकपिता स्थविर शय्यंभव शिष्य हुए ।

एक दिन प्रभव मुनिने अपनी पाट पर स्थापन करने के लिए अपने गण में एवं संघ में उपयोग दिया, परन्तु वैसा योग्य पुरुष न देखने से, परतीर्थ में उपयोग देने पर राजगृह नगर में यज्ञ कराते हुए श्रीशय्यंभव भट्ट देखने में आये । फिर वहाँ भेजे हुए दो साधुओंने निम्न वाक्य उचारण किया–" अहो कष्टमहोकष्टं तत्वं न ज्ञायते परं " अर्थात्–अहो ! यह तो कष्ट ही कष्ट है, इसमें तत्व तो कुछ मालुम नहीं होता । यह वाक्य सुन शय्यंभवने तलवार दिखाकर अपने ब्राह्मण गुरु से जोर देकर पूछा तब उसने यज्ञस्तंभ के नीचे से निकाल कर श्रीशान्ति-

नाथ प्रभु की प्रतिमा दिखलाइ जिसके दर्शन से प्रतिबोधित हो उसने श्री प्रभवस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। फिर प्रभवस्वामीनी श्री शय्यमभवसूरि को अपनी पाट पर स्थापन कर स्वर्ग गये।

श्री शय्यभवसूरि—श्रीशय्यभवने भी सगर्भा तजी हुई अपनी स्त्री से जन्मे हुए मनक नामक पुत्र के हितार्थ श्रीदशवैकालिक सूत्र की रचना की। श्रीयशोभद्रसूरि को अपनी पाट पर स्थापित कर वे भी श्रीवीरसे अठानवें वर्ष बाद स्वर्ग सिधारे।

श्री यशोभद्रसूरि—वच्छगोत्रीय मनक पिता स्थविर आर्य शय्यभव के तुगीकायन गोत्रीय स्थविर आर्य यशोभद्र शिष्य थे। श्री यशोभद्रसूरि भी श्री भद्रबाहु तथा सभूतिविजय इन दो शिष्यों को अपनी पाट पर स्थापन कर स्वर्ग गये।

श्री सभूतिविजय तथा भद्रबाहुस्वामी—अब यहाँ पर सक्षिप्त वाचना से स्थविरावली कहते हैं। सक्षिप्त वाचना से आर्य यशोभद्र से आगे स्थविरावली इस प्रकार कही है। तुगीकायन गोत्रीय स्थविर आर्य यशोभद्र के दो स्थविर शिष्य थे। एक माढर गोत्रीय स्थविर सभूतिविजय और दूसरे प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु। श्री यशोभद्र की पाट पर श्री सभूतिविजय और आर्य भद्रबाहु नामक दो पट्टधर हुए। उसमें श्री भद्रबाहु का सम्बन्ध इस तरह है—प्रतिष्ठानपुर[1] में वराहमिहिर और भद्रबाहु नामा दो ब्राह्मणोंने दीक्षा ली। उसमें भद्रबाहु को आचार्य पद देने से गुस्से होकर वराहमिहिरने ब्राह्मण का वेश धारण कर वराहसहिता बना कर

१ दक्षिण का पेठणशहर

निमित्त(जोतिष) की प्ररूपणा आदि से अपना गुजारा करना प्रारंभ किया। लोगों में कहने लगा कि–मैंने जंगल में एक जगह शिला पर सिंह लग्न लिखा था। सोते समय मुझे याद आया कि मैंने उस लग्न को मिटाया नहीं। मैं उसी वक्त रात को ही वहां गया, परन्तु उस पर मैंने सिंह बेठा देखा। तथापि नीडर हो उसके नीचे हाथ डाल करके मैंने उस लग्न को मिटा दिया। इस से संतुष्ट हुआ सिंह लग्न का अधिपति सूर्य प्रत्यक्ष होकर मुझे अपने मंडल में ले गया और वहाँ सर्व ग्रहों का चार मुझे दिखलाया।

एक दिन वराहमिहिरने एक माँडला बना कर राजा से कहा कि–इस माँडले के मध्य भागमें आकाशसे बावन पल प्रमाणवाला एक मच्छ पड़ेगा, परंतु भद्रबाहु स्वामिने कहा कि "अर्ध पल प्रमाण वजन उसका मार्ग में ही सूख जायगा, इससे साढ़े एकावन पल प्रमाणवाला और मध्य भाग में न पड़कर वह एक किनारे पर पड़ेगा। घटना इसी प्रकार मिली। अपनी बात झूठी साबित होने से वराहमिहिर का मन बड़ा दुःखित हुआ। वह दूसरा अवसर देखने लगा।

एक दिन राजा के घर पुत्ररत्न का जन्म हुआ। वराहमिहिरने उसका सौ वर्ष का आयु बतलाया और लोगों में यह बात फेलाई कि भद्रबाहु तो व्यवहार को भी नहीं जानते कि जो राजा को पुत्र की वधाई देने तक भी नहीं आये। जब श्रीसंघ के आगेवानोंने यह बात श्री भद्रबाहुस्वामी से अर्ज की तब उन्होंने फरमाया कि हमें पुत्र वधाई देने जाने में कोई हर्ज नहीं है परंतु सातवें दिन हमें पुनः शोक प्रगट करने जाना पड़ेगा इस

लिए हमने मौनावलबन ही श्रेयस्कर समझा। सघने बड़े आश्चर्य से पूछा कि–हे ज्ञानी गुरुदेव ! ऐसा क्यों ? तब आचार्य महाराजने फरमाया कि–राजकुमार की सातवें दिन बिल्ली से मृत्यु होजायगी। राजा को यह बात मालूम हुई तो राजाने शहर में से तमाम बिल्लियां निकलवा दीं तथापि सातवें दिन दूध पीते हुए बालक के मस्तक पर बिल्ली के मुखाकारवाली अर्गला टूट पड़नेसे उसकी मृत्यु हो गई। इससे भद्रबाहुस्वामी के ज्ञान की प्रशसा और वराहमिहिर की सर्वत्र निन्दा हुई। वराहमिहिर क्रोध से मरकर व्यन्तर देव* हुआ अतः उसने मरकी आदि से सघ में उपद्रव करना शुरु किया। भद्रबाहुस्वामीने उपसर्गहर स्तोत्र रचकर सघ का कल्याण किया। ऐसे श्री भद्रबाहु गुरु जयवन्ते रहें।

श्री स्थूलभद्रजी—माढर गोत्रीय स्थविर आर्य सभूतिविजय के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र शिष्य थे। स्थूलभद्र का सम्बन्ध इस प्रकार है–पाटलीपुर× में शकडाल मत्री के पुत्र श्री स्थूलभद्र बारह वर्ष तक

---

* शास्त्रकारों का ऐसा फरमान है कि रज्जुगाह १ विषभक्खण २ जल ३ जलण ४ पवेस तण्ह ५ [illegible] ६ दुहिया। गिरिसिर पडणाओ मुआ ७ सुहभावा हुति वतरिया ॥ १ ॥

अर्थात्—कोई मनुष्य फांसा खाकर विष भक्षण कर जल में डूब [illegible] अग्नि में [illegible] क्षुधा और तृषा से पीडित होकर, पर्वत के शिखर से गिर [illegible] मरे और यदि मरते समय उसको [illegible] लेश मात्र भी [illegible] भावना आजाय तो वो जीव [illegible] कर व्यतर जाति का देव होता है।

× पटना

कोशा नामा वेश्या के घर रहे थे। वररुचि ब्राह्मण के प्रयोग से उनके पिता की मृत्यु हुए बाद नन्द राजाने बुला कर मंत्रीपद देनेके लिए कहा तब अपने चित्त में उसी मंत्रीपद से पिता की मृत्यु विचार कर उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरुमहाराज की आज्ञा लेकर प्रथम चातुर्मास कोशा के घर पर रहे। अत्यंत हावभाव करनेवाली वेश्या को भी प्रतिबोध कर गुरु म० के पास चातुर्मास के बाद जब आये तब गुरुजीने भी उठकर संघ के समक्ष "दुष्करकारक दुष्करकारक" कह कर उन्हें सन्मानित किया। इस वचन को सुनकर सिंहगुफा के पास, सर्प की बँबी के पास और कुवे की मण पर चातुर्मास करनेवाले तीनों मुनियों को बड़ा दुःख हुआ। उनमें से दूसरे चातुर्मास में सिंहगुफावासी साधु स्थूलभद्रजी की ईर्षा से गुरुमहाराज के निषेध करने पर भी कोशा के घर चोमासा जारहे। दिव्य रूप धारण करनेवाली कोशा को देख वह मुनि तुरंत ही चलचित्त हो गया। उस वेश्याने नैपाल देश से मुनिद्वारा रत्नकंबल मंगवा कर उसे गटर में फेंक कर उस मुनि को प्रतिबोध किया। फिर वह गुरुमहाराज के पास आकर कहने लगा कि–" सचमुच तमाम साधुओं में स्थूलभद्र तो स्थूलभद्र एक ही है, उसको गुरुजीने दुष्कर दुष्करकारक कहा है सो युक्त ही है, " पुष्प, फल, शराब, मांस और महिलाओं के रस को जानते हुए भी जो उनसे विरक्त रहते हैं ऐसे दुष्करकारक मुनियों को मैं नमस्कार करता हूं।

एक समय का जिक्र है कि राजा अपने रथवान पर तुष्टमान हुआ और उससे कुछ मांगने को कहा। उसने कोशा वेश्या की मांगणी की, राजाने उसे स्वीकार किया। रथवान वेश्या के घर गया और वेश्या को

अपनी चतुराई बतलाते हुए उसने एक बाण के मूल भाग में दूसरा बाण मार कर, उसके मूल भाग में फिर तीसरा बाण मार कर, इसतरह कितनेक बाणों से वहा ही बैठे हुए आमों का गुच्छा तोड़कर कोशा को अर्पण किया और अपनी इस विद्या पर गर्वित होने लगा। परतु कोशा को इस पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसने सरसों का एक ढेर करवाया और उस पर सुईया खडी कर उन पर पुष्प रख कर उस पर नाच करते हुए गाना शुरू किया। गाती हुई वह कहने लगी—

"न दुक्कर अंबयलुंबितोडण, न दुक्कर सरिसवणच्चि याए। त दुक्कर जच महाणुभाव, ज सो मुणी पमयवणम्मि वुच्छो ॥ १ ॥ अर्थात्—आम की लुंब को तोडना यह कोई दुष्कर नहीं है, एवं सरसव पर नाचना भी कुछ दुष्कर नहीं है, परन्तु वही दुष्कर है जो उस महानुभाव मुनिने प्रमदा(स्त्री) रूप वन में मूर्छित न हो कर कर बतलाया है।" यहां पर कवि कहता है-पर्वतों पर, गुफाओं में और निर्जन वनमें बस कर हजारों मुनिओंने इद्रियों को वश किया है परन्तु अति मनोहर महल मे मनोनुकूल सुन्दर स्त्री के पास रहकर इद्रियों को वश करनेवाला शकडालनन्दन ही है। जिसने अग्नि में प्रवेश करने पर भी अपने आप को जलने न दिया, तलवार की धार पर चल कर भी इजा न पाई, भयंकर सर्प के बिल पर रहकर भी जो डसा न गया तथा कालिमा की कोठड़ी में रहकर भी जिसने दाग लगने न दिया। वेश्या रागवती थी, सदैव उनकी आज्ञा में चलनेवाली थी, षट्‌ रसयुक्त भोजन मिलता था, सुन्दर चित्रशाला थी, मनोहर शरीर था, नवीन

वय का मनोज्ञ समागम था, दोनों की युवावस्था थी और समय भी वर्षाकाल का था तथापि जिसने आदरपूर्वक काम विकार को जीता ऐसे, कोशा को प्रतिबोध करनेवाले श्री स्थूलिभद्रमुनि को मैं वन्दन करता हूँ। हे कामदेव ! मनोहर नेत्रवाली स्त्री तो तेरा मुख्य अस्त्र हैं, वसन्त ऋतु, कोयलनाद, पंचम स्वर तथा चंद्र ये तेरे मुख्य योद्धा हैं और विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव आदि तो तेरे सेवक हैं तथापि हे हताश ! तू इस मुनिसे कैसे मारा गया ? हे मदन ! तूने नंदिषेण, रथनेमि और मुनीश्वर आर्द्रकुमार के समान ही इस मुनि को भी देखा होगा ? तू यह नहीं समझा कि नेमिनाथ, जम्बूस्वामी और सुदर्शन सेठ के बाद मुझे रणसंग्राम में पछाडनेवाला चौथा यह मुनि होगा ? विचार करने पर श्री नेमिनाथ प्रभु से भी शकटालसुत श्री स्थूलभद्र अधिक मालूम होते हैं क्यों कि श्री नेमिनाथ प्रभुने तो पर्वत पर जाकर मोह को वश किया था परन्तु इस अनोखे सुभट ने तो मोह के घर में रहकर मोह का मर्दन किया हैं।

एक समय बारहवर्षीय दुष्काल के अन्त में संघ के आग्रह से श्री भद्रबाहुस्वामी पाँचसौ मुनियों को दृष्टिवाद की सदैव सात वाचना देते थे। सात वाचनाओं से भी अतृप्त रहते हुए अन्य सब मुनि उद्विग्न होकर अन्यत्र विहार कर गये। श्री स्थुलभद्रजी ही अकेले रह गये। वे दो वस्तु कम दश पूर्वतक पढ़े। एक दिन वन्दन के लिये आई हुई यक्षा आदि साध्वियों को जो उनकी सगी बहनें थीं सिंह का रूप दिखलाने की बात से नाराज हुए श्री भद्रबाहुस्वामीने स्थूलभद्र से कहा-" वाचना के लिये तुम अयोग्य हो, अतः वाचना

न मिलेगी ” फिर सघ के अत्याग्रह से ‘ तुमने अन्य को यह वाचना न देनी ’ यों कहकर शेप चार पूर्व की फक्त मूल सूत्र से वाचना दी। कहा है कि–जम्बूस्वामी अन्तिम केवली हुए तथा प्रभव प्रभु, शय्यभव, यशोभद्र, सभूतिविजय, भद्रबाहु और स्थूलभद्र ये छह श्रुतकेवली हुए हैं।

श्री आर्य महागिरि तथा श्री सुहस्तिसूरि।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्रजी के दो शिष्य थे। एक एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि और दूसरे वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्तिसूरि। उनका सबन्ध इस प्रकार है —जिनकल्प विच्छेद होने पर भी जिस धीर पुरुषने जिनकल्प की तुलना की, ऐसे मुनियों में वृषभ के समान और श्रेष्ठ चारित्र को धारण करनेवाले महामुनि आर्य महागिरि को मैं वदन करता हूँ। जिसने जिनकल्प की तुलना की, और सेठ के घर में आर्य सुहस्तिने जिस की स्तवना की ऐसे आर्य महागिरि को मैं वन्दन करता हूँ। जिनके कारण सप्रतिराजा सर्व प्रसिद्ध ऋद्धि पाये और परम पवित्र जैनधर्म को पाये उन मुनि प्रवर आर्य सुहस्तिगिरि को मैं वन्दन करता हूँ। जिस आर्य सुहस्ति महाराजने साधुओं के पास से भिक्षा मागते हुए भिक्षुक को दीक्षा दी थी। वह भिक्षु मर कर कहा पैदा हुआ सो कहते हैं। श्रेणिक का पुत्र कोणिक, उस का पुत्र उदायी, उसकी पाट पर नव नन्द, उनकी पाट पर चद्रगुप्त, उसका पुत्र बिन्दुसार, उसका अशोकश्री, उसका कुणाल और उसका पुत्र यह सप्रति हुआ। उसे जन्मते ही उस के दादाने राज्य दे दिया था। एक दिन रथयात्रा में फिरते हुए श्री आर्यसुहस्तिगिरि को

देख उसे जातिस्मरण ज्ञान पैदा हुआ। जिस से उसने सवा लाख जिनालय, और सवा करोड़ नवीन जिनविम्ब बनवाये। तथा छत्तीस हजार मंदिरों का जीर्णोद्धार कराकर, पंचानवें हजार पीतल की प्रतिमायें भरवाकर तथा हजारों दानशालाएं खोल कर तीन खंड पृथ्वी को जैनधर्म से विभूषित कर दिया। अनार्य देशों को भी कर-मुक्त कर के धर्मानुयायी बनाया साधुवेष धारण करनेवाले सेवकों को अनार्य जैसे देशों में भेज कर साधुओं के विहार करने योग्य बनाये और अपने सेवक राजाओं को जैनधर्म में अनुरक्त किया। जो प्रासुक वस्तु वस्त्र, पात्र, अन्न, दही आदि बेचते थे उन्हें संप्रति राजाने कह रक्खा था कि तुम आते जाते मुनिओं के सामने अपनी चीजें रखना और वे पूज्य जो चीज ग्रहण करें खुशी से उन्हें देना। हमारा राजानची तुम्हें उन चीजों का मूल्य तथा इच्छित लाभ गुप्ततया देगा। वे राजा की आज्ञा से वैसा करने लगे और साधु उन चीजों को अशुद्ध होने पर भी शुद्ध बुद्धि से ग्रहण करने लगे[1]।

वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्तिगिरि के व्याघ्रापत्य गोत्रीय सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध नाम के कोटिक एवं काकंदी ऐसे दो स्थविर शिष्य हुए। एक करोड़ दफा सूरिमंत्र का जाप करने से सुस्थित मुनि कोटिक कहलाते थे, और काकंदी नगरी में जन्म होने के कारण सुप्रतिबुद्ध मुनि काकंदिक कहलाते थे। व्याघ्रापत्य गोत्रीय सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध स्थविर कोटिक और काकंदिक के कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य इंद्रदिन्न शिष्य थे। कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य इंद्रदिन्न के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न शिष्य थे। गौतम गोत्रीय

1 प्राचीन ग्रंथों में से इनका जिकर बृहत्कल्प में मिलता है।

स्थविर आर्यदिन्न के कौशिक गोत्रीय और जातिस्मरण ज्ञानधारी स्थविर आर्यसिंहगिरि शिष्य थे। कौशिक गोत्रीय और जाति स्मरण ज्ञानधारी स्थविर आर्यसिंहगिरि के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र शिष्य थे। गौतम गोत्रीय आर्यवज्र के उत्कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्यवज्रसेन शिष्य थे। उत्कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्यवज्रसेन के चार स्थविर शिष्य थे। स्थविर आर्यनागिल, स्थविर आर्यपोमिल, स्थविर आर्यजयन्त और स्थविर आर्य तापम। स्थविर नागिल से आर्यनागिला शाखा निकली, स्थविर आर्यपोमिल से आर्यपोमिला शाखा निकली, स्थविर आर्यजयन्त से आर्यजयन्ती शाखा निकली और स्थविर आर्यतापस से आर्यतापसी शाखा निकली।

अब विस्तृत वाचनाद्वारा स्थविरावली कहते हैं —

इस विस्तृत वाचना में आर्य यशोभद्र से स्थविरावली इस प्रकार जाननी। इसमें बहुतसे भेद तो लेखकदोष के हेतुभूत समझना चाहिये। शेष स्थविरों की शाखायें और कुल गण आज एक भी मालूम नहीं होते। उनको जाननेवालों का मत है कि वे दूसरे नामों से तिरोहित (हो गये) होंगे। कुल एक आचार्य का परिवार समझना चाहिये। और गण एक वाचना (क्लास) लेनेवाला मुनिसमुदाय जानना चाहिये। कहा है कि "एक आचार्य की संतति को कुल जानना चाहिये और दो या उससे अधिक आचार्यों के मुनि एक दूसरे से सापेक्ष वर्तते हों तो उनका एक गण समझना चाहिये। शाखा एक आचार्य की संतति में ही उत्तम पुरुषों के जुदे जुदे वंश या विवक्षित आद्यपुरुष की संतति जानना चाहिये। जैसे कि वज्रस्वामि के नाम से हमारी वज्री शाखा है।

तुंगिकापन गोत्रीय स्थविर आर्ययशोभद्र के ये दो स्थविर शिष्य पुत्र समान थे। जिस के पैदा होने से पूर्वज अयशरूप कीचड में न पड़ें उसे अपत्य-पुत्र कहते हैं और उसके समान हो उसे यथापत्य-पुत्र के समान कहते हैं।) वह इस तरह-एक प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु और दूसरे माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतिविजय। प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु के ये चार स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे। स्थविर गोदास, स्थविर अग्निदत्त, स्थविर यज्ञदत्त और स्थविर सोमदत्त। ये चारों ही काश्यप गोत्री थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदाससे गोदास नामक गण निकला। उसकी चार शाखायें इस तरह कहलाती हैं-तामलिप्तिका १, कोटिवर्षिक २, पुंड्रवर्धनिका ३, और दासीखरबटिका। माढर गोत्रीय स्थविर संभूतिविजय के बारह स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे। नन्दनभद्र १, उपनन्द २, तिष्यभद्र ३, यशोभद्र ४, सुमनोभद्र, ५, मणिभद्र ६, पूर्णभद्र ७, स्थूलभद्र ८, ऋजुमति ९, जम्बू १०, दीर्घभद्र ११, और पांडुभद्र १२। माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतिविजय की सात शिष्यायें पुत्री समान प्रसिद्ध थीं। यक्षा १, यक्षदिन्ना २, भूता ३, भूतदिन्ना ४, सेणा ५, वेणा ६, और रेणा, ये सातों स्थूलभद्र की बहिने थीं। गौतम गोत्रीय स्थविर शिष्य आर्य स्थूलभद्र के दो स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे। एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि १ और वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्तिगिरि २। एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि के आठ स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे। स्थविर उत्तर १, स्थविर बलिस्सह २, स्थविर धनाढ्य ३, स्थविर श्रीभद्र ४, स्थविर कौडिन्य

५, स्थविर नाग ७, स्थविर नागमित्र ७, और कौशिक गोत्रीय स्थविर षडुलूक रोहगुप्त ८। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, इन छह पदार्थों की प्ररूपणा करने से षट् और उलूक गोत्र मे पैदा होने से उलूक, इन षट् उलूक का कर्मधारय समास करने से षडुलूक होता है; इस लिए षडुलूक रोहगुप्त कहे जाते थे। कौशिक गोत्रीय स्थविर रोहगुप्त से त्रैराशिक मत निकला। जीव, अजीव और नोजीव नामक तीन राशि की प्ररूपणा करनेवाले उस के शिष्य प्रशिष्य त्रैराशिक कहलाते हैं। उस की उत्पत्ति इस प्रकार है:—श्री वीर प्रभु के निर्वाण बाद पाँचसो चवालिसवें वर्ष में अंतरंजिका नामक नगरी में भूतगृह जैसे व्यन्तर के चैत्य में रहे हुए श्री गुप्ताचार्य को वन्दन करने के लिए दुसरे ग्राम से आते हुए उसके रोहगुप्त नामक शिष्यने एक वादी द्वारा बजवाए हुए पटह का ध्वनि सुन कर उस पटह को स्पर्श किया और वहाँ आ कर आचार्य से बात की। फिर बिच्छु, सर्प, चूहा, मृगी, वराही, काकी, और शकुनिका नामक परिव्राजक की विद्याओं को उपघात करनेवाली मयूरी, नकुली, बिल्ली, व्याघ्री, सिंही, उलूकी और श्येनी नाम की सात विद्यायें और सर्व उपद्रव को शान्त करनेवाला मन्त्रित रजोहरण गुरु के पास से लेकर बलश्री नामक राजा की सभा में आकर पोट्टशाल नामक परिव्राजक के साथ वाद आरंभ किया। उस परिव्राजकने जीव अजीव, सुख दुःख आदि दो राशियाँ स्थापन कीं। तब तीन देव, तीन अग्नि, तीन शक्ति, तीन स्वर, तीन लोक, तीन पद, तीन पुष्कर, तीन ब्रह्म, तीन वर्ण, तीन गुण, तीन पुरुष, सन्ध्यादि तीन काल, तीन वचन, तथा तीन ही अर्थ

कहे हैं, इस प्रकार कहते हुए रोहगुप्तने जीव, अजीव और नोजीव इत्यादि तीन राशि स्थापन कीं। फिर उसकी विद्याओं को अपनी विद्याओं से जीतने पर उसने छोड़ी हुई रासभी विद्या को रजोहरण से जीत कर महोत्सव-पूर्वक गुरु महाराज के पास आकर सर्व वृत्तान्त सुनाया। तब गुरुजीने कहा कि-" हे वत्स! तूने उसे जीता यह अच्छा किया, परन्तु जीव, अजीव और नोजीव जो तीन राशि की प्ररूपणा की यह उत्सूत्र है, अतः इसके संबन्ध में वहाँ जाकर मिच्छामि दुकडं दे आ "। सभा में इस तरह स्थापन किये अपने मत को मैं स्वयं ही वहाँ जाकर अप्रमाण कैसे करूँ? इस प्रकार अहंकार पैदा होने से उसने वैसा नहीं किया। फिर गुरुजीने राजसभा में उस के साथ ६ मास तक वाद कर के अन्त में कुत्रिकापण* से नोजीव वस्तु मांगी। वहाँपर वह न मिलने से चवालिस सौ प्रश्न कर के उसे परास्त किया। तथापि उसने अपना आग्रह (हट) न छोड़ा, तब तंग आकर गुरुजीने क्रोध से थूकने के पात्र में से उसके मस्तक पर भस्म डाल कर उसे संघ बाहिर कर दिया। फिर उस त्रैराशिक छठवें निह्नवने वैशेषिक मत प्रगट किया॥ यद्यपि रोहगुप्त को सूत्र में आर्य महागिरि का शिष्य कहा हुआ है, परन्तु उत्तराध्ययन वृत्ति में श्री गुप्ताचार्य का शिष्य कहा होने को कारण हमने भी वैसे ही लिखा है। तत्व तो बहुश्रुत जानें।

* कुत्रिक अर्थात् तीन लोक, आपण अर्थात् दुकान। तीन लोक के अंदर की सब वस्तुएं जिस दुकान पर मिल सकती हों-उसे कुत्रिकापण कहते हैं। वैसी राजगृही नगरी में देवाधिष्ठित दुकान थी, वहा भी नोजीव न मिला।

॥

स्थविर उत्तरबलिस्सह से उत्तरबलिस्सह नामक गण निकला, उसकी चार शाखायें इस प्रकार है ! कौशांबिका, सौरितिका, कौडुंबिनी और चंदनागरी। वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति के बारह स्थविर शिष्य पुत्रसमान प्रसिद्ध थे। स्थविर आर्य रोहण १, भद्रयश २, मेघ ३, कामार्द्धि ४, सुस्थित ५, सुप्रतिबुद्ध ६, रक्षित ७, रोहगुप्त ८, ऋषिगुप्त ९, श्रीगुप्त १०, ब्रह्मा ११ और सोम १२। इस तरह सुहस्ती के गच्छ को धारण करनेवाले ये बारह शिष्य थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य रोहण से उद्देह नामक गण निकला। उसमें से चार शाखा और छह कुल निकले जो इस प्रकार हैं:–उडुंबरिका शाखा १ मासपूरिका २, मतिपत्रिका ३, पूर्णपत्रका ४, ये शाखायें। और पहला नागभूत, दूसरा सोमभूत, तीसरा उल्लगच्छ, चौथा हस्तलिप्त, पाँचवाँ नंदिज्ज और छठवाँ पारिहासक। ये छह कुल हैं। हारित गोत्रीय स्थविर श्रीगुप्त से चारण नामक गण निकला। उसकी चार शाखायें और सात कुल इस प्रकार हैं–हारितमालागारी १, सकासिका २, गवेधुका ३, तथा वज्रनागरी ४, ये शाखायें और वत्सलिज्ज १, प्रीतिधार्मिक २, हालिज्ज ३, पुष्पमित्रिक ४, मालिज्ज ५, आर्य वेडक ६ और कृष्णसख ७। ये कुल हैं। भारद्वाज गोत्रीय स्थविर भद्रयशा से उडुवाटिक नामक गण निकला, उसकी चार शाखायें और तीन कुल इस प्रकार हैं–चंपिज्जिया २, भदिज्जिया २, काकंदिका ३, और मेघहलिज्जिय४, ये चार शाखायें हैं। भद्रयशिक १, भद्रगुप्तिक २ और यशोभद्र ३ ये तीन कुल हैं। स्थविर कामर्द्धि से वेसवाटिक नामक गण निकला और उसकी चार शाखायें एव चार ही कुल इस प्रकार कहे जाते हैं:–

श्रावस्तिक १, राज्यपालिका २, अन्तरिज्जिया ३ और क्षेमलिज्जिया ४, ये चार शाखायें और गणिक १, मेघिक २, कामर्द्धिक ३ और इंद्रपूरक ४, ये चार कुल हैं। वासिष्ट गोत्रीय स्थविर ऋषिगुप्त काकंदिक से माणव नामक गण निकला और उसकी चार शाखायें एवं तीन कुल इस प्रकार कहे जातेः—काश्यपिका १, गौतमिका २, वाशिष्टिका ३, और सौराष्ट्रिका ४, ये चार शाखायें और ऋषिगुप्तक १, ऋषिदत्तिक २ और अभिजयन्त ३, ये तीन कुल हैं। व्याघ्रापत्य गोत्रीय तथा कौटिक काकंदिक उपनामवाले स्थविर सुस्थित और स्थविर सुप्रतिबुद्ध से कौटिक नामक गण निकला। उसकी चार शाखायें और चार ही कुल इस प्रकार हैं। उच्चनागरी १, विद्याधरी २, वज्री ३ और मध्यमिका ४ ये चार शाखायें और बंभलिप्त १, वस्त्रलिप्त २, वाणिज्य ३ और प्रश्नवाहनक ४ ये चार कुल हैं। व्याघ्रापत्य गोत्रीय एवं कौटिक काकंदिक उपनामवाले स्थविर सुस्थित और स्थविर सुप्रतिबुद्ध के ये पाँच स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे, स्थविर आर्य इंद्रदिन्न १, स्थविर प्रियग्रंथ २, काश्यप गोत्रवाले स्थविर विद्याधर गोपालक ३, स्थविर ऋषिदत्त ४ और स्थविर अरिहदत्त ५।

यहाँ पर स्थविर प्रियग्रंथ का सम्बन्ध कहते हैंः—तीनसौ जिन भवन, चारसौ लौकिक प्रासाद, अठारह सौ ब्राह्मणों के घर, छत्तीस सौ बनियों के घर, नव सौ बगीचे, सात सौ वावडी, दो सौ कुवे और सातसौ दानशालाओं से विराजित अजमेर के नजीक सुभटपाल राजा के हर्षपुर नामक नगर में एक समय श्री प्रियग्रंथसूरि पधारे एक दिन वहाँ पर ब्राह्मणोंने यज्ञ में बकरा होम करना शुरु किया। तब प्रियग्रंथसूरिने एक श्रावक को वास-

क्षेप देकर और वह उस बकरे पर डला कर उसे अविका अधिष्ठित किया। इस से बकरा आकाश में जाकर बोलने लगा कि–" अरे ब्राह्मणों ! तुम मुझे बाँध कर लाये हो परन्तु यदि मैं भी तुम्हारे जैसा निर्दय हो जाउँ तो क्षणवार में ही तुम्हें मार डालूं। लका के किले में क्रोधित हुए हनुमानने ज्यों राक्षसों के लिए किया था वैसे ही यदि दया बीच में न आती तो आकाश में रह कर ही मैं तुम्हारे लिए करता। हिंसा में धर्म नहीं। कहा भी है कि–" हे भारत ! पशु के शरीर में जितने रोम कूप हैं उतने हजार वर्ष तक पशुघातक नरक में पचता है। यदि कोई सुवर्ण का मेरु या सारी पृथवी दान में देवे और दूसरा मनुष्य किसी प्राणी को जीवितदान देवे तो उनमें जीवितदान का दाता बढ़ता है। बड़े बडे दानों का फल भी क्षीण हो जाता है परन्तु भयभीत हुए जीव को अभयदान देनेवाले मनुष्य का पुण्य क्षीण नहीं होता।" फिर लोगोंने कहा–तू कौन है ? अपने आत्मा को प्रगट कर। वह बोला–" मैं अग्निदेव हूँ। तुम मेरे वाहनरूप इस बकरे को क्यों मारते हो ? यदि धर्म की जिज्ञासा है तो यहाँ आये हुए श्री प्रियग्रथधरि के पास जाकर शुद्ध धर्म पूछो और मानसिक शुद्धिपूर्वक उसकी आराधना करो। जैसे राजाओं मे चक्रवर्ती और धनुर्धारियों में धनजय–अर्जुन है त्यों सत्यवादियों में वह एक ही धुरीण हैं "। फिर ब्राह्मणोंने वैसा ही किया।

स्थविर प्रियग्रथ से मध्यमा शाखा निकली। काश्यप गोत्रिय स्थविर विद्याधर गोपाल से विद्याधरी शाखा निकली। काश्यप गोत्रीय आर्य इंद्रदिन्न के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न शिष्य थे। गौतम गोत्रीय स्थविर

आर्यदिन्न के दो स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे। माढर गोत्रीय आर्य शान्तिसेनिक १ और जातिस्मरण ज्ञानधारी तथा कौशिक गोत्रीय आर्यसिंहगिरि २। माढर गोत्रीय स्थविर आर्यशान्तिसेनिक से यहाँ पर उच्च नागरी शाखा निकली। माढर गोत्रीय स्थविर आर्यशान्तिसेनिक के चार स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे। स्थविर आर्यसेनिक १, स्थविर आर्यतापस २, स्थविर आर्यकुबेर ३ और स्थविर आर्यऋषिपालित ४। स्थविर आर्यसेनिक से आर्यसेनिका शाखा निकली, स्थविर आर्यतापस से आर्यतापसी शाखा निकली, स्थविर आर्य कुबेर से आर्यकुबेरी शाखा निकली और स्थविर आर्यऋषिपालित से आर्यऋषिपालिता शाखा निकली। जाति-स्मरण ज्ञानवाले और कौशिक गोत्रीय आर्यसिंहगिरि के चार स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे। स्थविर धनगिरि १, स्थविर आर्यवज्र २, स्थविर आर्यसमित ३ और स्थविर अर्हद्दिन्न ४।

यहाँ पर स्थविर आर्यवज्र का सम्बन्ध कहते हैं–तुंबवन नामक ग्राम में अपनी सुनन्दा नामा सगर्भा स्त्री को छोड़ कर धनगिरिने दीक्षा ग्रहण की। सुनन्दा को पुत्र पैदा हुआ। उस पुत्र को अपने जन्मसमय ही पिता की दीक्षा की बात सुन कर जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर माता का मोह कम करने के लिए वह निरंतर रोने लगा। इस से कंटाल कर उसकी माताने जब वह ६ मास का हुआ तब ही उसे धनगिरि को दे दिया। उसने झोली में लेजा कर गुरु को सौंप दिया। गुरु म. ने अति भारी जान कर उसका नाम वज्र रखा और वह पालन–पोषण के लिए एक गृहस्थ को दे दिया गया, श्राविकाओं की निगरानी में साध्वियों के उपा-

श्रय में पालने में रहा हुआ ही ग्यारह अग पढ गया। फिर जब वह तीन साल का हुआ तब उसकी माताने राज सभा समक्ष विवाद में अनेक खाने की चीजें और खिलौने आदि से बहुविध ललचाया तथापि उसकी कुछ भी चीज न लेकर धनगिरि का दिया हुआ रजोहरण ले लिया। फिर निराधार हो माताने भी दीक्षा लेली। वज्र को भी गुरुने दीक्षित किया। एक दिन आठ वर्ष के अन्त में उसके पूर्व भव के मित्र जृंभक देवोंने उज्जयिनी के मार्ग में वृष्टि विराम पाने पर उसे कुष्मांड पाक की (पेठा पाक) भिक्षा देनी शुरु की परन्तु उन देवों की आँखें न टिम टिमाने के कारण उसे देवपिण्ड समझ कर और देवपिण्ड मुनियों को अकल्प्य होने से ग्रहण नहीं किया। इस से संतुष्ट हो उन देवोंने उसे वैक्रियलब्धि दी। इसी प्रकार दूसरी दफा घेवर न लेने से देवोंने उसे आकाशगामिनी विद्या दी। उसी मुनिने पाटलीपुर में धन नामक शेठ द्वारा करोड़ धन सहित दीजाती हुई उसकी रुक्मिणी नामा पुत्री को 'जिसने साध्वियों के मुखसे वज्र के गुण सुनकर यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं वज्र से ही व्याह कराउंगी' प्रतिबोध देकर दीक्षा दी। यहाँ कवि कहता है कि जिस वज्रर्षिने बाल्यावस्थामें ही सहज ही में मोहरूप समुद्र को एक घुट कर लीया उसे स्त्रीरूप नदी का प्रवाह कैसे भिगो सकता है? वह वज्रस्वामी एक समय दुष्काल में संघ को पट पर बैठा कर सुकालवाली नगरी में ले गये। वहाँ पर बौद्ध राजाने जिनमंदिरों में पुष्पों का निषेध कर दिया था। पर्युषणों में श्रावकों क विनति करने पर आकाशगामिनी विद्याद्वारा

१ पुरी नाम से प्रसिद्ध।

माहेश्वरीपुरी में अपने पिता के मित्र एक माली को पुष्प एकत्रित करने को कह कर स्वयं हिमवत् पर्वत पर लक्ष्मीदेवी द्वारा मिला हुआ महापद्म ले तथा हुताशन वनमें से बीस लाख पुष्प सहित जृंभक देवोंने बनाये हुए विमान में बैठ कर महोत्सवपूर्वक वहाँ आकर जिनशासन की प्रभावना की और बौद्ध राजा को भी जैन बनाया। एक दिन श्रीवज्रस्वामीने कफ के उपशमन के लिए भोजन के बाद खाने के उद्देशसे कान पर रक्खी हुई सूंठ की गाँठ प्रतिक्रमण के समय जमीन पर गिरने से सारण हुआ। इस प्रमाद के कारण अपनी मृत्यु नजदीक जान कर श्रीवज्रस्वामीने अपने शिष्य से कहा कि "अब बारह वर्ष का दुष्काल पड़ेगा और जिस दिन मूल्यवाले भोजन में से तुझे भिक्षा मिले उससे अगले दिन सुबह ही सुभिक्ष हो जायगा, यह निश्चय समझना चाहिये।' यों कहकर उन्हें अन्यत्र विहार करा दिया और स्वयं अपने साथ रहे मुनियों सहित रथावर्त पर्वत पर जाकर अनशन ग्रहण कर के देवलोक गये। उस वक्त संघयणचतुष्क और दशवाँ पूर्व विच्छेद होगया। फिर बारह वर्षी दुष्काल पड़ा। उसके अन्त में सोपारक[1] नगरमें जिनदत्त श्रावक के घर लक्ष मूल्यवाला अन्न पका, उसकी ईश्वरी नामा स्त्री इस हेतुसे कि सारा कुटुंब साथ मर जाय उसमें विष डालने की तैयारी कर रही थी। मालूम होने से उसे गुरु का वचन सुनाकर श्रीवज्रसेनने रोक दिया। दूसरे दिन सुबह ही किसी जहाज द्वारा धान्य आजाने से सुकाल हो गया। उस वक्त जिनदत्तने अपनी स्त्री तथा नागेंद्र, चंद्र, निवृति और विद्याधर नामक

1 आजकल सोपाला नाम से प्रसिद्ध।

चार पुत्रों सहित दीक्षा ग्रहण कर ली। उन चार शिष्यों के नामसे चार शाखायें निकलीं।

गोतम गोत्रीय स्थविर आर्यसमित से ब्रह्मदीपिका नामा शाखा निकली है जिसका सम्बन्ध इस प्रकार है–आभीर देश में अचलपुल क नजदीक और कन्ना तथा बेन्ना नामक दो नदियों के बीच ब्रह्मद्वीप में (टापु में) पाँच सौ तापस रहते थे। उनमें से एक पैरों में लेप कर के स्थल के समान जल पर चल कर जलसे पैर भीजे बिना ही बेन्ना नदी को उतर पारणा के लिए जाया करता था। यह देख 'अहो! इसके तप की शक्ति कैसी प्रबल है! जैनियों में ऐसा कोई भी प्रभावशाली नहीं है' ऐसी बातें सुन कर श्रावकोंने श्रीवज्रस्वामी के मामा आर्य समितसूरि को बुलवाया। उन्होंने फरमाया कि–यह तापस क तप की शक्ति नहीं, किन्तु पादलेप की शक्ति है। एक दिन तापस को श्रावकोंने भोजन के लिए निमन्त्रित किया और आने पर उसके पैर पादुकायें खूब मसल कर धो डालीं। भोजन किये बाद नदी तक श्रावक साथ गये। धृष्टता का अवलंबन ले उसने नदी म प्रवेश किया परन्तु तुरन्त ही वह डूबने लगा, इससे तापसों की बड़ी अपभ्राजना हुइ। उसी समय आर्य समितसूरिने आकर लोगों को प्रतिबोध करने क लिए नदी मे योगचूर्ण डालकर कहा–हे बेन्ना! मुझे उस पार जाना है। इतना कहते ही दोनों किनारे साथ मिल गये। यह दख लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर सूरिजीने उन तापसों के आश्रम में जाकर उन्हें उपदेश देकर दीक्षित किया। उनसे ब्रह्मद्वीपिका शाखा निकली है।

आर्य महागिरि, आर्यसुहस्ती, श्रीगुणसुन्दरसूरि, श्यामाचार्य, स्कंदिलाचार्य, रेवतीमित्र सूरीश्वर, श्रीधर्म,

भद्रगुप्त, श्रीगुप्त और वज्रसूरीश्वर ये दश दशपूर्वी युगप्रधान हुए हैं।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र से आर्यवज्री शाखा निकली[1]। गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र के तीन स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे। स्थविर आर्यवज्रसेन, स्थविर आर्यपद्म और स्थविर आर्यरथ। स्थविर आर्य वज्रसेन से आर्य नागिला शाखा निकली स्थविर आर्य पद्मसे आर्य पद्मा शाखा निकली और स्थविर आर्य रथसे आर्य जयन्ती शाखा निकली। वच्छ गोत्रीय स्थविर आर्य रथके कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य पुष्पगिरि शिष्य थे। कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य पुष्पगिरि के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य फल्गुमित्र शिष्य थे। गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य फल्गुमित्र के वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य धनगिरि शिष्य थे। वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य धनगिरि के कुच्छ गोत्रीय स्थविर आर्य शिवभूति शिष्य थे। कुच्छ गोत्रीय स्थविर आर्य शिवभूति के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य भद्र शिष्य थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य भद्र के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यनक्षत्र शिष्य थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य नक्षत्र के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यरक्ष शिष्य थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य रक्षके गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यनाग शिष्य थे। गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यनाग के वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य जेहिल शिष्य थे। वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य जेहिल के माढर गोत्रीय स्थविर आर्य विष्णु शिष्य थे। माढर गोत्रीय स्थविर आर्य विष्णु के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य कालिक शिष्य थे। गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य

१ आज भी साधुसाध्वी की दीक्षा के समय यही शाखा बोली जाती है।

कालिक के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य सपालित और स्थविर आर्यभद्र नामक दो शिष्य थे। गौतम गोत्रीय इन दो स्थविरों के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवृद्ध शिष्य थे। गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवृद्ध के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य सघपालित शिष्य थे। गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यसघपालित के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यहस्ती शिष्य थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यहस्ती के सुव्रत गोत्रीय स्थविर आर्यधर्म शिष्य थे। सुव्रत गोत्रीय स्थविर आर्य धर्म के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यसिंह शिष्य थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यसिंह के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यधर्म शिष्य थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यधर्म के स्थविर आर्यसडिल शिष्य थे।

(अब यहाँ से 'वन्दामि फग्गुमित्त' इत्यादि जो चौदह गाथायें आती हैं उनका अर्थ बहुतमा ऊपर आ चुका है तथापि उसे पद्य में सग्रहित की हुई होने से उनका अर्थ भी फिर से किया है, अत इससे पुनरुक्ति दोष न समझना चाहिये। गौतम गोत्रीय फल्गुमित्र को, वासिष्ट गोत्रीय धनगिरि को, कुच्छ गोत्रीय शिवभूति को और कौशिक गोत्रीय दुर्जय कृष्ण को वन्दन करता हूँ। उन्हें मस्तक से नमन कर काश्यप गोत्रीय भद्र को, काश्यप गोत्रीय नक्षत्र को और काश्यप गोत्रीय दक्ष को नमस्कार करता हूँ। गौतम गोत्रीय आर्य नाग को, वासिष्ट गोत्रीय आर्यजेहिल को, माढर गोत्रीय विष्णु को और गौतम गोत्रीय कालिक को वन्दन करता हूँ। गौतम गोत्रीय कुमार सपालित को, तथा आर्यभद्र को नमता हूँ एव गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवृद्ध को वन्दन करता हूँ। उन्हें मस्तक से नमन कर स्थिर सत्व, चारित्र और ज्ञान से सपन्न काश्यप गोत्रीय स्थविर सघ

पालित को वन्दन करता हूँ। क्षमा के सागर, धीर और जो ग्रीष्मकाल के प्रथम मास में फागन के शुक्ल पक्ष में स्वर्ग गये ऐसे काश्यप गोत्रीय आर्यहस्ती को मैं नन्दन करता हूँ। शीललब्धिसंपन्न और जिस के दीक्षा महोत्सव में जिस पर देवोंने छत्र धारण किया था ऐसे सुव्रत गोत्रवाले आर्यधर्म को वन्दन करता हूँ। काश्यप गोत्रीय आर्यहस्ती को तथा मोक्षसाधक आर्यधर्म को नमन करता हूँ। काश्यप गोत्रीय आर्यसिंह को नमन करता हूँ। उन्हें मस्तक से नमन कर स्थिर सत्व, चारित्र और ज्ञान से संपन्न गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य जम्बू को वन्दन करता हूँ। सरलता से संयुक्त तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र से संपन्न ऐसे काश्यप गोत्रीय स्थविर नंदित को भी नमन करता हूँ। फिर स्थिर चारित्रवाले तथा उत्तम सम्यक्त्व एवं सत्व से भूषित माढर गोत्रीय देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को वन्दन करता हूँ। अनुयोग धारक धीर, मतिसागर और महासत्वशाली वच्छगोत्रीय स्थिरगुप्त क्षमाश्रमण को वन्दन करता हूँ। ज्ञान, दर्शन और चारित्र में सुस्थित गुणवन्त ऐसे स्थविर कुमारधर्म गणि को वन्दन करता हूँ। सूत्रार्थरूप रत्नों से भरे हुए तथा क्षमा, दम, मार्दवादि गुणों से संपन्न ऐसे काश्यप गोत्रीय देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को वन्दन करता हूँ।

इस प्रकार जगद्गुरु भट्टारक श्रीहीरविजयसूरीश्वर के शिष्यरत्न महोपाध्याय श्री कीर्तिविजय गणि के शिष्यरत्न श्री विनयविजय गणि की रची हुई श्रीकल्पसूत्र की सुबोधिका नाम की टीका में यह आठवाँ व्याख्यान समाप्त हुआ। तथा स्थविरावली नामक यह दूसरा अधिकार भी पूर्ण हुआ।

अथ नवम व्याख्यानं ॥

अब सामाचारीरूप तीसरा अधिकार कहते हुए पर्युषणा पर्व कब करना चाहिये प्रथम यह बतलाते हैं।

उस काल और उस समय वर्षाकाल के एक मास और बीस दिन बीतने पर श्रमण भगवान् श्रीमहावीरने चातुर्मास में पर्युषण पर्व किया है। १। हे पूज्य! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि वर्षाकाल के एक मास और बीस दिन बीतने पर श्रमण भगवान् श्रीमहावीरने चातुर्मास में पर्युषण किया है? इस प्रकार शिष्य की तरफ से प्रश्न होने पर गुरु उत्तर देने के लिए सूत्र कहते हैं। जिस कारण प्राय गृहस्थियों के घर चटाई से ढके हुए होते हैं, चूने से धवलित होते हैं, घास वगैरह से आच्छादित किये होते हैं, गोबर आदि से लीपे हुए होते हैं, वृत्ति-चौंडरी करने आदि से सुरक्षित किये होते हैं, विषम भूमि को खोद कर सम किये होते हैं, पत्थर के टुकड़ों से घिस कर कोमल किये होते हैं, सुगन्ध के लिए धूप से वासित किये होते हैं, परनालारूप पानी जाने के मार्गनाल किये होते हैं, तथा नालियाँ खुदवाई हुइ होती हैं, इस तरह अपने घर अचित्त किये होते हैं, इसी कारण हे शिष्य! ऐसा कहा जाता है कि वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन बीतने पर श्रमण भगवान् श्रीमहावीरने चातुर्मास में पर्युषण पर्व किया है। २। इसी तरह गणधरोंने भी वर्षाकाल का एक मास और

बीस दिन जाने पर चातुर्मास में पर्युषणा पर्व किया है। ३। जिस तरह गणधरोंने वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया, उसी प्रकार गणधरों के शिष्योंने एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया। ४। जिस तरह गणधरों के शिष्योंने एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया उसी तरह स्थविरोंने भी एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया। ५। जिस तरह स्थविरोंने एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया उसी तरह आर्यता से या व्रतस्थिरता से वर्तते हुए आधुनिक श्रमण निर्ग्रंथ विचरते हैं वे भी वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व करते हैं। ६। जिस तरह आधुनिक समय में श्रमण निर्ग्रंथ भी वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद चौमासी पर्युषणा पर्व करते हैं उसी तरह हमारे आचार्य और उपाध्याय भी पर्युषणा पर्व करते हैं। ७। जिस तरह हमारे आचार्य और उपाध्याय पर्युषणा पर्व करते हैं उसी तरह हम भी वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद चातुर्मास में पर्युषणा पर्व करते हैं। भाद्रपद सुदि ५ से पहले भी पर्युषणा पर्व करना कल्पता है परन्तु भादवा सुदि ५ की रात्रि उल्लंघन करनी नहीं कल्पती* । ८।

परि–उषणं–पर्युषणं–चारों तरफ से आकर एक जगह रहना इसे पर्युषणा कहते हैं। वह पर्युषणा दो प्रकार की है। एक गृहस्थों को मालूम होनेवाली और दूसरि गृहस्थों को मालूम न होनेवाली। उसमें गृहस्थों को

* यह पर्युषणा वार्षिक पर्व्व समझना चाहिये।

मालूम न होनेवाली यह है-जिसमें चातुर्मास के योग्य पीठ फलकादि प्राप्त करने पर भी कल्प में कथन किये मुजब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप स्थापना की जाती है और वह भी आषाढ पूर्णिमा के भीतर ही की जाती है। परन्तु योग्य क्षेत्र के अभाव म पाँच पाँच दिन की वृद्धि से दश पर्वतिथि के क्रमद्वारा श्रावण वदि अमावास्या तक ही की जाती है। गृहीज्ञाता-गृहस्थी को मालूम होनेवाली भी दो प्रकार की है। एक वार्षिक कृत्यों से युक्त और दूसरी गृही ज्ञातमात्रा-सिर्फ गृहस्थो को मालूम होनेवाली। उसमें भी वार्षिक प्रतिक्रमण, लोच, अट्ठम का तप, सर्व जिनेश्वरों की भक्तिपूजा और परस्पर सघ से क्षमापना, ये सावत्सरिक कृत्य है। इन कृत्यों सहित पर्युषणा भादरवा सुदि पचमी के दिन ही और कालिकाचार्य के उपदेशसे चतुर्थी के दिन भी की जाती है। सिर्फ गृहस्थों को मालूम होनेवाली यह है-जिस वर्षमें अधिक मास हो उस वर्षमें चातुर्मास दिन से लेकर बीस दिन बाद मुनि 'हम यहाँ रहे हैं' पूछनेवाले गृहस्थों के आगे ऐसा कहते हैं। सो भी जैन पचाग के अनुसार है। क्यों कि उसमें युग के मध्यमें पोष तथा युग के अन्त म आषाढ मास की वृद्धि होती है, किन्तु अन्य किसी मास की वृद्धि नहीं होती। वह पचाग आज कल बिलकुल मालूम नहीं होता। इस कारण आषाढ पूर्णिमा से पचास दिन पर पर्युषण करना युक्त है ऐसा वृद्ध आचार्य कहते है। यहाँ पर कोई कहता है कि श्रावण मास की वृद्धि हो तब दूसरे श्रावण सुदि चौथ को ही पर्युषणा करना युक्त है पर भादरवा सुदि चौथ को युक्त नहीं, क्यों कि इसस अस्सी दिन होने के कारण 'वासाण सवीसइराए मासे विइक्कते'

अर्थात्–वर्षा काल का एक मास और बीस दिन गये बाद इस वचन को बाधा पहुँचती है । हैं, देवानुप्रिय ! यदि विचार करें तो ऐसा नहीं है, क्यों कि यों तो आश्विन मास की वृद्धि होने से चातुर्मासिक कृत्य दूसरे आश्विन मास की शुक्ल चतुर्दशी को ही करना चाहिये, क्यों कि कार्तिक मास की शुक्ल चतुर्दशी को करनेसे सौ दिन हो जाते हैं और इससे 'समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते सित्तरि राइंदिएहिं सेसेहिं' अर्थात् श्रमण भगवान् श्रीमहावीरने वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद और सत्तर दिन शेप रहने पर पर्युषणा की, समवायांग सूत्र के इस वचन को बाधा आती है । यह भी नहीं कहना चाहिये कि चातुर्मास आपाढ आदि मास से प्रतिबद्ध है, इससे कार्तिक चातुर्मास का कृत्य कार्तिक मास की शुक्ल चतुर्दशी को ही करना युक्त है और दिनों की गिनती के विपय में अधिक मास कालचूला के तौर पर होने से उसकी अविवक्षा को लेकर सत्तर ही दिन होते हैं तो फिर समवायांग सूत्र के वचन को कैसे बाधा आती है ? उत्तर देते हैं कि जैसे चातुर्मास आपाढ आदि मास से प्रतिबद्ध है वैसे ही पर्युषणा भी भादवा मास से प्रतिबद्ध है इस कारण भादवे में ही करना चाहिये। दिनों की गिनती के विपय में अधिक मास कालचूला के तौर पर है इस से उन्हें गिनती में न लेने से पचास ही दिन होते हैं, अब फिर अस्सी की तो बात ही कहाँ ? पर्युषणा भाद्रमास से प्रतिबद्ध है यों कहना भी अयुक्त नहीं है, क्यों कि ऐसा ही बहुत से आगमों में प्रतिपादन किया हुआ है । दृष्टान्त के तौर पर 'अन्यदा पर्युपणा का दिन आने पर आर्यकालकसूरिने शालिवाहन को कहा कि

भाद्रवा सुदि पंचमी को पर्युषणा है,' इत्यादि पर्युषणाकल्प की चूर्णि में है। तथा शालिवाहन राजा जो श्रावक था वह कालकसूरि को आया सुन कर उनके सम्मुख जाने को निकला और श्रमण संघ भी निकला। बड़े आडम्बर से कालकसूरिने नगरप्रवेश किया और प्रवेश कर के कहा कि भाद्रपद पंचमी को पर्युषणा करना है, श्रमण संघने यह मंजूर किया, तब राजाने कहा—उस दिन लोकानुवृत्ति से इन्द्र महोत्सव होने के कारण पर्युषणा नहीं हो सकेगी, अतः छठके दिन पर्युषणा करें। आचार्यने कहा—पंचमी को उल्लंघन न करना चाहिये। फिर राजाने कहा—तो फिर चौथ के दिन पर्युषणा करें, तब आचार्यने कहा कि ऐसा ही हो, फिर चौथ को पर्युषणा की। इस प्रकार युगप्रधानके कारण से चौथ की प्रवृत्ति की और यह सर्व मुनियों को मान्य है। इत्यादि निशीथचूर्णि के दशवें उद्देशे में कहा है। इस तरह जहाँ कहीं पर पर्युषणा का निरूपण आये वहाँ भाद्रपद सम्बन्धी ही समझना चाहिये। किसी भी आगम में 'भद्दवय सुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइ इति' अर्थात् भाद्रव सुदि पंचमी को पर्युषणा करना इस पाठ के समान अभिवर्धित वर्ष में श्रावण सुदि पंचमी को पर्युषणा करना ऐसा पाठ उपलब्ध नहीं होता। इस लिए कार्तिक मास से प्रतिबद्ध चातुर्मासिक कृत्य करने में जैसे अधिक मास प्रमाण नहीं है वैसे ही भाद्रव मास से प्रतिबद्ध पर्युषणा करने में अधिक मास प्रमाण नहीं है। इस लिए भाई! कदाग्रह को छोड़ दे। क्या अधिक मासको कौवा खा गया? क्या उस मास में पाप नहीं लगता या उस में भूख नहीं लगती? इत्यादि उपहास्य कर के तू अपना पागलपन प्रगट न कर। क्यों कि तू भी अधिक मास होने पर

याने तेरह मास होने पर सांवत्सरिक क्षमापना में ' बारसण्हं मासाणं ' इत्यादि बोलते हुए अधिक मास को अंगीकार नहीं करता। इसी तरह चातुर्मासिक क्षमापना में भी अधिक मास हो तथापि ' चउण्हं मासाणं ' इत्यादि और पाक्षिक क्षमापना में अधिक तिथि होने पर भी 'पन्नरसण्हं दिवसाणं ' इस तरह ही तूभी बोलता है । इसी तरह नव कल्पविहार आदि लोकोत्तर कार्य में भी बोला जाता है । तथा ' आषाढे मासे दुपया ' इत्यादि, सूर्यचार के विषय में भी ऐसे ही कहाजाता है । लोक में भी दीपावली, अक्षयतृतीया आदि पर्व के विषयमें एवं व्याज गिनने आदिमें भी अधिक मास नहीं गिना जाता यह तू स्वयं जानता है । तथा अधिक मास नपुंसक होनेसे ज्योतिष शास्त्र उसमें तमाम शुभ कार्य करने का निषेध करता है । दूसरा मास कोई अधिक हो उसकी तो बात ही दूर रही परन्तु यदि भाद्रव मास भी अधिक हो भी पहला भाद्रव अप्रमाण ही है । अर्थात् दूसरे ही भाद्रवमें पर्युषणा की जाती है । जैसे चतुर्दशी अधिक होने पर पहली चतुर्दशी को न गिन कर दूसरी चतुर्दशी को ही पाक्षिक कृत्य किया जाता है वैसे ही यहाँ पर भी समझ लेना चाहिये । और यदि तू यह कहे कि अधिक मास अप्रमाण होने से देवपूजा, मुनिदान और आवश्यकादि शुभ कार्य भी न करने चाहियें तो इस दलील को यहाँ स्थान नहीं मिलता क्यों कि दिनप्रतिबद्ध देवपूजा, मुनिदान वगैरह जो कृत्य हैं वे तो प्रतिदिन होने ही चाहियें, और संध्या आदि समयप्रतिबद्ध जो आवश्यक आदि कृत्य हैं वे भी हरएक संध्या समय पाकर करने ही चाहियें । एवं भाद्रपद आदि माससे प्रतिबद्ध जो कृत्य हैं वे दो भाद्रपद होने पर कौन

से मास में करना? इस विषय में प्रथम मास को न गिन कर दूसरे में करना ऐसा भली प्रकार विचार कर, अचेतन वनस्पतियाँ भी अधिक मास को प्रमाण नहीं करतीं, जिसे अधिक मास को छोड़ कर व दूसरे मास में पुष्पित होती हैं। इसके लिए आवश्यकनिर्युक्ति में कहा है कि 'जइफुल्ला कणियारा' चूअगणा अहिमासयम्मि घुट्ठंमि। तुह न खमं फुल्लेउं, जइ पच्चंता करिंति डमराइं ॥ १ ॥ भावार्थ-हे आम्रवृक्ष! अधिक मास की उद्घोषणा होने पर कदाचित् कनियर के फूलतो फूलें परन्तु तुझे फूलना नहीं घटता, क्यों कि इससे तुच्छ जाति के वृक्ष तेरी हँसी करेंगे। तथा कोई 'अभिवड्ढियम्मि वीसा इअरेसु सवीसइ मासे' इस वचनद्वारा अधिक मास हो तब वीस दीन पर ही लोच आदि कृत्य सहित पर्युषणा करते हैं, यह भी अयुक्त है। क्यों कि 'अभिवड्ढियम्मि वीसा' यह वचन गृहिज्ञातपर्युषणा मात्र की अपेक्षा से है। अन्यथा 'आसाढमासिए पज्जोसविंति एस उस्सग्गो, सेसकाल पज्जोसविंताण अववाउत्ति' यानें आषाढ मासम पर्युषणा करना यह उत्सर्ग है और शेष काल में पर्युषणा करना यह अपवाद है ऐसा श्रीनिशीथ चूर्णि के दशम उद्देशे का वचन होने से आषाढ पूर्णिमा को ही लोचादि कृत्य सहित पर्युषणा करनी चाहिये। "यह चातुर्मास रहने की अपेक्षा से कथन किया गया है परन्तु कृत्यविशिष्ट पर्युषणा करने के लिए नहीं इसी कारण ऐसा नहीं किया जाता"।

कल्प में कही हुई द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप स्थापना इस प्रकार है-द्रव्यस्थापना-तृण, डगल, छार,

आदि का परिभोग करना और सचित्तादि का परित्याग करना । उसमें सचित्त द्रव्य-अति श्रद्धावान् जा और राजा के मंत्री सिवा शिष्य को दीक्षा न देना । अचित द्रव्य-वस्त्रादि ग्रहण न करना । मिश्र द्रव्य-उपधि सहित शिष्य ग्रहण न करना । क्षेत्र-स्थापना-एक योजन और एक कोस-पाँच कोस तक आना जाना कल्पता है । बीमार के लिये वैद्य 'औषधि के कारण चार या पांच योजन तक कल्पता है। काल स्थापना-चार महीने तक रहना और भावस्थापना क्रोधादि का परित्याग और ईर्यासमिति आदि में उपयोग रखना ॥ ८ ॥

चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को चारों दिशा और विदिशाओं में एक योजन और एक कोस तक अर्थात् पाँच कोस तक का अवग्रह कल्पता है । अवग्रह कर के ' अहालंदमवि ' जो कहा है उसमें अथ यह अव्यय है और लंद शब्द से काल समझना चाहिये । उसमें जितने समयमें भीना हुआ हाथ सूक जाय उतने कालको जघन्य लंद कहते हैं पांच अहोरात्रि पांच समग्र रातदिन को उत्कृष्ट लंद करते है और इसके बीच का काल मध्यम लंद कहलाता है । लंदकाल तक भी अवग्रह के अन्दर रहना कल्पता है, पर अवग्रह से बाहर रहना नहीं कल्पता। अपि शब्दसे याने अलंदमपि कहनेसे अधिक काल तक ६ मास तक एक साथ अवग्रह में रहना कल्पता है, परन्तु अवग्रह के बाहर रहना नहीं कल्पता । गजेंद्र पद आदि पर्वत की मेखला के ग्रामोंमें रहे हुए साधु साध्वियों को उपाश्रय से छह ही दिक्षाओंमें जानेका ढाई कोस और आने जानेका पाँच कोस का अवग्रह होता है । अटवी, जलादिसे व्याघात होने पर तीन दिशाओं का, दो दिशाओं का या एक दिशा का अवग्रह जानना

दफा जाना नहीं कल्पता। आचार्य आदि की वैयावच करनेवाले साधुओं को वर्ज कर यह अर्थ समजना चाहिये। यदि वे एक दफा भोजन करने में अच्छी तरह सेवा भक्ति नहीं कर सकते तो दो दफा भी भोजन कर सकते हैं, क्यों कि वैयावृत्य-सेवा श्रेष्ठ है। आचार्य की वैयावृत्य करनेवाले एवं बीमार की वैयावृत्य करने वाले साधुओं को वर्ज कर दूसर साधु एक दफा भोजन करें। जब तक मूछ, दाढ़ी, बगल आदि के बाल न जमे हों तब तक शिष्य और शिष्याओं को भी दो दफा भोजन करने में दोष नहीं है। वैयावृत्य करनेवाले को भी दो दफा भोजन करना कल्पता है। २०।

चातुर्मास रहे हुए एकान्तर उपवास करनेवाले साधुओं को जो अब कहेंगे सो निर्दोष है। वह सुबह गोचरी जाने के लिए उपाश्रय से निकल कर पहले ही शुद्ध प्रासुक आहार लाकर खाकर, छास आदि पीकर, पात्रों को निर्लेप करके-वस्त्रसे पोंछ कर, प्रमार्जित कर के, धोकर यदि वह चला सके तो उतने ही भोजन से उस दिन रहना कल्पता है। यदि वह साधु आहार कम होने से न चला सकता हो तो उसे दूसरी दफा भी भात पानी के लिए गृहस्थ के घर जाना आना कल्पता है। २१। चातुर्मास रहे नित्य छठ करनेवाले साधु को गृहस्थ के घर भात पानी के लिए दो दफा आना जाना कल्पता है। २२। चातुर्मास रहे नित्य अट्ठम करनेवाले साधु को गृहस्थ के घर भात पानी के लिए तीन दफा जाना आना कल्पता है। २३। चातुर्मास रहे नित्य अट्ठम उपरान्त तप करनेवाले साधु को गृहस्थ के घर भात पानी के लिए गोचरी के सर्व काल में जाना आना कल्पता है। अर्थात्

चार पॉच दफा गोचरी जाना आना कल्पता है, उसकी जब इच्छा हो तब गोचरी लावे । परन्तु सुबह की लाई रख नहीं सकता । क्यों कि इससे संयम, जीवसंसक्ति, सर्पाघ्राण× आदि दोषों का संभव होता है । २४ । इस प्रकार आहार विधि कह कर अब पानी के पदार्थों का विधि कहते हैं ।

९ चातुर्मास रहे हुए नित्य एकासना करनेवाले साधु को सर्व प्रकार का प्रासुक पानी कल्पता है । अर्थात् आचारांग में कहे हुए इक्कीस प्रकार का या यहीं पर जो कहा जायगा नव प्रकार का पानी समझना चाहिये । आचारांग में निम्न प्रकार का पानी बतलाया है—उत्स्वेदिम, संस्वेदिम, तंडुलोदक, तुणोदक, तिलोदक, जवोदक, आयाम, सोवीर, शुद्धविकट, अंबय, अंबाडक, कविठ, कपित्थ, मउलिंग, मातुलिंग, द्राक्ष, दाडिम, खरजुर, नालिकेर, कयर, बोरजल, आमलग और चिंचाका पानी । इनमें से प्रथम के नव तो यहाँ पर भी कहे हुए हैं । चातुर्मास रहे हुए एकान्तरे उपवास करनेवाले साधु को तीन प्रकार का पानी कल्पता है । जो इस प्रकार है—उत्स्वेदिम—आटा वगैरह को खरड़े हुए हाथों के धोवन का पानी, संस्वेदिम—पत्ते वगैरह उबल कर ठंडे पानी द्वारा जो पानी सिंचन किया जाता है और चावलों के धोवन का पानी । चातुर्मास रहे हुए नित्य छठ्ठ करनेवाले साधु को तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है, तिल के धोवन का पानी, धानों के धोवन का पानी और जौं के धोवन का पानी । चातुर्मास रहे नित्य अठ्ठम करनेवाले साधु को तीन प्रकार का पानी

× सर्प सूंग जाने से उसका विष संक्रमित होता है । इसके अलावा कालातिक्रम दोष भी है ।

लेना कल्पता है, आयामक–ओसामण, सोवीर–कांजी का पानी और शुद्ध विकट गरम पानी। चातुर्मास रहे अष्टम अधिक तप करनेवाले साधु को एक गरम पानी ही लेना कल्पता है, सो भी सिक्थ* रहित हो तो कल्पता है। चातुर्मास रह अनशन करनेवाले साधु को एक गरम पानी ही लेना कल्पता है, सो भी सिक्थ रहित हो तो कल्पता है, सिक्थु सहित नहीं और वह भी छाना हुआ हो, परन्तु तृण आदि लगने से बिन छाना न कल्पे, सो भी परिमित कल्पे, सो भी कुछ कम लेना परन्तु बहुत कम भी नहीं क्यों कि उससे तृष्णा विराम नहीं पाती। २५।

१० चातुर्मास रहे दत्ति की सख्या–अभिग्रह करनेवाले साधु को भोजन की पाँच दत्ति और पानी की पाँच दत्ति, या भोजन की चार दत्ति और पानी की पाँच दत्ति अथवा भोजन की पाँच दत्ति और पानी की चार दत्ति लेना कल्पता है। थोड़ा या अधिक जो एक दफा दिया जाता है उसे दत्ति कहते हैं। उसमें नमक की एक चुकटी प्रमाण भोजनादि ग्रहण करते हुए एक दत्ति समझना चाहिये। क्यों कि प्राय' नमक बहुत ही कम लिया जाता है, यदि उतने ही प्रमाण में वह भात पानी ग्रहण करे तो वह दत्ति गिनी जाती है। पाँच यह उपलक्षण है, इससे चार, तीन, दो, एक, छह या सात, जितना अभिग्रह किया हो उस प्रकार कहना। सारे सूत्र का यह भाव है कि भात पानी की जितनी दत्ति रक्खी हों उतनी ही उसे कल्पती हैं, परन्तु परस्पर

* सिक्थ–आटे चावल अन्य अन्नादि का अंश मात्र।

समावेश करना नहीं कल्पता । एवं दत्ति से अधिक लेना भी नहीं कल्पता । उस दिन उसे उतने ही भोजन से रहना कल्पता है, परन्तु आहार पानी के लिए गृहस्थ के घर उसे दूसरी दफा जाना नहीं कल्पता । २६ ।

११ चातुर्मास रहे हुए साधु साध्वियों को आगे कथन किये स्थानों में भिक्षार्थ जाना नहीं कल्पता। शय्यातर–उपाश्रय के मालिक का घर और दूसरे ६ घर त्यागने चाहियें । क्यों कि वे नजदीक होने से साधु के गुणानुरागी होने के द्वारा उद्गमादि दोष की संभावना होती है। किसको जाना न कल्पे ? निषिद्ध घर से पीछे लौटनेवाले साधु को न कल्पे, अर्थात् निषिद्ध किये घर से उसे दूसरी जगह जाना चाहिये यह भाव है। यहाँ भिक्षा के लिए जाने में बहुवचन के बदले एक वचन उपयुक्त किया है, पर बहुतपन इस प्रकार दिखलाते हैं। सात घर में मनुष्यों से भरपूर जीमन हो तो वहाँ जाना नहीं कल्पता। यहाँ अर्थ में सूत्रकार के जुदे जुदे मत हैं। एक आचार्य कहते हैं कि निषिद्ध घर से अन्यत्र जाते हुए साधुओं को जीमन में उपाश्रय से लेकर सात घर तक भिक्षा के लिए जाना नहीं कल्पता । दूसरे कहते हैं कि निषेध किये घरसे दूसरी जगह जाते हुए साधुओं को जीमन में उपाश्रय से लेकर पहले सात घर भिक्षा के लिए जाना नहीं कल्पता । यहाँ दूसरे मत में उपाश्रय से शय्यातर और दूसरे पहले सात घर त्यागना यह भाव है । २७ ।

१२ चातुर्मास रहे पाणिपात्री जिनकल्पी आदि साधु को ओस, धुंध एसी वृष्टिकाय–अप्काय पड़ने पर गृहस्थ के घर भात पानी के लिए जाना आना नहीं कल्पता । २८ । चातुर्मास रहे करपात्री जिनकल्पी आदि

चाहिये । ९ ।

२ चातुर्मास रहे हुए साधु या साध्वीयों को चारों दिशा और विदिशाओं में एक योजन और एक कोस तक भिक्षाचर्या के लिए आना जाना कल्पता है । १० । जहाँ पर नित्य ही अधिक जलवाली नदी हो और नित्य बहती हो वहाँ सर्व दिशाओं में एक योजन और एक कोस तक भिक्षाचर्या के लिए जाना आना नहीं कल्पता । ११ । कुणाला नामा नगरी के पास ऐरावती नामा नदी हमेशह दो कोश प्रमाणमें बहती है । वैसी नदी थोड़ा पानी होनसे उल्लंघन करनी कल्पती है, परन्तु निम्न प्रकार से नदी उतरना कल्पता है ।

एक पैर जलमें रक्खे और दूसरा पैर पानीसे ऊपर रख कर चले । यदि इस प्रकार नदी उतर सकता हो तो चारों दिशा और विदिशाओं में एक योजन और एक कोश तक भिक्षा के निमित्त जाना आना कल्पता है ।१२। जहाँ पूर्वोक्त रीति से न जासके वहाँ साधुओं को चारों दिशा और विदिशाओं में इतना जाना आना नहीं कल्पता । यदि जंघा तक पानी हो तो वह दकसंघट्ट कहलाता है । नाभि तक पानी हो तो लेप कहाता है और नाभि से ऊपर हो तो वह लेपोपरि कहलाता है । शेषकाल में तीन दफा दकसंघट्ट होने पर क्षेत्र नहीं हना जाता इस लिए वहाँ जाना कल्पता है । वर्षाकाल में सात दफा दकसंघट्ट होने पर क्षेत्र नहीं हना जाता । शेषकाल में चौथा और वर्षाकालमें आठवाँ दकसंघट्ट होने पर क्षेत्र हना जाता है । लेप तो एक भी क्षेत्र को हनता है । इससे नाभि तक पानी होतो उतरना नहीं कल्पता । नाभि से ऊपर पानी होने पर तो सर्वथा ही नहीं कल्पता । १३ ।

४ चातुर्मास रहे हुए किसी साधुको पहले से ही गुरुने कहा हुआ हो कि हे शिष्य ! बीमार साधु को अमुक वस्तु ला देना तब उस साधु को वस्तु ला देनी कल्पती है परन्तु उसे वह वरतनी नहीं कल्पती। १४। चातुर्मास रहे साधुको यदि प्रथम से गुरुने कहा हुआ हो कि हे शिष्य ! अमुक वस्तु तू स्वयं लेना तो उसे लेनी कल्पती है। पर उसे दूसरे को देनी नहीं कल्पती। १५। चातुर्मास रहे साधु को गुरुने प्रथम से कहा हुआ हो कि हे शिष्य ! तू ला देना और तू स्वयं भी वरतना तो वह वस्तु उसे कल्पती है। १६।

५ चातुर्मास रहे साधु और साध्वियों को विगय लेना नहीं कल्पता। किन साधुओं को नहीं कल्पता ? जो हृष्टपुष्ट हैं, तरुण अवस्था से समर्थ हैं, निरोगी हैं, आरोग्य बलवान् साधुओं को जो आगे कथन की जानेवाली रस से प्रधान विगय हैं बारंबार खाना नहीं कल्पता। वे विगय ये समझना चाहिये-दूध १, दहीं २, मक्खन ३, घी ४, तेल ५, गुड़ ६, मद्य ७, मद्य[1] ८ और मांस ९, अभीक्ष्ण के ग्रहण करने से कारण पड़ने पर भक्षण करने योग्य विगय कल्पती हैं, ऐसा समझना चाहिये। और नव के ग्रहण करने से किसी दिन पक्वान भी ग्रहण किया जाता है। पूर्वोक्त विगय सांचयिका और असांचयिका ऐसे दो प्रकार की हैं। उसमें दूध, दहीं और पक्वान्न ये नाम-वाली बहुत समय तक नहीं रक्खी जासकतीं सो असांचयिका जानना चाहिये। रोगादि के कारण गुरु बाल आदि को उपग्रह करने के निमित्त या श्रावक के निमंत्रण से वह लेना कल्पता है। घी, तेल और गुड़ ये तीन विगय सांचयिका समझना चाहिये। उन तीन विगयों को लेने समय श्रावक से कहना कि अभी बहुत समय तक

१ शराब.

रहना है इससे हम बीमार आदि के लिए ग्रहण करेंगे। वह गृहस्थ कहे कि–चातुर्मास तक लेना वह बहुत है तब यह लेकर बालादि को देना। परन्तु जुवान को न देना। यद्यपि मद्य, मांस और मक्खन तो साधु के लिए जीवन पर्यन्त सर्वथा परित्याग होता है तथापि अत्यन्त अपवाद दशा में बाह्य परिभोग वगैरह के लिए कभी ग्रहण करना पड़े तो ले सकता है परन्तु चातुर्मास में तो सर्वथा निषेध है। १७।

६ चातुर्मास रहे हुए साधुओं में वैयावच्च–सेवा करनेवाले मुनिने प्रथम से ही गुरुमहाराज को यों कहा हुआ हो कि–हे भगवान्! बीमार मुनि के लिए कुछ वस्तु की जरूरत है? इस प्रकार सेवा करनेवाले किसी मुनि के पूछने पर गुरु कहे कि–बीमार को वस्तु चाहिये? चाहिये तो बीमार से पूछो कि–दूध आदि तुम्हें कितनी विगय की जरूरत है? बीमार के अपनी आवश्यकतानुसार प्रमाण बतलाने पर उस सेवा करनेवाले मुनि को गुरु के पास आकर कहना चाहिये कि बीमार को इतनी वस्तु की जरूरत है। गुरु कहे–जितना प्रमाण वह बीमार बतलाता है, उतने प्रमाण में वह विगय तुमने ले आना। फिर सेवा करनेवाला वह मुनि गृहस्थ के पास जा कर माँगे। मिलने पर सेवा करनेवाला मुनि जब उतने प्रमाणमें वस्तु मिल गई हो जितनी बीमार को जरूरत है तब कहे कि बस करो, गृहस्थ कहे–भगवान्! बस करो ऐसा क्यों कहते हो? तब मुनि कहे–बीमार को इतनी ही जरूरत है, इस प्रकार कहते हुए साधु को कदाचित् गृहस्थ कहे कि–हे आर्य साधु! आप ग्रहण करो, बीमार के भोजन करने के बाद जो बचे सो आप खाना, दूध वगैरह पीना। क्वचित पाडिसिचि के बदले दाहिसिचि

देखनेमें आता है, तब ऐसा अर्थ करना चाहिये, बीमार के भोजन किये बाद जो बचे वह आप खाना और दूसरों को देना, ऐसा गृहस्थ के कहने पर अधिक लेना कल्पता है। परन्तु बीमार की निश्रायसे लोलुपता से अपने लिए लेना नहीं कल्पता। बीमार के लिए लाया हुआ आहारादि मंडली में न लाना। १८।

७ चातुर्मास रहे साधुओं को उस प्रकार के अनिन्दनीय घर जो कि उन्होंने या दूसरोंने श्रावक किये हों, प्रत्ययवन्त या प्रीति पैदा करनेवाले हों, या दान देने में स्थिरतावाले हों, यहाँ मुझे निश्चय ही मिलेगा ऐसे विश्वासवाले हों, जहाँ सर्व मुनियों का प्रवेश सम्मत हो, जिन्हे बहुत साधु सम्मत हों, या जहाँ घर के बहुतसे मनुष्यों को साधु सम्मत हों, तथा जहाँ दान देने की आज्ञा दी हुई हो, या सब साधु समान है ऐसा समझ कर जहाँ छोटा शिष्य भी इष्ट हो, परन्तु मुख देख कर तिलक न किया जाता हो, वैसे घरों में आवश्यकीय वस्तु के लिए बिन देखे ऐसा कहना नहीं कल्पता कि हे आयुष्मन्! यह वस्तु है? इस तरह बिन देखी वस्तु को पूछना नहीं कल्पता। शिष्य प्रश्न करता है कि-हे भगवान्! ऐसा विधान किस लिए? गुरु कहते हैं-श्रद्धावान् गृहस्थ उस वस्तु को मूल्य देकर लावे यदि मूल्यसे भी न मिले तो वह अधिक श्रद्धा होने से चोरी भी करे। कृपण के घर बिन देखी वस्तु मांगने में भी दोष नहीं है। १९।

८ चातुर्मास रहे हुए सदैव एकासना करनेवाले साधु को सूत्रपोरुषी किये बाद काल में एक दफा गोचरी जाना गृहस्थ के घर कल्पता है अर्थात् भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में जाना आना कल्पता है। परन्तु दूसरी

साधु को अनाच्छादित जगह में भिक्षाग्रहण करके आहार करना नहीं कल्पता। अनाच्छादित स्थान में आहार करते हुए यदि अकस्मात् वृष्टि पड़े तो भिक्षा का थोड़ा हिस्सा खा कर और थोड़ा हाथ में ले कर उसे दूसर हाथ से ढक कर हृदय के आगे ढक रखे या कक्षा में ढक रखे, इस प्रकार कर के गृहस्थ के आच्छादित स्थान तरफ जावे या वृक्ष के मूल तरफ जावे कि जिस जगह उस साधु के हाथ पर पानी के बिन्दु विराधना न करें या न पड़ें। यद्यपि जिनकल्पी आदि कुछ कम दश पूर्वधर होने से प्रथम से ही वृष्टि का उपयोग कर लेते हैं इससे बाधा स्थान पर उठना पड़े यह सम्भवित नहीं है तथापि छद्मस्थता के कारण कदाचित् अनुपयोग भी हो जावे। ।२९। कथन किये अर्थ का ही समर्थन करते हुए कहते हैं कि चातुर्मास रहे पाणिपात्र साधु को कुछ भी पानी बिन्दु उस पर पड़े तो उस जिनकल्पी आदि को गृहस्थ के घर भात पानी को जाना आना नहीं कल्पता। ।३०। यह करपात्रियों का विधि कहा, अब पात्र रखनेवाले साधुओं का विधि कहते हैं।

चातुर्मास रहे पात्रधारी स्थविरकल्पी आदि साधु को अविच्छिन्न धारा से वृष्टि होती हो अथवा जिसमें वर्षाकल्प-वर्षाकालमें ओढ़ने का कपड़ा या छप्पर की लौती पानी से टपकने लगे या कपड़े को भेद कर पानी अन्दर के भाग में शरीर को भिगावे तब गृहस्थ के घर भात पानी के लिए आना नहीं कल्पता। यहाँ अपवाद कहते हैं कि-उस स्थविरकल्पी को यदि अन्तर अन्तरसे थम थम कर वृष्टि होती हो तब या अन्दर का सूत का वस्त्र और ऊपर ऊनका वस्त्र इन दोनों से लिपटे हुए स्थविरकल्पी को थोड़ी वृष्टि में गृहस्थ के घर भात

पानी के लिए जाना आना कल्पता है। इस अपवाद में भी तपस्वी या भूख न सहन करनेवाले साधु भिक्षा के लिए हरएक अगली वस्तु के अभाव में ऊनके, वालों के, ऊँटके बालोंके, घास के या सूत के कपड़े से एवं तालपत्र या पलास के छत्र द्वारा वेष्टित होकर भी आहार लेने जावे। ३१। चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को गृहस्थ के घर भिक्षा लाभ की प्रतिज्ञा से पहले यहाँ मुझे मिलेगा ऐसी बुद्धि से गोचरी गये साधु के थम थम कर पानी पड़े तों आराम के नीचे, (बगीचे आदिमें) सांभोगिक-अपने या दूसरों के उपाश्रय नीचे, उसके अभावमें या विकटगृह-जहाँ पर ग्रामलोग वैठते हैं चौपाल के नीचे, या वृक्ष के मूल में या निर्जल कैर आदि के मूल नीचे जाना कल्पता है। ३२। उसमें विकटगृह, वृक्षमूल आदि में रहे हुए साधु को उसके आने से पहले राँधना शुरु किया भात वगैरह और बाद में राँधनी शुरु की हुई मसूर की, उड़द की या तेलवाली दाल हो तब उसे भात वगैरह लेना कल्पता है परन्तु मसूरादि की दाल लेना नहीं कल्पता। इसका यह भाव है कि-साधु के आने से पहले ही गृहस्थोंने अपने लिए जो राँधना शुरु किया हो वह उसे कल्पता है, क्यों कि इससे उसे दोष नहीं लगता, और साधु के आने पर जो राँधना प्रारंभ किया हो तो वह पश्चादायुक्त होता है अतः उससे उद्गमादि दोष की संभावना होती है। इसी कारण वह लेना नहीं कल्पता। इसी तरह शेष रही दोनों बातें जान लेना चाहिये। ३३। उसके घर पर साधु के आने से पहले प्रथम ही मसूरादि की दाल पकानी शुरु कर दी हो और चावलादि बादमें पकाने रक्खे हों तो उस साधु को वह दाल ही कल्पती है परन्तु चावल नहीं कल्पते। ३४।

गृहस्थ के घर पर यदि दोनों ही वस्तु साधु के आने से पहले पकानी रक्खी हो तो दोनों ही लेनी कल्पती हैं। जो चीज उसके आने से पहले रांधनी शुरु की हो वह उस साधु को कल्पती है और जो उसके आने पर रांधने रक्खी हो सो उसे नहीं कल्पती। ३५। चातुर्मास रहे साधु या साध्वी गृहस्थ के घर पर भिक्षा लेने के लिए गया हुआ हो उस वक्त यदि रह रह कर बारिश पड़ती हो तो उसे आराम या वृक्ष के मूल नीचे जाना कल्पता है, परन्तु पहले ग्रहण किये भात पानी सहित भोजन का समय उलंघन करना नहीं कल्पता। यदि उस वक्त वृष्टि न होवे तो आराम या वृक्ष के मूल नीचे रहा हुआ साधु क्या करे? उत्तर देते हैं-पहले उद्गम आदिसे शुद्ध आहार खाकर पीकर पात्र निर्लेप कर और धोकर एक तरफ पात्रादि उपकरण को रख कर (शरीर के साथ लगा कर) वर्पते वर्षात में सूर्यास्त से पहेले जहाँ उपाश्रय हो वहा जाना कल्पता है। परन्तु वह रात्रि उसे गृहस्थ के घर पर ही निकालनी नहीं कल्पती, क्यों कि एकले साधुको बाहर रहने से 'स्वपरसमुत्था'-अपने से और दूसरों से उत्पन्न होते बहुत से दोषों की संभावना है, एवं उपाश्रय में रहनेवाले साधु भी चिन्ता करें। ३६। चातुर्मास रहे साधु साध्वी गृहस्थ के घर भिक्षा के लिये गया हुआ हो तब यदि थम थम कर वृष्टि होती हो तो उसे आराम के नीचे यावत् वृक्ष के मूल नीचे जाना कल्पता है। ३७। अब थम थम कर वृष्टि होती हो तो आरामादि के नीचे साधु किस विधि से खड़ा रहे सो बतलाते हैं। निकटगृह वृक्षमूलादि के नीचे रहा हुआ साधु एक साध्वी के साथ नहीं रह सकता। वैसे स्थान में एक साधु को दो साध्वियों के साथ रहना नहीं कल्पता।

दो साधु और एक साध्वी को साथ रहना नहीं कल्पता । दो साधु और दो साध्वियों को साथ रहना नहीं कल्पता । यदि वहाँ कोई पाँचवाँ क्षुल्लक-छोटा चेला या चेली हो वह स्थान दूसरों की दृष्टिका विषय हो-दूसरे देख सकते हों अथवा वह स्थान बहुत से द्वारवाला हो तो साथ रहना कल्पता है । भावार्थ यह है कि-एक साधु को एक साध्वी के साथ रहना नहीं कल्पता, एक साधुको दो साध्वियों के साथ रहना नहीं कल्पता, दो साधुओं को एक साध्वी के साथ रहना नहीं कल्पता । एवं दो साधुओं को दो साध्वियों के साथ रहना नहीं कल्पता । यदि कोई लघु शिष्य या शिष्या पाँचवाँ साक्षी हो तो रहना कल्पता है । अथवा वृष्टि निराम न पाने पर अपना कार्य न छोड़नेवाले लुहारादि की दृष्टि से या उस घर के किसी भी दरवाजे में किसी पाँचवें के बिना भी रहना कल्पता है । ३८ । चातुर्मास रहे साधु को गृहस्थ के घर भिक्षा लेने के लिए आगे कथन करते हैं उस प्रकार रहना न कल्पे । वहाँ एक साधु के एक श्राविका के साथ रहना न कल्पे इस तरह चौभंगी होती है । यदि यहाँ पर कोई भी पाँचवाँ स्थविर या स्थविरा साक्षी हो तो रहना कल्पता है । या अन्य कोई देख सके ऐसा स्थान हो या बहुत दरवाजेवाला वह स्थान हो तो साथ रहना कल्पता है । इसी प्रकार साध्वी और गृहस्थ की चतुर्भंगी समझना चाहिये । यहाँ पर साधु का एकाकीपन बतलाया है । किसी कारण साधु को एकला जाना पड़े उसके लिए समझना चाहिये । सांघाटिक में अन्य किसी साधु को उपवास हो या असुख होने से ऐसा बनता है । अन्यथा उत्सर्ग मार्ग में तो साधु दो और साध्वी तीन साथ विचरें ऐसा समझना चाहिये । ३९ ।

१४ चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को ' मेरे लिए तुम लाना ' जिसको ऐसा न कहा हो उस साधु को ' तेरे योग्य मैं लाऊँगा ' ऐसा किसीको जनाया नहीं है ऐसे साधु को निमित्त अशन आदि आहार नहीं कल्पता । ४० । हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया है ? शिष्य की ओर से यह प्रश्न होने पर गुरु कहते हैं " जिसको मालूम नहीं किया गया ऐसे साधु के लिए आहार लाया गया हो वह यदि इच्छा होवे तो करे और यदि इच्छा न हो तो आहार न करे और उलटा कहे-किसने कहा था जो तू यह लाया है ? " यदि इच्छा विना ही दाक्षिण्यता से वह खावे भी तो अजीर्णादि से दुःख पैदा हो और चातुर्मास में कभी परठना पड़े तो शुद्ध स्थान की दुर्लभता के कारण दोषापत्ति होवे इस लिए पूछ कर ही लाना चाहिये । ४१ ।

१५ चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को पानी से निचड़ते शरीर से तथा थोड़े पानी से भीजे हुए शरीर से अशनादि चार प्रकार का आहार करना नहीं कल्पता । ४२ । हे पूज्य ! ऐसा किस लिए ? शिष्य का यह प्रश्न होने पर गुरु कहते हैं कि जिसमें लंबे काल में पानी सूके ऐसे पानी रहने के स्थान जिनेश्वरोंने सात बतलाये हैं-दो हाथ, हाथों की रेखायें, नख, नखों के अग्रभाग, भमर-आँखो के उपर के बाल, दाढी और मूछ । जब यह यों समझे कि मेरा शरीर पानी रहित होगया है, सर्वथा सूक गया है तब अशनादि चार प्रकार का आहार करना कल्पता है । ४३ ।

१६ चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को जो कथन करेंगे उन आठ सूक्ष्मो पर ध्यान देना चाहिये । अर्थात्

छद्मस्थ साधु साध्वियों को वारंवार जहाँ जहाँ वे स्थान करें वहाँ वहाँ पर सूत्र के उपदेश द्वारा जानने चाहियें । आँखों से देखना है और देख तथा जान कर परिहरने योग्य होने से विचारने योग्य हैं । वे आठ सूक्ष्म इस प्रकार हैं– सूक्ष्म जीव, सूक्ष्म पनक फुल्लि, सूक्ष्म बीज, सूक्ष्म हरित, सूक्ष्म पुष्प, सूक्ष्म अंडे, सूक्ष्म बिल और सूक्ष्म स्नेह–अप्काय । वे कौनसे सूक्ष्म जीव हैं ? ऐसा शिष्य का प्रश्न होने पर गुरु कहते हैं–तीर्थंकरों और गणधरोंने पाँच प्रकार के–वर्ण के सूक्ष्म जीव कहे हैं–काले, नीले, लाल, पीले और धोले, एक वर्ण में हजारों भेद और बहुत प्रकार के संयोग हैं । वे सब कृष्ण आदि पाँचों वर्ण में अवतरते हैं–समाविष्ट होते हैं । अणुद्धरी नामक कुंथुवे की जाति है जो स्थिर रही हुई, हलनचलन न करती हो उस वक्त छद्मस्थ साधु साध्वीयों को तुरन्त नजर नहीं आती और जो अस्थिर हो, जब चलती हो तब छद्मस्थ साधु साध्वीयों को नजर आती है । इस लिए छद्मस्थ साधु–साध्वियोंको उन सूक्ष्म प्राणों–जीवों को वारंवार जानना, देखना और परिहरना चाहिये । क्योंकि वे चलते हुए ही मालूम होते हैं किन्तु स्थिर रहे मालूम नहीं होते । ४४ । दूसरे सूक्ष्म पनक कौनसी है ? शिष्य के ऐसा प्रश्न करने पर गुरु कहते हैं कि सूक्ष्म पनक पाँच प्रकार का कहा है, जो इस तरह है–काला, नीला, लाल, पीला और सुफेद । सूक्ष्म पनक एक जाति है जिस में वे जीव उत्पन्न होते हैं । जहाँ पर वह सूक्ष्म पनक पैदा होती है वहाँ पर वह उसी द्रव्य के समान वर्णवाली होते है । वह पनक की जाति छद्मस्थ साधु साध्वीयों को जाननी, देखनी और परिहरनी चाहिये । वह प्रायः शरद् ऋतु

मे जमीन काष्ठादिके अन्दर पैदा होती है और जहां पैदा होती है वहां वह उसी द्रव्य के वर्ण-रगवाली होती है। यह प्रसिद्द है। अब और कौन से सूक्ष्म हैं ? ऐसा शिष्य के पूछने पर गुरु कहते हैं कि अन्य सूक्ष्म पांच प्रकार की होती है जो इस तरह है काला, नीला, लाल, पीला और सुफेद कणिका याने नखिका-नाखूनों के दोनों तरफ की चमडी। उसके समान वर्णवाला ही दूसरा सूक्ष्म कहा है जो छद्मस्थ साधु साध्वियों को जानना, देखना और परिहरना चाहिये। अब सूक्ष्म हरित कहते हैं, सूक्ष्म हरित पांच प्रकार की कही है, काली लीली, लाल, पीली और सफेद। सूक्ष्म हरित यह है कि जो पृथ्वी समान वर्णवाली प्रसिद्ध है। जो साधु-साध्वियों को जाननी, देखनी और परिहरनी चाहिये। यह सूक्ष्म हरित जानना चाहिये। [redacted] अल्प सघयण-कम शरीरशक्तिवाली होती है इस कारण वह थोडे ही समय में नष्ट हो जाती है। अब ये सूक्ष्म पुष्प कहते हैं-सूक्ष्म पुष्प पांच प्रकार के होते हैं, काले से लेकर सुफेद वर्णतक। वृक्ष के समान वर्णवाले वे सूक्ष्म पुष्प प्रसिद्द ही हैं जो छद्मस्थ साधु साध्वियों को जानने, देखने और परिहरने चाहियें। ये सूक्ष्म पुष्प समझना। अब शिष्य के पूछने पर सूक्ष्म अंडे बतलाते हैं। सूक्ष्म अंडे पांच प्रकार के होते हैं-मधमक्खी, खटमल आदि के अंडे वे उद्दंशाड, लूता-किरली के अंडे वे उत्कलिकांड, पिपीलि[redacted] चींटियों के अंडे वे पिपीलिकांडा, हलिका-छपकी के अंडे वे हलिकांड और हल्लोहलिया जो जुदी जुदी भाषाओं म अहिलोटी, सरटी और काकिडी कहलाती है उसके अंडे वे हल्लोहलिकांड हैं। जो साधु साध्वियों को जानने, देखने

और परिहरने चाहियें। ये सूक्ष्म अंडे समझना चाहिये। लयन जीवों का आश्रयस्थान। शिष्य के पूछने पर गुरु उसके प्रकार बतलाते हैं–सूक्ष्म लयन–बिल पांच प्रकार के हैं उत्तिंग गर्दभाकार के जीवों के रहने का स्थान, भूमि पर बनाया हुआ उनका जो घर है उसे उत्तिंगलयन कहते हैं। भृगु–सूकी हुई जमीन की रेखा-पानी सूक जाने पर क्यारे आदि में जो तरड़े पड़ जाती हैं वह भृगुलयन कहलाता है। सरल बिल–सीधा बिल वह सरल लयन समझना चाहिये। तालवृक्ष के मूल के आकारवाला नीचे चौड़ा और ऊपर सूक्ष्म ऐसा जो है वह तालमुख शंबुकावर्त्त–भ्रमर का घर होता है। ये पांचों छद्मस्थ साधु साध्वियों को जानने, देखने और परिहरने चाहियें। ये सूक्ष्मबिल जानना चाहिये। अब शिष्य के पूछने पर गुरु स्नेह अप्काय के भेद बतलाते हैं। अवश्याय ओस जो आकाश से रात्रि के समय पानी पड़ता है। हिम तो प्रसिद्ध ही है। महिका–धूमरी। ओले प्रसिद्ध हैं और भीनी जमीन में से निकले हुए तृण के अग्र भाग पर बिन्दुरूप जल जो यव के अंकुरादि पर देख पड़ते हैं। ये पांच प्रकार के अप्काय साधु साध्वियों को जानने, देखने और परिहरने चाहियें। ये सूक्ष्म स्नेह समझ लेना चाहिये। ४५

१७ चातुर्मास रहे साधु भातपानी के लिये गृहस्थ के घर जाना आना चाहें तो उन्हें पूछे सिवाय जाना-आना नहीं कल्पता। किसको पूछना सो कहते हैं। सूत्रार्थ के देनेवाले आचार्य को। सूत्र पढ़ानेवाले उपाध्याय को। ज्ञानादि के विषय में शिथल होते को स्थिर करनेवाले और उद्यम करनेवालों को, उत्तेजन देनेवाले

चातुर्मास रहे साधु जो चाहे वह कैसा साधु ? अपश्चिम याने चरम-अन्तिम मरण सो अपश्चिम मरण, परन्तु प्रतिक्षण आयु के दलिक अनुभव करनेरूप आवीचि मरण नहीं। अपश्चिम मरण ही जिसमें अन्त है वह अपश्चिम मरणान्तिकी, ऐसी शरीर, कषायादिको कृशकरनेवाली सलेखना, द्रव्य भाव भेदोंसे भिन्न भेदवाली। 'चत्तारि विचित्ताइ' इत्यादि। उसका जोषण-सेवन सो ससेखनाकी सेवा उससे शरीर जिसने कृश कर डाला है, अर्थात् अपश्चिम मरणान्तिकी सलेखना की सेवा से-सेवन से जिसने शरीर को अतिकृश कर डाला है और इसी कारण जिसने भातपानी का भी प्रत्याख्यान कर लिया है, अर्थात् जिसने पादोपगम अनशन किया है और इससे जीवित काल को न चाहनेवाला साधु इस प्रकार करने की इच्छा रखता हुआ गृहस्थ के घर में जाने आने अशनादिका आहार करने मल, मूत्र परठने, स्वाध्याय करने तथा धर्मजागरिका जागने याने आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थानविचय ये चार भेदरूप धर्मध्यान क विधानादि द्वारा जागने को इच्छे तो गुरु आदि को पूछे सिवाय कुछ भी करना नहीं कल्पता। सब कुछ पहले जैसे ही समझना चाहिये। गुरु की आज्ञा से ही करना कल्पता है। ५१।

१८ चातुर्मास रहे साधु वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण एवं अन्य उपधि तपाने के लिए-एक दफा धूप में सुकाने के लिए, न तपाने से कुत्सापनक आदि दोषोत्पत्ति का संभव होने से वारवार तपाना इच्छे तब एक साधु या अनेक साधुओं को मालूम किये विना उसे गृहस्थ क घर भातपानी के लिए जानाआना या अशनादि

का आहार करना, जिनमंदिर जाना, शरीरचिन्ता आदि के लिए जाना, स्वाध्याय करना, कायोत्सर्ग करना एवं एक स्थान में आसन कर के रहना नहीं कल्पता। यदि वहाँ पर नजदीक में कहीं पर एक या अनेक साधु रहे हुए हों तो उसे इस प्रकार कहना चाहिये–हे आर्य ! जब तक मैं गृहस्थ के घर जाऊँ आऊँ, यावत् कायोत्सर्ग करूँ अथवा वीरासन कर एक जगह रहूँ तब तक इस उपधि को आप संभाल रखना। यदि वह नहीं को संभाल रखना मंजूर करे तो उसे गृहस्थ के घर गोचरी के निमित्त जाना, आहार करना, जिनमंदिर जाना, शरीरचिन्ता दूर करने जाना, स्वाध्याय या कायोत्सर्ग करना एवं वीरासन कर एक स्थान पर बैठना कल्पता है। यदि वह मंजूर न करे तो नहीं कल्पता। ५२।

१९ चातुर्मास में रहे साधु साध्वियों को नहीं कल्पे। क्या न कल्पे ? सो बतलाते हैं–जिसने शय्या और आसन ग्रहण न किया हो उसे 'अनभिगृहीतशय्यासनिकः' कहते हैं। ऐसे साधु को जिसने शय्यासन ग्रहण न किया हो रहना नहीं कल्पता। अर्थात् वर्षाकाल में उपाश्रय में पट्टा, फलक आदि ग्रहण कर के रहना चाहिए। अन्यथा शीतल भूमि में सोने बैठने से कुंथु आदि जीवों की विराधना होने का संभव है और उससे कर्म एवं दोष का उपादान कारण होता है। यह अनभिगृहीतशय्यासनिकत्व समझना चाहिये। ५३। शय्या आसन ग्रहण करना। एक हाथ ऊँची और निश्चल शय्या रखना। ईर्या आदि समितियों में उपयोग रखनेवाले तथा अपनी वस्तुओं की वारंवार प्रतिलेखना करनेवाले साधु को सुखपूर्वक संयम आराधना

स्थविर को। ज्ञानादि के विषय में प्रवृत्ति करनेवाले प्रवर्त्तक को। जिसके पास आचार्य सूत्रादि का अभ्यास करते हैं उस गणि को। तीर्थंकर के शिष्य गणधर को। जो साधुओं को लेकर बाहर अन्य क्षेत्रों में रहते हैं, गच्छ के लिए क्षेत्र, उपधि की मार्गणा आदि में प्रधावन वगैरह करनेवाले—उपधि आदि ला देनेवाले और सूत्र तथा अर्थ दोनों को जाननेवाले गणावच्छेदक को। अथवा अन्य साधु जो वय और पर्याय से लघु भी हो परन्तु जिसको गुरुतया मान कर विचरते हैं उसको। उस साधु को आचार्य यावत् जिसे गुरुतया मानकर विचरता हो उसे पूछ कर जाना कल्पता है। किस तरह पूछना? सो कहते हैं—हे पूज्य! यदि आप की आज्ञा हो तो मैं भात पानी के लिए गृहस्थ के घर जानाआना चाहता हूँ। यदि ऐसा पूछने पर आचार्यादि आज्ञा देवें तो भात पानी के लिये गृहस्थ के घर जानाआना कल्पता है। आज्ञा न देवें तो नहीं कल्पता। शिष्य पूछता है कि हे पूज्य! ऐसा क्यों कहा है? गुरु कहते हैं कि आचार्य आदि विघ्न के परिहार को जानते हैं। ४६।

इसी प्रकार जिनचैत्य में जाना, विचार भूमि—दिशा फराकत जाना, अथवा उच्छ्वास आदि वर्ज कर लीपना, सीना, लिखना आदि जो कार्य हो सब पूछ कर करना। इसी तरह कभी भिक्षादि के लिए या बिमारादि के कारण दूसरे गाँव जाना पड़े तो पूछ कर जाना कल्पे। अन्यथा वर्षाऋतु में दूसरे गाँव जाना सर्वथा अनुचित है। ४७।

चातुर्मास रहे साधु यदि कोई दूसरी विगय खाना इच्छे तो आचार्य यावत् जिसे गुरु मान कर विचरता

है उसे पूछे विना विगय खाना नहीं कल्पता। आचार्य या जिसे गुरु मान कर विचरता हैं उसे पूछ कर विगय खाना कल्पता है। किस तरह पूछना सो कहते हैं–हे पूज्य! यदि आप की आज्ञा हो तो अमुक विगय इतने प्रमाण में और इतने समय तक खाना इच्छता हूं। यदि वह आचार्यादि उसे आज्ञा दें तो वह विगय उसे कल्पती है अन्यथा नहीं। शिष्य प्रश्न करता है कि–हे पूज्य! ऐसा क्यों कहा गया है? गुरु उत्तर देते हैं कि आचार्यादि लाभालाभ जानते हैं। ४६।

चातुर्मास रहे साधु वात, पित्त और कफादि संनिपात संबन्धी रोगों की चिकित्सा कराना चाहे तो आचार्यादि से पूछ कर कराना कल्पता है। पहले के समान ही सब कुछ समझना चाहिये। वह चिकित्सा आतुर, वैद्य, प्रतिचारक और भैपज्यरूप चार प्रकार की है। प्रत्येक के फिर चार चार भेद कहे हैं। दक्ष, शास्त्रार्थ को जाननेवाला, दृष्टकर्मा और शुचि ये चार प्रकार भिषक् के हैं। बहुकल्प, बहुगुण, संपन्न और योग्य ये चार प्रकार औषध के हैं। अनुरक्त, शुचि, दक्ष, और बुद्धिमान् ये चार प्रकार प्रतिचारक के हैं। तथा आढ्य–धनवान्, रोगी, भिषक् के वश और ज्ञायक–सत्त्ववान् ये चार प्रकार रोगी के हैं। ४९।

चातुर्मास रहे साधु यदि कोई प्रशस्त, कल्याणकारी, उपद्रव को हरनेवाला, धन्य करनेवाला, मंगल करनेवाला, शोभा देनेवाला और महाप्रभावशाली तपकर्म अंगीकार करके विचरना चाहे तो गुरु आदि को पूछ कर करना कल्पता है। इत्यादि पहले जैसे ही सब कहना चाहिये। ५०।

होती है। पूर्वकाल में शय्या आसन चातुर्मास में साधुओं को ग्रहण करने का जो रीतरिवाज था आजकल वह न होने से और ग्रंथ विस्तृत होजाने के भय से यह विषय सविस्तर नहीं लिखा है।५४।

२० चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को स्थंडिल-शौच और मात्रालघुनीति के लिए तीन जगह कल्पती हैं। जो सहन न कर सके अर्थात् हाजत के वेग को न रोक सके उनको तीन जगह अन्दर रखनी चाहियें। जो सहन कर सकता है उसको तीन जगह बाहर रखनी चाहियें। यदि दूर जाने में हरकत आवे तो मध्यभूमि रखना चाहियें। उसमें भी हरकत आवे तो नजदीक की भूमि रखना। इस प्रकार आसन्न, मध्य और दूर ये तीन तरह की भूमि हैं, उन्हें प्रतिलेखना चाहिये। जिस प्रकार चातुर्मास में किया जाता है उस प्रकार शरदी और गरमियों में नहीं किया जाता इस लिए हे पूज्य! इसका क्या कारण है? ऐसा शिष्य का प्रश्न होने पर गुरु कहते हैं कि-चातुर्मास में जीव शलनक, इन्द्रगोप, कुमी आदि वनस्पति के नये उत्पन्न हुए अङ्कुर, पनक, फूलण एवं बीजमें से उत्पन्न हुई हरित ये तमाम अधिक पैदा होती हैं, इसी कारण चातुर्मास में इनके लिए खास कथन किया गया है।५५।

२१ चातुर्मास रहे साधु साध्वी को तीन मात्रा पात्र रखने कल्पते हैं। एक स्थंडिल के लिए मात्रा के लीये और तीसरा श्लेष्म के लिए। पात्र न होने से वक्त बीत जाने के कारण शीघ्रता करते हुए आत्मविराधना तथा वर्षा होती हो तो बाहर जाने में संयमविराधना होती है ॥५६॥

२२ जिनकल्पी को निरंतर और स्थविरकल्पी को चातुर्मास में अवश्यमेव लोच कराना चाहिये। इस वचन से चातुर्मास रहे साधु साध्वी को आषाढ चातुर्मास के बाद लंबे केश तो दूर रहे परन्तु गाय के रोम जितने भी केश रखने नहीं कल्पते। इस लिए वह रात्रि भाद्रपद शुक्ला पंचमी की रात्रि और वर्तमान में शुक्ला चतुर्थी की रात्रि उल्लंघन न करनी चाहिये। उस से पहिले ही लोच कराना चाहिये। यह भावार्थ है कि यदि समर्थ हो तो चातुर्मास में सदैव लोच करावे और यदि असमर्थ हो तो भादवा सुदि चौथ की रात्रि तो उल्लंघन करनी ही नहीं चाहिये। पर्युषणा पर्व में साधु साध्वी को निश्चय ही लोच किये बिना प्रतिक्रमण करना नहीं कल्पता, क्यों कि केश रखने से अप्काय की विराधना होती है। तथा उसके संसर्ग से जुवों की उत्पत्ति होती है, एवं केशों में खुजली करते हुए उन जूवों का वध होता है या मस्तक में नाखून लगता है। यदि उस तरह से या कैंची से कतरवावे या मुंडन करावे तो आज्ञाभंगादि दोष लगता है, संयम और आत्म विराधना होती है। जूवों का वध होता है, नापित पश्चात्*कर्म करता है और शासन की अपभ्राजना होती है इसलिए लोचन श्रेष्ठ है। यदि कोई लोच न सहन कर सकता हो या लोच कराने से बुखार आदि आजाता हो, या बालक होने से लोच समय रोने लगता हो या इससे धर्मत्याग देवे तो उसे लोच न करना चाहिये। साधु को उत्सर्ग से लोच करना चाहिये और अपवाद में बाल, बीमार आदि साधु को मुंडन करना चाहिये।

* नापित हजामत किये बाद जो हाथ, वस्त्र, शस्त्रादि धोवे घिसे उसे पश्चात्कर्म कहते है।

कराना चाहिये। उसमें प्रासुक जल से सिर धो कर प्रासुक पानी से नापित के हाथ भी धुलाना चाहिये। जो उस तरहसे मुडन कराने में असमर्थ हो या जिसके सिर में फुन्सी फोड़े निकले हुए हों उसको कैंची से केश कतरवाने कल्पते हैं। जो लोच सहन कर सके उसे महीने महीने बाद मुडन कराना चाहिये। यदि कैंची से कतरावे तो पन्द्रह पन्द्रह दिन के बाद गुप्त रीति से कतरवाना चाहिये। मुडन कराने और कतरवाने का प्रायश्चित्त निशीथसूत्र में कथन किये यथासत्य लघु गुरुमास समझना चाहिये। लोच ६ महीने करना चाहिये। परन्तु स्थविरकल्पी साधुओं में स्थविर जो वृद्ध हो उसे बुढ़ापे से जरजरित होजाने के कारण तथा नेत्रों का रक्षण करने के लिए एक वर्ष के बाद लोच कराना चाहिये और तरुण को चार मास बाद लोच करना चाहिये ५७।

२३ चातुर्मास रहे साधु साध्वी को पर्युषणा बाद क्लेश पैदा करनेवाला वचन बोलना नहीं कल्पता। जो साधु या साध्वी क्लेशकारी वचन बोले उसे ऐसा कहना चाहिये। हे आर्य! तुम आचार विना बोलते हो क्योंकि पर्युषणा के दिनसे पहले या उसी दिन बोले हुए क्लेशकारी वचन के लिए तो तुमने पर्युषणा पर्व में क्षमापना की है। अब जो पर्युषणा के बाद तुम फिर क्लेशकारी वचन बोलते हो यह अनाचार है। इस प्रकार निवारण करने पर भी जो साधु साध्वी क्लेश उत्पन्न करनेवाले वचन पर्युषणा बाद बोले तो उसे पनवाड़ी के पान की तरह सघ बाहिर करना चाहिये। जैसे पनवाड़ी सड़े हुए पान को दूसरे पान के नष्ट होने के भय से निकाल देता है, उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोधवाला साधु भी विनष्ट ही है, ऐसा समझ कर उसे दूर कर देना उचित

है । एक और ब्राह्मण का दृष्टान्त दिया है-खेर नगरवासी रुद्र नामक एक ब्राह्मण वर्षाकाल में खेत वाहने के लिए हल लेकर खेत में गया । हल चलाते हुए उसका गलिया बैल बैठ गया । हाँकनेवाले साटे या चाबुक से मारने पीटने पर भी जब वह न उठा तब तीन क्यारों के मट्टी के डलों से मारते मारते उस मट्टी के डलों से उसका मुख ढक गया और श्वास रुक जाने से वह मर गया । फिर वह ब्राह्मण पश्चात्ताप करता हुआ हुआ महास्थान पर जा कर अपना वृत्तान्त कहने लगा । दूसरे ब्राह्मणोंने पूछा कि तू अब भी शान्त हुआ या नहीं ? उसने कहा कि मुझे अभी तक भी शान्ति नहीं हुई । तब ब्राह्मणोंने उसे अपनी जाती से बाहिर कर दिया । इसी प्रकार वार्षिक पर्व में कोप उपशान्त न होने के कारण जिस साधु साध्वी ने पारस्परिक क्षमापना न की हो उसे संघ बाहिर करना योग्य है । उपशान्त में उपस्थित हुआ हो उसे मूल प्रायश्चित्त देना उचित है । ५८ ।

२४ चातुर्मास रहे साधु साध्वी से यदि पर्युषणा के दिन ऊँचे शब्दवाला तथा कटुतापूर्ण-जकार मकार आदि रूप कलह होवे तो छोटा बड़े को खमावे । यदि बड़ेने अपराध किया हो तथापि व्यवहार से छोटा बड़े को खमावे । यदि धर्म न परिणमने के कारण छोटा बड़े को न खमावे तो क्या करना ? सो कहते हैं- बड़ा भी छोटे को खमावे, आपखमे और दूसरे को खमावे, आप उपशान्त होवे और दूसरों को उपशान्त करे । सुमतिपूर्वक, रागद्वेष के अभावपूर्वक सूत्र और अर्थ सम्बन्धी संपृच्छना या समाधि प्रश्न विशेष होने चाहियें । जिस के साथ कटुतापूर्ण कलह हुआ हो उसके साथ निर्मल मन से शान्ति होवे ऐसी अनेक शास्त्रों संबन्धी

पातें होनी चाहियें। अब उन दोनों में यदि एक खमावे और दूसरा न खमावे तो जो उपशान्त होता है, खमाता है वह आराधक होता है और जो नहीं खमाता, नहीं उपशमता वह विराधक होता है इस लिए आत्मार्थी को चाहे वह बड़ा हो या छोटा स्वय उपशमित होना चाहिये। हे पूज्य! ऐसा क्यों कहा? शिष्य का यह प्रश्न होने पर गुरु कहते हैं कि–जो श्रमणत्व–साधुपन है वह उपशम प्रधान है। यहाँ पर दृष्टान्त देते हैं–दश मुकुटबद्ध राजाओं से सेवित सिंधु सौवीर देश का अधिपति उदयन राजा–विद्युन्माली देवता से मिलि हुई श्रीवीर प्रभु की प्रतिमा के पूजन से निरोगी हुए गधार नामक श्रावकने दी हुई गोलि के भक्षण करने से अद्भुत रूप को धारण करनेवाली सुवर्णगुलिका नामा दासी को देवाधिदेव की प्रतिमा सहित हरन करनेवाले और चौदह राजाओं से सेवित मालव देश के चडप्रद्योत नामक राजा को देवाधिदेव प्रतिमा वापिस लाने के लिए उत्पन्न हुए संग्राम में पकड़ कर पीछे आते हुए दशपुर[1] नगर में चातुर्मास रहा। वार्षिक पर्व के दिन राजाने उपवास किया अत' राजा की आज्ञा से रसोइये ने भोजन के लिए चडप्रद्योत से पूछा कि आप आज क्या खायेंगे? इससे विष देने के भय से चडप्रद्योतने कहा कि–यदि तुम्हारे राजा को उपवास है तो आज मुझे भी पर्युषण होने से उपवास है, मैं भी श्रावक हूँ। यह बात राजा को मालूम होने से विचारा कि 'इस धूर्त साधर्मिक को भी खमाये विना मेरा वार्षिक प्रतिक्रमण शुद्ध न होगा', इस धारणा से उदयन राजाने

1 आजकाल का मदसोर

उसका सर्वस्व वापिस दे कर उसके मस्तक पर लिखाये हुए 'मेरी दासी का पति' इन अक्षरों को आच्छादन करने के लिये अपना मुकुटपट्ट देकर श्री उदयन राजाने चंडप्रद्योत को खमाया। यहाँ पर उपशान्त होने के कारण उदयन राजा को आराधकपन समझना चाहिये। किसी वक्त दोनों को आराधकपन होता है। वह इस प्रकार है—

एक समय कौशांबी नगरी में सूर्य और चंद्र अपने विमानद्वारा श्रीवीर प्रभु को वन्दनार्थ आये। चंदना साध्वी दक्षता होने के कारण अस्त समय जान कर अपने स्थान पर चली गई और मृगावती सूर्य चंद्रमा के गये बाद अंधकार पसरने पर रात जान कर डरती हुई उपाश्रय आई। ईर्यापथिकी कर के सोती हुई चंदना के पैरों में पड़ कर 'हे पूज्या! मेरा अपराध क्षमा करो,' यों कहने लगी। चन्दना ने कहा—हे भद्रे! तेरे जैसी कुलीना को इतना अनुपयोग रखना योग्य नहीं है। मृगावती बोली—' महाराज! फिर ऐसा न होगा। यों कह कर चरणों में लेट गई और अपने अनुपयोगतारूप अपराध के लिए अपने आत्मसाक्षी अनेकविध पश्चात्ताप करने लगी। इधर चंदना को निद्रा आगई थी, अपने क्षमा प्रदान के लिये भी गुरुनी को जगाने की तकलीफ देना उसने उचित न समझा। अतः उसी प्रकार चरणों में पड़े हुए अपने उस अपराध की तीव्रालोचना करते हुए मृगावतीने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। दैवयोग उस समय अकस्मात् कहीं से वहाँ एक सर्प आ निकला। निद्रागत चंदना का हाथ संथारा से नीचे की ओर झुका हुआ था और उसी तरफ सर्प आ रहा था। मृगावतीने

॥

चदना का हाथ उठा कर ऊपर की ओर कर दीआ इससे उसकी निद्रा भग हो गई। सर्पागमन का वृत्तान्त सुनाने से चदनाने कहा—ऐसे घोरान्धकार में तुमने सर्प को कैसे जाना ? अब केवलज्ञान की प्राप्ति मालूम हो जाने पर चदनाने उस केवली के चरणों में पड अपने अपराध की खमावना करते—तीव्र पश्चात्ताप करते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार सचे अन्त करणपूर्वक खमाते हुए दोनों को आराधना होती है, परन्तु क्षुल्लक साधु और कुमार के जैसी भावना से मिच्छामि दुक्कड न देना चाहिये उससे दोनों को कुछ भी आराधना नहीं होती है। वह दृष्टान्त इस प्रकार है।

एक दफा एक साधु समुदाय एक कुँभार के मकान में ठहरे हुए थे। उनमें एक क्षुल्लक—छोटा साधु भी था। वह अपनी किशोर वय के कारण कुतूहल से बहुतसी ककरें ले कर कुँभार के नये बनाये हुए कचे बरतनों पर निशाना अजमाने लगा। जिस घड़े पर ककर लगती उसमें छेद पड जाता था। कुँभारने उसकी येह चेष्टा देख उसे मना किया। क्षुल्लकने अपने अपराध की खमावना के रूप में 'मिच्छामि दुक्कड' कहा। कुँभार वहाँ से चला गया। आँख बचा कर वह फिर निशाने मारने लगा और बहुत से बरतन काने कर दिये। कुँभारने देख कर फिर धमकाया। साधु फिर मिच्छामि दुक्कड दे कर वैसाही करने लगा तब फिर कुँभारने उसके जैसा ही बन कर एक ककर उठा कर उसके कान पर रख उसको दबाया। साधु चिल्लाया और बोला छोड़ दो मुझे पीड़ा होती है। कुँभारने मिच्छामि दुक्कड देकर हाथ ढीला कर दिया, परतु फिर दबाया। फिर क्षुल्लक

चिल्लाया और बोला कि पीड़ा होती है। कुँभारने फिर मिच्छामि दुकडं दिया। तब क्षुल्लक बोला–वारंवार वही कांम करते हो और माफी भी मांगते हो या मिच्छामि दुकडं भी देते हो यह कैसा मिच्छामि दुकडं है? कुँभार बोला महाराज! जैसा आपका मिच्छामि दुकडं है वैसा ही मेरा भी है। ५९।

२५ चातुर्मास रहे साधु साध्वी को तीन उपाश्रय ग्रहण करने कल्पते हैं। जंतु संसक्ति आदि के भय से उन तीन उपाश्रयों में दो उपाश्रयों को वारंवार प्रतिलेखन–साफसूफ कर रखना चाहिये। जो उपाश्रय उपभोग में आता हो उस सम्बन्धी प्रमार्जना करनी चाहिये। अर्थात् जिस उपाश्रय में साधु रहते हों उसको प्रातःकाल, जब दो पहर के समय गोचरी को जावें तब और फिर तीसरे पहर के अन्त में इस तरह तीन दफा प्रमार्जित करना चाहिये। चातुर्मास के सिवा दो दफा प्रमार्जना करनी चाहिये। जब उपाश्रय जीव से असंसक्त हो तब का यह विधि है। यदि जीव से संसक्त हो तो वारंवार प्रमार्जना करनी चाहिये। शेष दो उपाश्रयों को नजर से देखते रहना चाहिये। परन्तु उनमें ममत्व न करना चाहिये। तथा तीसरे दिन प्रोंछन से–दंडासन से पड़िलेहना चाहिये। ६०।

२६ चातुर्मास रहे साधु साध्वी को अन्यतर दिशाओं का अवग्रह कर के अमुक दिशा और अनुदिशा–अग्नि आदि विदिशाओं का अवग्रह कर के अमुक दिशा या विदिशा में मैं जाता हूँ दूसरे साधुओं को यों कह कर भात पानी के लिए जाना कल्पता है। हे पूज्य! ऐसा किस हेतु से कहा है? इस तरह शिष्य की तरफ से प्रश्न

होने पर गुरु कहते हैं–चातुर्मास में प्रायश्चित वहन करने के लिए या सयम के निमित्त छठ आदि करनेवाले होते हैं। वे तपस्वी तप के कारण दुर्बल तथा कृश अगवाले होते हैं इस लिए थकाव लगने से या अशक्ति से कदाचित कहीं मूर्छा आ जाय या गिर पड़े तो उसी दिशा में या विदिशा में पीछे उपाश्रय में रहे साधु खोज करें। यदि कहे विना ही गया हो तो उसे कहाँ खोजने जायें। ६१।

२७ चातुर्मास रहे साधु साध्वी को वर्षाकाल मे औषधि के लिए, या बीमार की सारसभाल के लिए, या वैद्य के लिए चार पाँच योजन जा कर भी वापिस आना कल्पता है, परन्तु वहाँ रहना नहीं कल्पता। यदि अपने स्थान पर न पहुच सकता हो तो मार्ग में भी रहना कल्पता है परन्तु उस जगह रहना नहीं कल्पता, क्यों कि वहाँ से निकल जाने से वीर्याचार का आराधन होता है। जहाँ जाने से जिस दिन वर्षाकल्पादि मिल गया हो उस दिन की रात्रि को वहाँ रहना नहीं कल्पता। वहाँ से निकल जाना कल्पता है। यह रात्रि उलघन करनी नहीं कल्पती। कार्य हो जाने पर तुरन्त ही निकल कर बाहर आ रहना यह भाव है। ६२।

२८ इस प्रकार पूर्व में कथन किये मुजब सावत्सरिक चातुर्मास सवन्धी स्थविरकल्प को यथासूत्र–जैसे सूत्र में कथन किया है वैसे करना चाहिये पर सूत्र विरुद्ध न करना चाहिये। जिस प्रकार कहा है वैसे करे तो वह यथाकल्प कहलाता है और यदि विपरीत करे तो अकल्प कहलाता है। यथासूत्र और यथाकल्प आचरण आचरते हुए, ज्ञानादि त्रयरूप मार्ग को यथातथ्य–सत्य वचनानुसार और भली प्रकार मन, वचन, कायाद्वारा

सेवन कर, अतिचार रहित पालन कर, विधिपूर्वक करने से सुशोभित कर जीवन पर्यन्त आराधन कर, दूसरों को उपदेश कर, श्री जिनेश्वरों द्वारा उपदेश किये मुजब जैसे पूर्व में पाला वैसे ही फिर पाल कर कितने एक निर्ग्रंथ श्रमण उसको अति उत्तमतापूर्वक सेवन कर उसी भव में सिद्ध होते हैं, केवली होते हैं, कर्मरूप पिंजरे से मुक्त होते हैं, कर्मकृत सर्व ताप के उपशमन से शीतल होते हैं और मन संबन्धी सर्व दुःखों का अन्त करते हैं, कितनेएक उसकी उत्तम पालना द्वारा दूसरे भव में सिद्ध होते हैं, यावत् शरीर तथा मन संबन्धी सर्व दुःखों का अन्त करते हैं। कितनेएक उसकी मध्यम पालना से तीसरे भवमें यावत् शरीर तथा मन संबन्धी दुःखों का अन्त करते हैं। कितनेएक जघन्य आराधना द्वारा भी सात आठ भव तो उलंघे ही नहीं। अर्थात् सात आठ भव में तो अवश्य ही मुक्ति पाते हैं। ६३।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु राजगृह नगर में समवसरे। उस समय गुणशील नामक चैत्य में बहुत से साधुओं, बहुतसी साध्वीयों, बहुत से श्रावकों, बहुत से श्राविकाओं, बहुत से देवों और बहुतसी देवीयों के मध्य में रह कर इस प्रकार वचन योग द्वारा फल कथनपूर्वक जनाया, इस प्रकार प्ररूपण किया अर्थात् दरपण के समान श्रोताओं के हृदय में संक्रमाया और पर्युषणाकल्प नामक अध्ययन को प्रयोजन सहित, हेतु सहित, कारण सहित, सूत्र सहित, अर्थ सहित, सूत्रार्थ दोनों सहित, व्याकरण-पूछे हुए

अर्थ सहित वारवार उपदिष्ट किया, अर्थात् पुनः पुन उसका उपदेश किया। जिस प्रकार प्रभुने कहा-त्यों श्री भद्रबाहुस्वामी ने अपने शिष्यों को कहा था। इस तरह श्री पर्युषणाकल्प नामक दशाश्रुतस्कंध का आठवाँ अध्ययन सपूर्ण हुआ।

इस तरह जगद्गुरु भट्टारक श्री हीरविजयसूरीश्वर के शिष्यरत्न महोपाध्याय श्रीकीर्तिविजय गणि के शिष्य उपाध्याय श्री विनयविजयजी की रची हुई कल्पसूत्रसुबोधिका नामक टीका में सामाचारी व्याख्यान सपूर्ण हुआ और सामाचारी व्याख्यान नामक यह तीसरा अधिकार भी समाप्त हुआ।

शुभ भवतु।



इतिश्री कल्पसूत्रम्
हिंदी भावानुवाद सहितं ।